डिंगल गीत साहित्य

[डिंगल के विशाल गीत साहित्य पर लिखित सर्वप्रथम शोधप्रबंध]
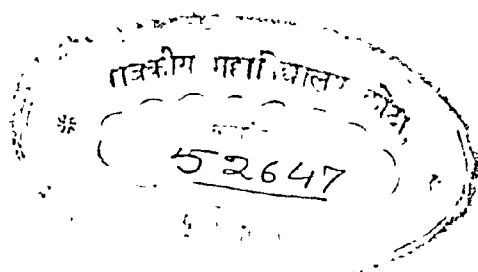
डा० नारायणसिंह भाटी
एम. ए; एल एल. बी; पी. एच. डी.
निदेशक,
राजस्थानी शोध संस्थान
चौपासनी, जोधपुर

चिन्मय प्रकाशन

● प्रकाशक
चिन्मय प्रकाशन
चौड़ा रास्ता, जयपुर-३

पैतालीस रुपये

● मुद्रक :
दी यूनाइटेड प्रिन्टर्स
राधा दामोदर की गली,
चौड़ा रास्ता,
जयपुर-3
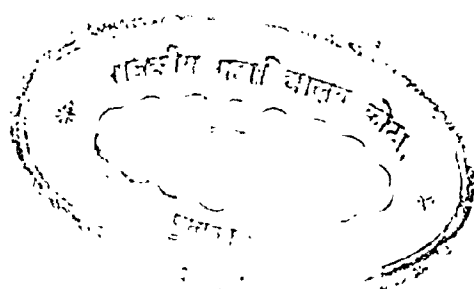
समर्पण

पूज्य पिताजी

स्वर्गीय ठाकुर कानसिहजी की

पवित्र स्मृति को

भूमिका

प्रस्तुत ग्रंथ राजस्थान विश्वविद्यालय द्वारा शोध प्रबन्ध के रूप में पी-एच. डी. की डिग्री के लिए सन् १६६५ में स्वीकृत किया गया था। इस ग्रंथ में डिंगल साहित्य की एक विशिष्ट विधा–'गीत साहित्य' का विवेचन प्रस्तुत किया गया है। विशालता और प्राचीनता दोनों ही दृष्टियों से गीत साहित्य का स्वतंत्र अध्ययन सर्वथा वांछनीय था। न केवल साहित्यिक दृष्टि से अपितु इतिहास और संस्कृति के अध्ययन के लिए भी ये गीत अनुपम साधन हैं और राजस्थान के विगत एक हजार वर्षों का विस्तृत इतिहास इनके अध्ययन के बिना लिखा जाना सर्वथा असंभव है। खेद का विषय है कि मौखिक परम्परा पर जीवित रहने के कारण यह अधिकांश साहित्य समय के गर्त में लुप्त हो चुका है फिर भी प्राचीन हस्तलिखित ग्रंथों में हजारों गीत बिखरे पड़े हैं।

मुझे इस शोध प्रबन्ध को तैयार करने में लगभग दस वर्षों का समय लगा। सर्व प्रथम इतने विशाल और बिखरे हुए साहित्य का संकलन करने में बहुत-सा समय लग गया। राजस्थान की प्रमुख शोध-संस्थाओं और अनेकानेक व्यक्तिगत संग्रहों से हजारों गीतों के नोट्स लेने के बाद इनका अध्ययन प्रारम्भ किया गया। गीत वास्तव में डिंगल की एक विशिष्ट छंद परम्परा है और इनके अनेक भेदोपभेद हैं और डिंगल के विभिन्न छंद-शास्त्रों में उनके लक्षणों के बारे में भी मतभेद हैं अतः इस दृष्टि से भी इनके अध्ययन में लंबे समय की अपेक्षा थी। अधिकांश गीत राजस्थान के वीरों की वीरता और बलिदान पर लिखे गये हैं अतः उनकी ऐतिहासिकता की प्रामाणिक जानकारी प्राप्त करना भी एक दुष्कर कार्य था।

इधर मेरे निर्देशन में संचालित राजस्थानी शोध संस्थान और राजस्थानी शब्द कोश के प्रकाशन की अनेकानेक समस्याओं के लिए भी मुझे बहुत समय देना पड़ता था जिससे इस कार्य में कई बार अवरोध भी आया परन्तु मेरे शोध-निर्देशक डा० कन्हैयालालजी सहल की ऐसी महती कृपा रही कि वे मुझे निरन्तर प्रोत्साहित करते रहे और मेरे उत्साह को शिथिल नहीं होने दिया।

इस कार्य को सम्पन्न करने में मुझे सर्व श्री सीतारामजी लालस, अगरचन्दजी नाहटा, देवकरणजी इन्दोकली के साहित्य संग्रहों से प्राचीन गीत व उनके सम्बन्ध में परामर्श भी मिलता रहा है जिसके लिए मैं इन महानुभावों का आभारी हूं।

राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर, अनूप संस्कृत लाइब्रेरी बीकानेर, बंगाल हिन्दी मंडल कलकत्ता, राजस्थानी शोध संस्थान जोधपुर, साहित्य संस्थान उदयपुर,-पुस्तक प्रकाश जोधपुर आदि संस्थाओं में संग्रहीत गीत–साहित्य भी बिना किसी कठिनाई के मुझे अध्ययन हेतु उपलब्ध होता रहा हैं अतः मैं इन संस्थाओं के प्रबन्धकों तथा कार्यकर्ताओं का भी आभार प्रकट करता हूँ।

मेरे मित्र श्री सौभाग्यसिंह शेखावत से न केवल उनके निजी संग्रह के गीत ही उपलब्ध हुए अपितु उन गीतों में वर्णित ऐतिहासिक तथ्यों को प्रमाणित करने तथा कवियों की कृतियों के बारे में समुचित जानकारी प्राप्त करने में जो सहृदयता पूर्ण सहयोग मिला वह कभी विस्मृत नहीं किया जा सकता।

राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान के तत्कालीन उप निदेशक आदरणीय गोपालनारायण जी बहुरा एम० ए० ने अपना बहुमूल्य समय देकर इस ग्रंथ को प्रस्तुत करने से पहले अद्योपांत पढ़कर उपयोगी सुझाव दिये और यह भी एक विशिष्ट संयोग की बात रही कि शोध प्रबन्ध की छपाई जयपुर में होने के कारण इस ग्रंथ के प्रूफ संशोधन में भी उनका कृपापूर्ण सहयोग उपलब्ध हो सका जिसके लिए मैं उनका सदा आभारी रहूँगा।

मेरे निर्देशक, डिंगल और हिन्दी साहित्य के सर्वमान्य विद्वान डा. कन्हैयालाल जी सहल की कृपा का मैं चिर ऋणी रहूँगा जिनके प्रोत्साहन और योग्य निर्देशन के बिना यह कार्य इस रूप में सम्पन्न होना कठिन था।

अंत में चिन्मय प्रकाशन के व्यवस्थापक ने जिस सहृदयता और रुची के साथ इस ग्रंथ के प्रकाशन की व्यवस्था की है उसके लिए उन्हें भी अनेक धन्यवाद अर्पित करता हूँ।

इस ग्रंथ के अध्ययन से यदि डिंगल साहित्य और इतिहास के क्षेत्र में कार्य करने वाले विद्वानों का मार्ग प्रशस्त हुआ तो मैं अपने श्रम को सार्थक समझूंगा।

नारायणसिंह भाटी

जोधपुर
१५.३.७१

विषयानुक्रमणिका

विषय-प्रवेश | १

(१) डिंगल और पिंगल–

राजस्थान का प्राचीन साहित्य डिंगल एवं पिंगल भाषाओं में लिखा गया है। डिंगल शब्द मरु-भाषा के लिए प्रयुक्त हुआ है तथा पिंगल ब्रजभाषा के लिए। डिंगल का उद्भव गुर्जर अपभ्रंश से[1] तथा पिंगल का उद्भव शौरसेनी अपभ्रंश[2] से माना गया है। ६वीं शताब्दी के लगभग मरु-भाषा अपना रूप-निर्माण करने लग गई थी, यह उद्योतनसूरि द्वारा सं० ८३५ में रचित कुवलयमाला कथा[3] में मरु-भाषा शब्द के उल्लेख से प्रमाणित होता है। १३वीं शताब्दी तक मरु-भाषा में स्फुट रचनाओं का प्रणयन होता रहा; परन्तु १३वीं से १६वीं शताब्दी के बीच इस भाषा के माध्यम से अच्छे परिमाण में साहित्य-रचना हुई है। इस काल की भाषा को डा० तेस्सीतोरी ने पुरानी-पश्चिमी राजस्थानी कहा है।[4] यही भाषा उस समय गुजरात तथा राजस्थान दोनों ही प्रान्तों की साहित्यिक भाषा थी।[5] १६वीं शती के लगभग ब्रज भाषा का प्रभाव भी राजस्थान में बढ़ने लगा[6] और अनेक कवि

---

(१) (क) कन्हैयालाल माणिक्यलाल मुंशी : अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के तैंतीसवें अधिवेशन का विवरण, पृ० ६

(ख) राजस्थानी भाषा और साहित्य : डा० मोतीलाल मेनारिया, पृ० ५

(२) राजस्थानी भाषा और साहित्य : डा० हीरालाल माहेश्वरी, पृ० ३४

(३) अप्पा तुप्पा भणि रे अह पेच्छइ मारुए ततो।

(४) पुरानी राजस्थानी (डा० तेस्सीतोरी): अनुवादक: नामवरसिंह, पृ० ४

(५) वही, पृ० १०

(६) राजस्थान का पिंगल साहित्य: डा० मोतीलाल मेनारिया, पृ० ११

उसमें भी काव्य-रचना करने लगे। इस भाषा को यहां पिंगल के नाम से मान्यता मिली, जिसमें स्थानीय भाषा की कई विशेषताएं भी कालान्तर में समाहित हो गईं।

पिंगल तथा डिंगल शब्दों की व्युत्पत्ति पर अनेक विद्वानों ने अपने-अपने मत-मतान्तर प्रकट किए हैं। कौन सा शब्द किसके वजन अथवा अनुकरण पर गढ़ा गया, इसकी भी अनेक कल्पनाएँ की गई है, परन्तु अभी तक सर्वमान्य निश्चित मत पुष्ट प्रमाणों के आधार पर सामने नहीं आया। प्रारंभिक साहित्य पूर्णतया सुरक्षित न रहने के कारण इस प्रकार की कई कठिनाइयां राजस्थानी साहित्य व भाषा सम्बन्धी समस्याओं को सुलझाने में बाधक हैं।

पिंगल और डिंगल की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में चाहे जो मत निर्धारित हों, व्युत्पत्ति का इतना महत्व नहीं है, जितना महत्व इन भाषाओं की साहित्य-सम्पदा का है, जो सर्वमान्य है। इसलिए व्युत्पत्ति के ऊहापोह में न पड़कर हम यहां डिंगल पिंगल-विषयक उन कतिपय भ्रान्त धारणाओं का निराकरण कर रहे हैं, जो कुछ लेखकों द्वारा प्रकट की गई हैं।

(२) भ्रान्त धारणाएं—

(क) "डिंगल में मुख्यतः चारण, भाट, मोतीसर आदि इनी-गिनी दो-चार मटायत जातियों के लोग ही साहित्य-रचना करते थे। दूसरी जातियों के कवि न तो इसमें लिखना पसंद करते थे, न इसे बल-प्रोत्साहन देते थे। विशेष कर ब्राह्मण-जाति के लोगों ने इस भाषा को कभी छुआ ही नहीं। डिंगल भाषा का एक भी ग्रंथ अभी तक देखने में नहीं आया जो किसी ब्राह्मण द्वारा रचा गया हो।"[१]

डिंगल साहित्य के सम्बन्ध में डा. मोतीलालजी मेनारिया द्वारा प्रस्तुत उपर्युक्त धारणाएं निराधार एवं भ्रामक हैं। यद्यपि यह सही है कि अधिकांश डिंगल साहित्य की रचना चारणों ने की, पर अन्य जातियों ने उसे अपनाया ही न हो अथवा प्रोत्साहन न दिया हो, ऐसी बात नहीं है। चारणों व मोतीसरों के अतिरिक्त, राजपूतों, पंचोलियों, मुहतों और जैन यतियों आदि चारणेतर जातियों के अनेक कवियों की कविता पर्याप्त परिमाण में उपलब्ध होती है।[२] ब्राह्मणों ने इस भाषा को छुआ ही न हो यह बात तो सर्वथा निराधार है, क्योंकि रणमल्ल छंद का रचयिता श्रीधर,[३] कान्हड़दे प्रबन्ध का रचयिता पद्मनाभ,[४] हंसाउली का रचयिता

(१) राजस्थान का पिंगल साहित्यः डा० मोतीलाल मेनारिया, पृ० १२
(२) द्रष्टव्य-राजस्थानी साहित्य का मध्यकाल (परम्परा), भाग १५-१६
(३) प्राचीन राजस्थानी गीतः सा० सं०, उदयपुर, भाग ६, पृ० ४०
(४) कान्हड़दे प्रबन्ध : मुनि जिन विजय का प्रधान सम्पादकीय वक्तव्य, पृ० २

अमाइत[1] आदि ब्राह्मण थे और उन्होंने उच्च कोटि की साहित्यिक डिंगल का प्रयोग अपनी उक्त रचनाओं में किया है। इनके अतिरिक्त मांडउ व्यास,[2] गुल्ल व्यास,[3] भवानीदास व्यास,[4] और परशुराम[5] आदि ब्राह्मण कवियों की सुन्दर डिंगल रचनाएं प्राप्त होती हैं।

(ख) डा० मेनारियाजी द्वारा प्रस्तुत यह धारणा भी भ्रामक है कि—"डिंगल का जनता से सीधा सम्पर्क नहीं था तथा इसकी जीवनी-शक्ति राज्य कृपा पर निर्भर थी।"[6] अधिकांश चारण कवि राज्याश्रित थे, इसका यह तात्पर्य नहीं कि जनता का उनके साथ कोई सम्पर्क ही नहीं रहा हो। किसी भी देश की भाषा राज्याश्रित लोगों की भाषा अथवा वर्ग-विशेष की भाषा नहीं होगी, और फिर डिंगल कोई विदेशी भाषा नहीं थी। वह तो स्वतः जनता द्वारा ही निर्मित भाषा थी, जिसका प्रयोग दैनिक जीवन में होता था, क्योंकि वह चारण-भाटों की बनाई हुई कृत्रिम भाषा नहीं थी।[7] जहां तक डिंगल भाषा में रचित साहित्य का प्रश्न है, कुछ क्लिष्ट रचनाओं को छोड़ दें तो हजारों दोहे, सोरठे, छप्पय और गीत आज भी यहाँ की जनता के कण्ठहार बने हुए हैं। गाँव के अशिक्षित व्यक्ति के मुँह से भी दो चार छंद सुनने को मिल सकते हैं। जनता में डिंगल साहित्य का प्रचार-प्रसार अंग्रेजों के राज्यकाल की अवधि में जाकर ही शिथिल हुआ। इसका मुख्य कारण भारतीय जनता को अपनी सांस्कृतिक परम्पराओं से अनभिज्ञ रखने की नीति थी। प्राचीन राजस्थानी भाषा की चारण कृतियों की लोकप्रियता को प्रतिपादित करने के लिए स्व० झवेरचंद मेघाणी का कथन यहां उल्लेखनीय है— "चारण का दूहा राजस्थान की किसी भी सीमा में से राजस्थानी भाषा में अवतरित होता तथा कुछ वेश बदल कर काठियावाड़ में भी घर-घराऊ बन जाता।"[8] इससे यह प्रमाणित होता है कि प्राचीन राजस्थानी साहित्य का जनता में कितना अधिक प्रचार था। वह वर्ग-विशेष के दायरे में कभी आबद्ध नहीं रहा।

---

(१) प्राचीन राजस्थानी गीत : सा० सं०, उदयपुर, भाग ६, पृ० १५
(२) राजस्थानी साहित्य का मध्यकाल (परम्परा), भाग १५-१६, पृ० १३०
(३) वही।
(४) वही, पृ० १४७
(५) वही, पृ० १४०
(६) राजस्थान का पिंगल साहित्य : डा० मोतीलाल मेनारिया, पृ० ११
(७) चारण अने चारणी साहित्यः झवेरचंद मेघाणी, पृ० ४७
(८) राजस्थानी भाषा पर स्व० मेघाणीजी का मत:शोध—पत्रिका, भाग ५, अंक ३, पृ० ५७

(ग) कुछ विद्वानों ने इस प्रकार की भ्रान्त धारणाएं भी प्रकट की हैं कि "पिंगल संस्कृत के छंदशास्त्र से अनुशासित होती है। उसमें उच्चारण और मात्रा के भेद हैं और शब्द-प्रयोग व्याकरण के नियमों में आबद्ध हैं। डिंगल में यह परतंत्रता स्वीकार नहीं की जाती। इससे डिंगल का कवि अपेक्षाकृत अधिक स्वतंत्र है।"[1]

डिंगल व्याकरण-गत नियमों से अनुशासित न हो, ऐसी बात नहीं है। भाषा-विज्ञान के अनुसार किसी भी जन-समुदाय की बोली जब साहित्यिक भाषा का रूप ग्रहण कर लेती है तो उसमें स्वतः व्याकरण-गत नियमों का निर्माण हो जाता है। डिंगल के कुछ कवियों ने जो भी स्वतंत्रता भाषा के प्रयोग में बरती है, वह अनियमितता अथवा स्वच्छंदता की श्रेणी में नहीं रखी जा सकती, क्योंकि ऐसी स्वतंत्रता तो थोड़ी-बहुत मात्रा में अन्य भाषाओं के कवियों में भी देखी जा सकती है। जहां तक छंद शास्त्र आदि का प्रश्न है, डिंगल का अपना छंदो-विधान है और काव्य-रचना के नियमोपनियम भी हैं। अद्यावधि जो भी इस क्षेत्र में खोज हुई है, उसके आधार पर कोई एक दर्जन डिंगल के लक्षण-ग्रन्थों का पता लग चुका है।[2] अतः डिंगल काव्य-रचना को अनियमित तथा गंवारू[3] कहना भी उचित प्रतीत नहीं होता।

(घ) डा० जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव ने अपने शोध-प्रबंध "डिंगल साहित्य" में लिखा है–"जहां अन्य भाषाओं में शृङ्गारिक साहित्य का प्राधान्य है, वहां डिंगल में इस कोटि का साहित्य अत्यल्प है।"[4] इसका कारण बताते हुए उन्होंने आगे लिखा है—"डिंगल की अपेक्षा पिंगल अधिक माधुर्य तथा प्रसाद–गुणसम्पन्न थी। अतः शृङ्गार सम्बन्धी रचना के लिए राजस्थान के अधिकांश कवियों ने पिंगल को अपनाया।"[5]

समूचे डिंगल साहित्य का अवलोकन करने पर वस्तुस्थिति उपर्युक्त कथन से बिल्कुल भिन्न प्रतीत होती हैं। इसमें संदेह नहीं कि शृङ्गार रस के श्रेष्ठ कवि बिहारी, मतिराम, पद्माकर आदि ने ब्रज–भाषा को ही अपनाया था तथा पिंगल का लालित्य शृंगारिक भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिए बड़ा उपयुक्त है, परन्तु डिंगल भाषा में शृङ्गार रसात्मक रचना अत्यल्प हुई हो अथवा उन रचनाओं में रसोद्रेक की कमी रही हो, ऐसा नहीं लगता। डिंगल काव्य वीर, शृंगार और भक्तिरस की त्रिवेणी के रूप में प्रसिद्ध है। शृंगार रस सम्बन्धी प्रबन्ध एवं स्फुट

(१) राजस्थान-साहित्य : परम्परा और प्रगति : डा० सरनामसिंह, पृ० २२
(२) पिंगल सिरोमणी (परम्परा), भाग १३, पृ० १८६–१९३
(३) Dr. Tessitori : JASB (NS) Vol. X, No. 10, Page 376
(४) डिंगल साहित्य: डा जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव, पृ० ३०
(५) डिंगल साहित्य : डा० जगदीशप्रसाद श्रीवास्तव, पृ० ३०

रचनाएं काफी बड़े परिमाण में मध्यकालीन डिंगल भाषा में रची गई हैं। स्वतंत्र काव्य-रचना के अतिरिक्त अनेक प्रेम-कथाओं में सैकड़ों दोहे, सोरठे तथा चन्द्रायणा व छप्पय आदि छंद बिखरे पड़े हैं, जिनमें कवियों की मौलिक सूझ-बूझ और रसोद्रेक की असाधारण क्षमता है। यहां यह कहना भी अप्रासंगिक न होगा कि ब्रज-भाषा का अधिकांश शृंगारिक काव्य जहां रीतिबद्ध और नायक-नायिकाओं की विभिन्न श्रेणियों को चमत्कारिक अभिव्यक्ति देने वाला है,वहां डिंगल का शृंगारिक काव्य जीवन की वास्तविक घटनाओं से उद्भूत प्रेम की अत्यन्त तीव्र, निश्छल एवं मार्मिक अभिव्यक्ति देने वाला है। इस कथन की पुष्टि के लिए ढोलामारू रा दूहा,[1] जेठवे रा सोरठा,[2] नागजी रा दूहा,[3] बींजरै रा सोरठा,[4] माधवानल कामकंदला,[5] हंस और सरोवर रा दूहा[6] आदि रचनाएं यहां उल्लेखनीय हैं।

(ङ) 'वचनिका राठौड़ रतनसिंघ री महेसदासोत री खिड़िया जगा री कही' की भूमिका में श्री काशीराम शर्मा ने राजस्थान की साहित्यिक भाषाओं पर विचार करते समय लिखा है–'वस्तुस्थिति यह प्रतीत होती है कि जिसको पिंगल कहा जाता है, वह पूर्वी राजस्थान की साहित्यिक भाषा थी और जिसको डिंगल कहा जाता है, वह पश्चिमी राजस्थान की।'[7]

राजस्थान के साहित्यिक क्षेत्र अथवा उसकी साहित्य-सम्पदा को इस प्रकार विभक्त करना उचित नहीं जान पड़ता, क्योंकि प्रारम्भ में राजस्थान की साहित्यिक भाषा डिंगल ही रही है। ब्रज-भाषा का आगमन १६वीं शताब्दी के आस-पास हुआ और उसका अधिक प्रचलन कहीं १८वीं शताब्दी में जाकर संभव हो सका। पूर्वी राजस्थान की सीमा ब्रज-भाषा के क्षेत्र से मिली हुई है। इसलिए उधर के कुछ हिस्से पर ब्रज का प्रभाव अधिक पड़ा, पर पिंगल अपने उत्कर्ष-काल में पूर्वी राज-

---

(१) ढोला-मारू रा दूहा : सं० रामसिंह, सूर्यकरण, नरोत्तमदास, २ शम्भूसिंह मनोहर

(२) जेठवे रा सोरठा (परम्परा), भाग ५

(३) राजस्थानी साहित्य संग्रह : सं० लक्ष्मीनारायण गोस्वामी, भाग ३

(४) रसराज (परम्परा), भाग ८

(५) ओरियन्टल सीरीज, बड़ौदा।

(६) रसराज (परम्परा), भाग ८

(७) वचनिका राठौड़ रतन सिंघजी री महेसदासोत री खिड़िया जगा री कही : सं० काशीराम शर्मा, डा० रघुवीरसिंह, भूमिका पृ० १३

स्थान तक ही साहित्यिक भाषा के रूप में रही हो, यह कहना उचित नहीं जान पड़ता ; उसका फैलाव समूचे राजस्थान में हुआ। पहले जहां भाट लोग मुख्यतः पिंगल में रचना करते थे,[1] वहां कालान्तर में चारण कवियों ने भी इसे अपनाया फिर भी डिंगल का प्रचार और प्रभुत्व पूरे राजस्थान पर बना रहा। पूर्वी राजस्थान में पिंगल का प्रचलन अधिक होने पर भी उस क्षेत्र के कवि सूर्यमल्ल मिश्रण (बूंदी), बदनजी मिश्रण (बूंदी), महाराजा बहादुरसिंह (किशनगढ़), महाराजा राजसिंह (किशनगढ़), महारानी बांकावती (किशनगढ़), हुकमीचन्द खिड़िया (जयपुर), सागर कविया (जयपुर), हरिदास मेहडू (हाड़ौती), हरिदास भादा (जयपुर), वृन्द (किशनगढ़), कृपाराम खिड़िया (सीकर), नगराम खिड़िया (सीकर), हरदांन किनिया (दांता रामगढ़), देवीदांन गाडण (जयपुर), रामनाथ कविया (अलवर), राव देवीसिंह (सीकर), गोपालदांन कविया (सीकर), शिवबक्स पाल्हावत (अलवर) आदि कवियों ने डिंगल में उच्चकोटि की रचनाएं की हैं।[2]

इधर पश्चिमी राजस्थान में महाराजा मानसिंह (जोधपुर), बांकीदास आशिया (जोधपुर), उत्तमचंद भंडारी (जोधपुर), नरहरिदास बारहठ (जोधपुर), ब्रह्मदास बीठू (जोधपुर), स्वरूपदास (जोधपुर), गणेशपुरी (अजमेर), ईसरदास बोगसा (जोधपुर), महाराणा जवानसिंह (उदयपुर), महाराणा सज्जन सिंह (उदयपुर), महाराजा अजीत सिंह (जोधपुर), महाराजा जसवंतसिंह (जोधपुर), बसंतराय (पुष्कर), मुरारीदांन (जोधपुर), ऊमरदांन (जोधपुर), अजीतसिंह मेहता (जैसलमेर), कविराव बख्तावर (उदयपुर), केसरीसिंह बारहठ (उदयपुर) आदि कवियों ने पिंगल में भी डिंगल के साथ-साथ सुन्दर रचनाएं की हैं।[3] इसलिए भौगोलिक क्षेत्रों के आधार पर इन साहित्यिक भाषाओं का क्षेत्र निर्धारण युक्ति-संगत नहीं जान पड़ता।

(च) १८वीं तथा १९वीं शताब्दी के अन्तर्गत राजस्थान में पिंगल साहित्य की खूब रचना हुई। अनेक कवियों ने बड़े-बड़े ग्रन्थ रचे, जिसके आधार पर डा० मोतीलालजी मेनारिया ने यह निष्कर्ष निकाला है कि वस्तुतः पिंगल साहित्य डिंगल साहित्य की अपेक्षा मात्रा में अधिक है।[4] पिछले कुछ वर्षों में राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान जोधपुर, साहित्य संस्थान उदयपुर, अभयजैन पुस्तकालय बीकानेर के

---

(१) (क) डिंगल चारण चातुरी, पिंगल भाट प्रकास। (कविकुल बोध—रा० शो० सं०, जोधपुर का संग्रह)
(ख) राजस्थानी साहित्य एक परिचय : नरोत्तमदास स्वामी, पृ० १२,१३
(२) द्रष्टव्य— राजस्थानी साहित्य का मध्यकाल (परम्परा), भाग १५-१६
(३) द्रष्टव्य— राजस्थान का पिंगल साहित्य: डा० मोतीलाल मेनारिया।
(४) राजस्थान का पिंगल साहित्य: डा० मोतीलाल मेनारिया, पृ० २३

संग्रहालयों के अतिरिक्त अनेक व्यक्तियों के संग्रहों में हजारों हस्तलिखित ग्रन्थ संगृहीत हुए हैं। इन ग्रन्थों का सर्वेक्षण करने से प्रतीत होता है कि पिंगल के अनुपात में डिंगल की कृतियां कम नहीं हैं।[1] डिंगल का बहुत-कुछ प्राचीन साहित्य अभी प्रकाश में नहीं आया है और बहुत-सा साहित्य अभी तक कण्ठस्थ है।[2] १६ वीं शताब्दी के पूर्व का तो कितना ही बहुमूल्य साहित्य लुप्त हो चुका है। उसके पश्चात् भी मौखिक परम्परा पर जीवित रहने वाले कितने ही डिंगल गीत तथा दोहे आदि विस्मृति के गर्त में खो गए होंगे।

इस स्पष्टीकरण के पश्चात् हमारे विवेच्य विषय (डिंगल गीत साहित्य) का अध्ययन प्रस्तुत करने के पूर्व पृष्ठ-भूमि के रूप में यहां राजस्थानी साहित्य का विहंगावलोकन करना वांछनीय है।

(३) राजस्थानी साहित्य एक विहंगावलोकन—

आधुनिक भारतीय भाषाओं के साहित्य में राजस्थानी साहित्य का अपना महत्व है। यह साहित्य गद्य तथा पद्य के माध्यम से बहुत बड़े परिमाण में लिखा गया है। 'जिस परिमाण में यहां साहित्य-सृजन हुआ है, उसका कुछ ही अंश प्रकाश में आया है। अनगिनत हस्तलिखित ग्रंथों में वह अमूल्य सामग्री ज्ञात-अज्ञात स्थानों पर बिखरी पड़ी है। काव्य, दर्शन, ज्योतिष, शालिहोत्र, संगीत, वेदान्त, वैद्यक, गणित, शकुन आदि से सम्बन्धित मौलिक ग्रंथों के अतिरिक्त कितने ही संस्कृत, प्राकृत, फारसी आदि के प्राचीन ग्रंथों के अनुवाद व टीकाओं का निर्माण यहां हुआ है।'[3] विवेचन की सुविधा के लिए उक्त साहित्य को हम निम्नलिखित वर्गों में विभक्त कर रहे हैं :

(क) जैन साहित्य

(ख) चारण साहित्य

(ग) भक्ति साहित्य

(घ) लोक साहित्य

(ङ) अनूदित साहित्य

(क) जैन साहित्य—

जैन साहित्य प्रायः जैन यतियों तथा उनके श्रावकों द्वारा लिखा गया है। अधिकांश साहित्य धार्मिक एवं उपदेशात्मक है। धर्म-गुरुओं, धर्म-परायण भक्तों

---

(१) राजस्थानी सबद कोस (भूमिका): सं० सीताराम लालस, पृ० ८७

(२) वही।

(३) राजस्थानी सबद कोस (भूमिका): पृ० ८३

तथा सती-साध्वी स्त्रियों के चरित्र भी उनके काव्य-विषय रहे हैं। ढाल, ठवणो गीत, वस्तु, चौपई, सन्धी, रास, स्तवन, फागु, सज्झाय, पद, चरित्र आदि अनेकों रूपों में यह साहित्य उपलब्ध होता है। धर्म-सापेक्ष साहित्य के अतिरिक्त कई कवियों ने प्रेम, नीति, ऋतु, आदि विषयों को लेकर धर्म-निरपेक्ष रचनाएं की हैं। जैन कवि कुशललाभ ने माधवानल कामकन्दला, तथा 'ढोला मारू री चौपई' की रचना की।[१] धर्मवर्द्धन ने अनेक लोकोपयोगी विषयों को अपनाया है[२] तथा जिनहर्ष (जसराज) ने शृंगार रसात्मक एवं प्रकृति वर्णन सम्बंधी कविताएं लिखी हैं,[३] पर ऐसे कवि अल्पसंख्यक हैं।

जैन विद्वानों द्वारा अनूदित साहित्य भी बड़े परिमाण में उपलब्ध होता है। यह टीकाएं, बालावबोध, टब्बा, सूड, वार्तिक, स्वोपज्ञ-वृत्ति आदि अनेक रूपों में मिलता है।[४] टीकाओं की शैली भी अनेक प्रकार की मिलती है, कुछ तो संक्षेप में भावों को प्रकट करने वाली हैं, तो किन्हीं का झुकाव शब्दों की ओर अधिक है और कई एक को विस्तृत विवेचन करना अभीष्ट रहा है।[५]

साहित्य-सृजन के अतिरिक्त प्राचीन साहित्य के संग्रह एवं संरक्षण का अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य भी इन जैन साधुओं ने किया है। यही कारण है कि जैन साहित्य आज भी इतने बड़े परिमाण में उपलब्ध होता है। एक ही ग्रन्थ की अनेक प्रतिलिपियां भी सुरक्षित हैं। कई जैन मंदिरों, उपाश्रयों तथा जैन विद्वानों के पास आज भी हस्तलिखित पोथियों के बड़े-बड़े भंडार हैं।

(ख) चारण साहित्य

डिंगल साहित्य में चारण शैली के साहित्य का विशिष्ट महत्व है, क्योंकि मध्यकालीन राजस्थान की ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक मान्यताओं का चित्रण इस साहित्य में सर्वाधिक मिलता है। चारणों के अतिरिक्त राजपूत, ब्राह्मण, ढाढ़ी, ढोली, मोतीसर, भाट, राव, रावल, सेवग और ओसवाल आदि अनेक जातियों के कवियों ने अपनी रचनाओं से इस साहित्य की श्रीवृद्धि की है। ऐतिहासिक घटनाओं के आधार पर वीर-रसात्मक साहित्य इस शैली में अधिक लिखा गया, परन्तु अन्य रसों का भी साहित्य अच्छे परिमाण में उपलब्ध होता है।

---

(१) राजस्थानी भाषा और साहित्य: डा० हीरालाल माहेश्वरी, पृ० २५६
(२) द्रष्टव्य- धर्मवर्द्धन ग्रन्थावली: अगरचंद नाहटा, सा० रा० रि० इ० बीकानेर
(३) द्रष्टव्य- जिनहर्ष ग्रंथावली: अगरचंद नाहटा, सा० रा० रि० इ०,बीकानेर।
(४) नीति प्रकास (परम्परा) : अगरचंद नाहटा, भाग ६-१०, पृ० १७२
(५) वही।

चारणों द्वारा रचित साहित्य प्रबन्धात्मक, स्फुट एवं गद्य रूप में मिलता है। प्रबंधात्मक काव्य, रासो, वेलि, रूपक, प्रकास, विलास, झमाल, साको, गुण आदि नामों से लिखे गये हैं।

स्फुट काव्य-रचना दोहा, गीत, छप्पय, कुंडलियां, नीसांणी, झूलणा, नाराच, पद्धरी, त्रोटक, मोतीदाम, रसावला, रेणकी, गाहा आदि छंदों में मिलती है। विषय-वैविध्य इस स्फुट-साहित्य का विशिष्ट गुण है। उपर्युक्त छंदों में दोहा और गीत का सर्वाधिक प्रयोग हुआ है। वे चारण साहित्य के प्रमुख छंद रहे हैं,जिनमें से हम अपने विवेच्य विषय गीत पर आगे यथास्थान सविस्तार प्रकाश डालेंगे।

चारण साहित्य के अंतर्गत गद्य-रचनाएं भी बहुत बड़े परिमाण में हुई हैं। ऐतिहासिक एवं सामाजिक जानकारी तथा राजस्थानी भाषा के विकास की दृष्टि से इस साहित्य का बड़ा महत्व है। अधिकांश गद्य ऐतिहासिक एवं अर्द्ध- ऐतिहासिक विषयों को लेकर लिखा गया है, जो वात, ख्यात, पीढ़ी, वंशावली, विगत, हकीगत, खत, पट्टा, परवाना आदि विधाओं के रूप में उपलब्ध होता है।[1]

उल्लिखित रचना-प्रणालियों के अलावा गद्य-पद्य मिश्रित रचनाओं का भी प्रणयन हुआ है। इस प्रकार की रचनाओं में वचनिका तथा दवावेत का विशेष महत्व है। अचलदास खीची री वचनिका,[2] राठौड़ रतनसिंघ महेसदासोत री वचनिका,[3] तथा वचनिका स्थान[4] प्रसिद्ध हैं। दवावेतों में महाराजा अजीतसिंह री दवावेत,[5] ठाकुर रघुनाथसिंह राजावत री दवावेत,[6] महाराणा जवानसिंह री

---

(१) ऐतिहासिक वार्ता (परम्परा), भाग ११. भूमिका, पृ० १०–१२

(२) अचलदास खीची री वचनिका: सं० नरोत्तमदास स्वामी, सा० रा० रि० इ०, बीकानेर।

(३) वचनिका राठौड़ रतनसिंहजी री महेसदासोत री खिड़िया जगा री कही: काशीराम शर्मा, रघुवीरसिंह, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।

(४) वचनिका स्थान:वृन्द सेवक:राजस्थानी सबद कोस: भाग १, पृ० १५५

(५) महाराजा अजीतसिंहजी री दवावेत: द्वारकादास दधवाड़िया:रा० शो० सं०, जोधपुर का संग्रह।

(६) ठाकुर रघुनाथसिंह राजावत (ईसरदा) री दवावेत: दुर्गादत्त बारहठ: रा० शो० सं०, जोधपुर का संग्रह।

दवावेत,[१] राजसिंह गौड़ री दवावेत,[२] महाराव अक्षयराज देवड़ा री दवावेत[3] ग्रादि महत्वपूर्ण हैं ।

(ग) भक्ति साहित्य

जैन धर्मावलम्बियों के अतिरिक्त निर्गुण एवं सगुण भक्तिधारा के अनेक कवियों ने राजस्थानी में भक्ति साहित्य का सृजन किया है। यहां के भक्तों का सगुण की अपेक्षा निर्गुण भक्ति की ओर अधिक झुकाव रहा है।[४]

सगुण भक्तिधारा के अन्तर्गत राम, कृष्ण, शिव तथा देवी के अवतारों की महिमा गाई गई है। राम भक्ति शाखा के प्रसिद्ध ग्रंथ राम-रासो (माधवदास दधवाड़िया),[५] रुघरास (रघुनाथ मुहता),[६] रामायण मेवाड़ी (महाराज चतुरसिंह),[७] अवतार सार (एकलिंगदान सिढ़ायच)[८] आदि हैं। इनके अतिरिक्त राम के चरित्र को आधार बनाकर लक्षण ग्रंथों का भी सृजन हुआ है। इस कोटि के ग्रंथों में पिंगल सिरोमणी (महारावल हरराज),[९] रघुनाथ रूपक गीतां रो (मंछाराम सेवग),[१०] रघुवर जस प्रकास (किसना आढ़ा)[११] प्रभृति प्रसिद्ध हैं।

कृष्ण भक्ति शाखा की प्रमुख रचनाएं वेलि क्रिसन रुकमणी री (पृथ्वीराज

---

(१) शोध-पत्रिका:महाराणा जवानसिंह री दवावेत : सौभाग्यसिंह शेखावत, (भाग १३, अंक ४, पृ० ४३)

(२) शोध-पत्रिका: राजसिंह गौड़ री दवावेत: मालीदास भाट, भाग १२, अंक २

(३) महाराव अक्षयराज देवड़ा री दवावेत: शोध-पत्रिका, भाग १३, अंक ४,पृ०३६

(४) राजस्थानी सबद कोस: भूमिका, भाग १, पृ० ८५

(५) राजस्थानी भाषा और साहित्य: डा० हीरालाल माहेश्वरी, पृ० १७०

(६) मरु-भारती: रघुनाथ कृत रुघरास: फूलसिंह हिमांशु, वर्ष ८, अंक १, पृ० ५८-६५

(७) राजस्थानी भाषा और साहित्य: पं० मोतीलाल मेनारिया, पृ० ३४२

(८) सा० सं०, उदयपुर का संग्रह ।

(९) पिंगल सिरोमणी (परम्परा), भाग १३

(१०) रघुनाथ रूपक गीतां रो: सं० महतावचंद खारेड़, ना० प्र० स०, काशी ।

(११) रघुवर जस प्रकास: रा० प्रा० प्र०, जोधपुर ।

राठौड़),[१] रुक्मणी हरण (सांया झूला),[२] गज-उद्धार (महाराजा अजीतसिंह),[३] नागदमण (सांया झूला),[४] गुण विजे ब्याह (मुरारीदास),[५] रुकमणी हरण (विठलदास),[६] गुण गोविन्द (कल्याण दास राव),[७] आदि हैं।

शिव तथा पार्वती की कथा को लेकर भी कई भक्तों ने रचनायें की हैं, जिनमें शिव पार्वती री वेलि (किसना आढ़ा),[८] शिवपुराण (आईदान गाडण)[९] बड़े महत्व के हैं। डिंगल में देवी के विभिन्न अवतारों तथा उनके चमत्कारों का वर्णन कई प्रकार से किया गया है। चारण जाति में अनेकों देवियाँ हुई हैं, जिनकी मान्यता राजपूत समाज में अभी तक है। प्रबंधात्मक एवं स्फुट दोनों ही तरह का विपुल साहित्य इन देवियों की स्तुति के रूप में लिखा गया है। इस विषय के प्रसिद्ध ग्रंथ माताजी री वचनिका (जयचंद जती),[१०] सप्तसती रा छंद (श्रीधर)[११] देवी सप्तसती (कुशललाभ),[१२] देवीयाण (ईसरदास),[१३] गुण हिंगलाज रासो,[१४] करणी रूपक,[१५] करणी चरित्र,[१६] मेहाई महिमा[१७] आदि हैं।

---

(१) वेलि किसन रुकमणी री : सं० रामसिंह, सूर्यकरण, हिन्दुस्तानी एकेडमी, प्रयाग।
(२) राजस्थानी भाषा और साहित्य: पं० मोतीलाल मेनारिया, पृ० १७७
(३) गज-उद्धार ग्रंथ (परम्परा): महाराजा अजीतसिंह, भाग १७
(४) राजस्थानी भाषा और साहित्य: पं० मोतीलाल मेनारिया, पृ० १७७
(५) राजस्थानी साहित्य का मध्यकाल (परम्परा) : मनोहर शर्मा, भाग १५-१६, पृ० ३५
(६) राजस्थान भारती, भाग १, अंक १, पृ० ३०
(७) राजस्थानी भाषा और साहित्य : पं० मोतीलाल मेनारिया, पृ० २०८-२०९
(८) शिव पार्वती री वेलि : सं० रावत सारस्वत, सा० रा० रि० इ०, बीकानेर।
(९) वरदा : आईदांन गाडण रो कह्यो सिवपुराण, वर्ष ६, अंक २, पृ० ३८
(१०) पम्परा भाग २०
(११) मरु-वाणी : जयपुर, वर्ष ४, अंक १०-११
(१२) राजस्थानी साहित्य का मध्यकाल (परम्परा) : मनोहर शर्मा, भाग १५-१६, पृ० ४४।
(१३) राजस्थानी सवद कोस : (भूमिका), भाग १, पृ० १२८
(१४) राजस्थानी साहित्य का मध्यकाल (परम्परा), भाग १५-१६, पृ० ४३।
(१५) वही।
(१६) करणी चरित्र : अक्षयसिंह रतनू, जयपुर।
(१७) मेहाई महिमा : हिंगलाजदांन कविया, जयपुर।

१६वीं शताब्दी के लगभग उत्तरी भारत की संत परम्परा का प्रभाव राजस्थान पर भी पड़ा जिससे अनेक सम्प्रदायों ने अपने दार्शनिक विचारों से जनता के मानस को आलोड़ित किया। अपनी सरस वाणियों में अनेक संतों ने ज्ञान और ईश्वर की महिमा का उद्घाटन किया है। प्रसिद्ध गुरुओं की शिष्य परम्परा का उल्लेखनीय योग इस साहित्य की उत्तरोत्तर वृद्धि में सहायक हुआ है। ये वाणिया विभिन्न राग-रागनियों में गाई जाती हैं, जिससे इनका प्रचलन जनता में बहुत हुआ। अनपढ़ लोग भी इन वाणियों को सुनकर झूम उठते हैं। सामान्य स्तर के लोगो मे इनका प्रचार अत्यधिक है।

कबीर, दादू, हरिपुरुष, रज्जब, हरिरांम, सुखरांम, जियारांम, अचलरांम, दयालदास और महाराजा मानसिंह आदि की वाणियां प्रसिद्ध हैं। वाणियों के अतिरिक्त अन्य शैलियों में भी निर्गुण रचनाएं हुई हैं। महात्मा अलूनाथ के छप्पय,[1] नांदण बारहठ के छप्पय,[2] ईसरदास बोगसा के छंद[3] और पीरदान लालस की रचनाएं[4] इस दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं।

(घ) लोक साहित्य—

लोक साहित्य की परम्परा बहुत प्राचीन है। इसके अनेक गीतों और सुभाषितों का सम्बन्ध ठेठ अपभ्रंश कालीन रचनाओं से है।[5] राजस्थान की संस्कृति का जीता-जागता चित्रण इस लोक-साहित्य में उपलब्ध होता है। अनगिनत लोक-गीतों, पवाड़ों, कथाओं, सुभाषितों आदि में यहाँ की जनता के भावोद्गार एवं युगों का अनुभव संचित है। अनेक लोकगीत तथा पवाड़े ऐतिहासिक तथा अर्द्ध ऐतिहासिक घटनाओं को लेकर भी निर्मित हुए हैं। पवाड़ों में पाबूजी, निहालदे, बगड़ावत आदि प्रसिद्ध हैं। इन्हें राजस्थान की विशिष्ट जातियों ने अपना रखा है, जिससे बहुत बड़े पवाड़े भी सुरक्षित रह सके हैं। पाबूजी के पवाड़े थोरी लोग गाया करते हैं।[6] निहालदे, जोगियों (नाथों) द्वारा सारंगी पर गाया जाता है और बगड़ावत गूजरों में अधिक प्रचलित है।[7]

---

(१) राजस्थानी साहित्य का आदिकाल (परम्परा) : भाग १५-१६, पृ० ५१।

(२) सा० सं०, उदयपुर का संग्रह।

(३) सीताराम लालस, जोधपुर का संग्रह।

(४) पीरदान ग्रंथावली : सं० अगरचंद नाहटा, सा० रा० रि० इ०, बीकानेर।

(५) राजस्थानी साहित्य का आदिकाल (परम्परा) : भाग १२, पृ० ६३-७६।

(६) वही, पृ० १४।

(७) वही।

लोक गीत यहां के जन-मानस की बहुत विशाल थाती है। जन्म से लेकर मरण तक के धार्मिक संस्कारों, कुटुम्ब के सम्बन्धों व प्रेम-लीलाओं को इनमें बड़ी सहज अभिव्यक्ति मिली है। त्यौहार तक इनके बिना अधूरे रह जाते हैं। विभिन्न राग-रागनियों में गाने वाली निम्न पेशेवर जातियां रावल, ढोली, लंगा, वेश्याएं आदि भी मनोविनोद के लिए बहुत सुन्दर गीत गाती हैं।[1] मांड तथा सोरठ आदि रागनियों में प्रमुख रूप से प्रेम सम्बन्धी गीत ये लोग गाते हैं।

लोक-कथाएं भी अत्यंत रोचक और सामाजिक दृष्टि से उपयोगी हैं। इनमें यहां के समाज की अनेक मान्यताएं और विश्वास सुरक्षित हैं। सुभाषित, कहावतें और प्रहेलिकाएं आदि भी कम महत्वपूर्ण नहीं हैं। उनमें राजस्थान वासियों की पीढ़ियों का अनुभव सूत्र रूप में संचित है। कहावतों में स्त्री-जाति के प्रति भाव, शकुन सम्बन्धी बहुत से लोक-विश्वास,[2] आभूषण, वस्त्र, खेतीवाड़ी, पशु-पक्षी और वनस्पति आदि से सम्बन्धित ज्ञान का सम्यक् परिचय मिलता है। प्रहेलिका साहित्य को मनोरंजन और गूढ़ ज्ञान का कोश कहा जा सकता है।

(ङ) अनूदित साहित्य—

डिंगल भाषा में मौलिक साहित्य के अतिरिक्त अनेक विद्वानों ने प्राचीन भाषाओं के विशिष्ट ग्रंथों के अनुवादों से इसके साहित्य भण्डार की वृद्धि की है। भागवत, चाणक्यनीति, भर्तृहरि शतक, रामायण, गीता व जातक कथाओं के अनुवादों के अलावा वैताल पच्चीसी,[3] सिंहासन बतीसी,[4] शुक बहोतरी, आदि संस्कृत ग्रंथों के अनुवाद राजस्थानी में हुए हैं। ज्योतिष, शकुन, शालिहोत्र, पाक-विधान, वैद्यक आदि विषयों के ग्रंथों की टीकाएं भी बहुत बड़ी संख्या में उपलब्ध होती हैं। इसके अतिरिक्त अरबी, फारसी भाषा के कई ग्रंथों के अनुवाद भी पाए जाते हैं। फारसी ग्रंथ अखलाक ए मोहसनी का अनुवाद 'नीति प्रकास' के नाम से हुआ है।[5] जैन धर्मावलम्बियों की देन भी इस क्षेत्र में बहुत महत्वपूर्ण है, जिसका उल्लेख पहले किया जा चुका है।

छंद शास्त्र तथा कोश-निर्माण की ओर भी यहां के विद्वानों का ध्यान गया है। पिंगल सिरोमणी (रावल हरराज), कविकुल बोध (उम्मेदराम), लखपत पिंगल

---

(१) लोक गीत (परम्परा), भाग १, पृ० १३५-१४२।
(२) राजस्थानी कहावतें : डा० कन्हैयालाल सहल, बं० हि० मं०, कलकता, पृ० ६१
(३) वैताल पच्चीसी : सं० अचलसिंह, राजस्थानी प्रकाशन, जोधपुर।
(४) सिंघासन बत्तीसी : सं० अचलसिंह, राजस्थानी प्रकाशन, जोधपुर।
(५) नीति प्रकास (परम्परा), भाग ९-१०।

(हमीरदान), रघुवीर जस प्रकास (किसना आढ़ा) तथा रघुनाथ रूपक (मंछाराम) जैसे लक्षण ग्रंथ इस भाषा में उपलब्ध होते हैं। पर्यायवाची, अनेकार्थी तथा एकाक्षरी कोशों की रचना भी छंदोबद्ध रूप में हुई है।[१]

जिस भाषा के दीर्घकालीन इतिहास में अनेक साहित्यिक विधाओं का सृजन हुआ और कितने ही लक्षण-ग्रंथ तथा कोश आदि बने, उस भाषा की साहित्य-सम्पदा की विपुलता, विशालता, विविधता तथा समृद्धि का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है।

गीत छंद—

गीत और दोहा डिंगल काव्य के अत्यन्त लोकप्रिय छंद रहे हैं। अधिकांश स्फुट साहित्य इन छंदों के माध्यम से ही रचा गया है। दोहा अपभ्रंश की देन है पर गीत राजस्थानी भाषा की अपनी विशेषता है।[२] जिस प्रकार दोहा अपभ्रंश का लाडला छंद है, उसी प्रकार गीत डिंगल का प्रिय छंद है। संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश आदि प्राचीन भाषाओं में एक न एक छंद सर्वाधिक प्रिय रहा है। नया छंद नये मनोभावों की सूचना देता है। श्लोक का उदय नई साहित्यिक मोड़ की सूचना है। वह यह बताता है कि संवेदनशील कवि-चित्त में नये युग के उपःकाल की किरण नवीन जागरण का संदेश दे चुकी है, इसी प्रकार गाथा का उदय दूसरी सूचना है और दोहा का उदय तीसरी।[३] डा० हजारी प्रसाद के उपरोक्त अभिमत के साथ यदि यह भी जोड़ दिया जाय कि गीत का उदय चौथी सूचना है तो अनुचित नहीं होगा, क्योंकि श्लोक जैसे लौकिक संस्कृत का, गाथा प्राकृत का और दोहा अपभ्रंश का प्रतीक हो गया,[४] उसी प्रकार गीत डिंगल का प्रतीक हो गया था। प्रो० नरोत्तमदास स्वामी ने वास्तविक डिंगल साहित्य, इस गीत साहित्य को ही माना है।[५]

गीतों को डिंगल की निजी सम्पत्ति कह सकते हैं। इस अपूर्व तथा अपरिमेय सम्पत्ति के लिए डिंगल को न तो अपनी मां अपभ्रंश का मुंह देखना पड़ा और न सखी व्रज-भाषा का। अतएव निस्संदेह यह गीत-रचना डिंगल कवियों के मस्तिष्क

---

(१) द्रष्टव्य-डिंगल कोश:सं० नारायणसिंह भाटी, रा० शो० सं०, जोधपुर।
(२) राजस्थानी (कलकत्ता): नरोत्तमदास स्वामी, भाग १, पृ० ६६
(३) हिन्दी साहित्य का आदिकाल: डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ० ९०
(४) वही, पृ० ९१
(५) राजस्थानी (कलकत्ता): नरोत्तमदास स्वामी, भाग १, पृ० ६६

की एक अपूर्व उपज कही जा सकती है।[1] डा० मोतीलाल मेनारिया का मत भी इससे मिलता-जुलता ही है। उनके मतानुसार 'उत्तरी भारत की अन्य किसी भाषा में इस तरह के गीत नहीं पाए जाते',[2] यद्यपि यह सच है कि डिंगल शैली के कुछ गीत गुजराती में भी उपलब्ध होते हैं।[3] यहां के विद्वान् कवियों ने गीत को शास्त्रीय मान्यता देते हुए इसके अनेक भेद बताये हैं। गीतों के शास्त्रीय पक्ष पर आगे यथास्थान प्रकाश डाला जाएगा।

डिंगल में गीत-साहित्य बहुत बड़े परिमाण में रचा गया है। 'इन गीतों की संख्या हजारों में है। राजस्थान में कदाचित ही कोई ऐसा वीर हुआ होगा, जिसकी वीरता का एकाध गीत न बना हो। हजारों वीरों की स्मृति को इन गीतों ने जीवित रखा है, जिनको इतिहास ने भी भुला दिया।'[4] इतिहास से सम्बन्ध रखने वाली घटनाओं के अतिरिक्त भक्ति, शृंगार, प्रकृति आदि अनेक विषयों पर भी गीत रचना हुई है।

ये गीत गेय नहीं हैं पर इनके पठन-पाठन की शैली का भव्य रूप अत्यन्त प्रभावोत्पादक है। एक पूरे गीत में भावों का बहाव पहाड़ी नाले के समान बहता हुआ प्रतीत होता है। डा० कुन्हनराजा के शब्दों में—"They flowed like the rippling brook in a mountain slope, sweet and fresh."[5] इसलिए श्रोताओं को अपने साथ बहा ले जाने की अपूर्व क्षमता इस छंद की बहुत बड़ी विशेषता है।

(५) गीत का महत्व—

कीर्ति को अक्षुण्ण बनाने के लिए 'गीतड़ा या भींतड़ा' की कहावत राजस्थान में बहुत प्रचलित है। भींतड़ा (स्मारक, भवन, किले आदि) तो कुछ समय पश्चात् नष्ट हो जाते हैं पर गीत सदैव विद्यमान रहकर गीत-नायक की कीर्ति को अमर रखते हैं—

---

(१) नागरी प्रचारिणी पत्रिका : गजराज ओझा, भाग १४, अंक २, पृ० १३०-१३१

(२) राजस्थानी भाषा और साहित्य: पं० मोतीलाल मेनारिया, पृ० ९४

(३) धरती नु धावण: झवेरचंद मेघाणी, पृ०९८-१००

(४) राजस्थानी (कलकत्ता): नरोत्तमदास स्वामी, भाग १, पृ० ६६

(५) गीत मंजरी (प्रस्तावना): कुन्हनराजा, पृ० २६

भींतड़ा ढह जाय धरती भिलै,
गीतड़ा नह जाय कहै (राव) गांगो।[१]

कविराजा बांकीदास ने इसी भाव को प्रकारान्तर से इस प्रकार व्यक्त किया है—

गवरीजे जस गीतड़ा, गया भींतड़ा भाज।[२]

इन गीतों ने श्रेष्ठ आदर्शों की रक्षा के लिए कठिनाइयों में जूझने तथा संघर्ष करने की प्रेरणा यहां के वीरों को दी है। डा० सुनीति कुमार चाटुर्ज्या के शब्दों में—"It was in these songs that foaming Streams of infalible energy and indomitable iron courage had flown and made the *Rajput warrior forget all his personal comforts and attachments* in fight for what was true, good and beautiful."[3] इन गीतों के रचयिता चारण कवि प्रायः स्वयं युद्ध-भूमि में उपस्थित होते थे और प्रसंगानुकूल उसी जगह गीत-रचना करके वीरों को विरुदाते थे। इसलिए इनमें विशिष्ट प्रकार के ओज और आत्मानुभूति के दर्शन होते हैं। डा० कुन्हनराजा का इस सम्बन्ध में मत उल्लेखनीय है—"These songs are natural and spontaneous. The songs came from the heart and the soul of the Charnas."[४] डिंगल गीतों की इन विशेषताओं के कारण ही महाकवि रवीन्द्रनाथ अत्यधिक प्रभावित हुए थे तथा उन्होंने इन्हें संतसाहित्य से भी बढ़कर माना है—"What charm earnestness and noble sentiment these songs have; they are the natural out burst of the people. I regard them as superior even to the saint poetry.................Any language, literature of the world could be proud of them."[५] गीतों ने इतिहास की छोटी-छोटी कितनी ही घटनाओं को

---

(१) वाग्वरः चारण जाति के प्रति राजपूत कवियों के उद्गार, वर्ष १, अंक ३, पृ० ४३

(२) बांकीदास ग्रंथावली: पं० रामकरण आसोपा, भाग १, पृ० ५८

(३) राजस्थानी भाषा और साहित्य: डा० हीरालाल माहेश्वरी, पृ० ७३

(४) गीत मंजरी (प्रस्तावना): कुन्हनराजा, पृ० २६

(5) Rajasthani language and literature: Rajasthani Akedemi, Bikaner page 3

जीवित रखा है। इतिहासकारों के लिए अनेक प्रकार की जानकारी के ये महत्वपूर्ण साधन हैं। इसलिए रासमाला के लेखक फारवस ने इनका महत्व स्पष्ट शब्दों में स्वीकार किया है। उनके शब्दों में—"As rivers show that brooks exist, as rain shows that heat has existed, so songs show that events have existed."[१]

स्वर्गीय मेघाणीजी के मतानुसार—"एक ओर गीत जहां प्राचीन घटनाओं की ऐतिहासिक जानकारी के बहुत बड़े साधन हैं, वहां दूसरी ओर तात्कालिक परिस्थितियों पर लोक-हृदय की समीक्षा का विवरण इन गीतों में मिल जाता है। "इतिहास के शुष्क-कंकाल को इन गीतों ने लोकोर्मियों के सजीव रुधिर मांस से आपूरित कर दिया है।"[२] इनमें राजस्थान की चिरन्तन हृप्त आत्मा का साक्षात्कार होता है।[3]

यह विशाल गीत साहित्य प्राचीन समाज व संस्कृति को जानने तथा समझने का कितना उपयोगी साधन है, इस सम्बन्ध में महाराज कुमार डा. रघुवीरसिंहजी का मत भी यहां उल्लेखनीय है। उनके अनुसार—"इन गीतों से जन-मानस के दृष्टिकोण तथा जनसाधारण की भावनाओं का भी कुछ पता अवश्य ही लगता है। तत्कालीन समाज की विचारधारा, परिस्थितियाँ, धार्मिक भावनाओं तथा विश्वासों और भ्रमात्मक अंधधारणाओं का भी पता लगता है। ये गीत जहां विगत घटनाओं की जानकारी तथा जनसाधारण के सामयिक दृष्टिकोण और भावना पर प्रकाश डालते हैं, वहां भावी पीढ़ी के जन-मानस को भी किसी निश्चित दिशा में मोड़ते या किसी हद तक प्रभावित भी करते रहे हैं। यों वे कई बार बाद की घटनावली के कारणों को ठीक तरह से समझने में भी सहायता दे सकते हैं।"[४]

इस गीत-साहित्य की राजस्थान की संस्कृति को बहुत बड़ी देन है। अशिक्षित लोगों के हृदय में भी अपने इतिहास और पूर्वजों के महान् आदर्शों

---

(१) रासमाला: फारवस, पृ० २६६

(२) स्व० मेघाणीजी का मत-राजस्थान के सांस्कृतिक उपाख्यान : डा० कन्हैयालाल सहल पृ० ११

(३) डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी की गोरा हटजा (परम्परा) में प्रकाशित गीतों पर सम्मति, ता० २-२-५७

(४) म० कु० डा० रघुवीरसिंह का लेखक को पत्र, दिनांक ५ मई, १९६४

को प्रतिष्ठित करने का श्रेय इन गीतों को है । वास्तव में ये गीत काव्य और इतिहास के सुन्दर सङ्गमस्थल हैं । इतिहास इनका बाना पहनकर जहाँ अमर हो गया है, वहां काव्य इस धरती के आदर्शों को व्यक्त कर महिमामय बना हैं ।

शताब्दियों से जो राजस्थान अपनी स्वतंत्रता और धर्म की रक्षा के लिए अप्रतिम बलिदान, तप और त्याग का जीवन जीता आया है, उस जीवन की विभी-षिकाओं के क्षितिज में अमरता के नवीन दर्शन की ज्योति को प्रज्वलित रखकर इस काव्य ने आदर्शोन्मुख समाज को सोद्देश्य जीने और मरने की सबल प्रेरणा दी है। ऐसी प्रेरणा से प्रेरित योद्धा की मृत्यु उसके कुटुम्ब के लिए दुखद न होकर सदा सुखद रही है :—

पीथल तणैं मरण म करि दुखपचि-पचि,
सार मरण घण घणो सुख । [1]

वीर रसात्मक गीतों की आत्मा में झांकने पर ऐसा लगता है मानो गीता के दर्शन को साकारता प्रदान करने का संकल्प उन्होंने ले रखा हो ।

पीथल खित खत्री ध्रम पाल़ग ।
गीता जेम तुहाल़ा गीत ।।[2]

गीतों ने यहां के इतिहास की बहुत बड़ी घटनाओं को प्रभावित किया है। निराशा में भी आशा का संचार करने का श्रेय इस प्रकार की रचनाओं को है। राणा सांगा खानवा के युद्ध में घायल होकर जब कालपी नामक स्थान पर बेहोशी की अवस्था में पहुंचे और होश में आने पर उन्होंने अपनी हार तथा जन-धन की क्षति का समाचार सुना तो दुख की असह्य वेदना के कारण विक्षिप्त से हो गये । ऐसी स्थिति में जमणाजी बारहठ ने केवल एक गीत उन्हें सुनाया था जिससे उनके हृदय में पुनः शक्ति का संचार हुआ और उस हार को हार न मानकर बाबर को पराजित करने को उद्यत हो गए। [3]

गीत इस प्रकार है—

सत बार जरासंध आगल़ श्रीरंग,
विमहा टीकम दीध वग ।

---

(१) राठौड़ पृथ्वीराज जैतावत रो गीत (अ० सं० ला०, बीकानेर) ।
(२) सौभाग्यसिंह शेखावत का संग्रह ।
(३) उदयपुर राज्य का इतिहास, जिल्द २, पृ० ६६३

मेल्हि घात मारे मधुसूदन,
असुर घात नांखे अलग ।।
पारथ हेकरसां हथणापुर,
हटियो त्रिया पडंतां हाथ ।
देख जका दुरजोधन कीधी,
पछै तका कीधी कांई पाय ।।
इकरां राम तणी तिय रावण,
मंद हरेगो दह-कमल ।
टीकम सोइज पथर तारिया,
जगनायक ऊपरा जल ।।
अेक राड़ भव मांह अवत्थी,
औरस आणै केम उर ।
माल तणा केवा कज मांगण,
सांगण तूं साले असुर ।।[1]

अकबर की फ़ौज द्वारा जब प्रसिद्ध वीर कल्ला रायमलोत सिवाने के गढ़ में बुरी तरह घिर गया और गुप्त रास्ते से गढ़ छोड़कर भगने की तैयारी करने लगा, उस समय दूदा आशिया ने केवल एक ही गीत कहा, जिसका आशय यह था कि शेरगढ़ का हरपाल वीर तो आपत्ति आने पर अपना घास-फूस का झोंपड़ा छोड़कर भी नहीं भगा और तू अपना गढ़ शत्रुओं को सौंप रहा है। गीत की पहली पंक्ति सुनते ही उसने विचार बदल दिया और वीरता के साथ लड़ता हुआ काम आया।

गीत का प्रारम्भ इस प्रकार है :—

खींपां तणा पुराणा खोलड़,
हिये न ऊतरिया हरपाल ।।[2]

जयपुर के राजा मानसिंह ने अपने चारण से रुष्ट होकर राज्य के सभी चारणों की जागीर जब्त करली थी, परन्तु जब उसके ननिहाल (श्रीनगर) के चारण कवि किसना भादा ने जाकर एक युक्तिसंगत गीत सुनाया तो राजा मानसिंह ने सभी चारणों की जागीरें उसी समय वापिस करदी।[3]

---

(१) डिंगल गीत : रावत सारस्वत, चंडीदांन सांदू, सा० रि० इ०, बीकानेर, पृ० २५

(२) राजस्थानी (कलकत्ता), भाग ३, अङ्क ३, पृ० ४१

(३) राजस्थान (कलकत्ता), वर्ष १, अङ्क ४, पृ० २९-३४

इस प्रकार के अनेक उदाहरण गीतों में बिखरे पड़े हैं, जो उनकी प्रभविष्णुता उपादेयता और ओजस्विता के परिचायक हैं।

अत: उपरोक्त विवेचन से यह स्पस्ट है कि गीत ने इतिहास के इतिवृत्त को अतिशयोक्ति पूर्ण प्रशंसात्मक उक्तियों से सजाकर ही सुरक्षित नहीं रखा, वरन् यहां के समाज, संस्कृति, धर्म और राजनीति में जीवनी शक्ति फूंकने का असाधारण कार्य भी किया है। इतिहास की पृष्ठ-भूमि पर वाणी और भाव का जो अद्भुत एवं भव्य समन्वय इन गीतों में देखने को मिलता है, वह यहां के कवियों की भारतीय साहित्य तथा संस्कृति की अमूल्य देन है।

द्वितीय अध्याय

●

डिंगल गीतों का पर्यालोचन

डिंगल गीतों का पर्यालोचन | २

गीतों पर अन्यान्य दृष्टियों से विचार करने के पहले इस अध्याय में कुछ ऐसे आवश्यक उपकरणों पर विचार किया जा रहा है, जो गीतों के स्वरूप तथा महत्व को समझने में अत्यन्त सहायक हैं। इन उपकरणों को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है-(१) गीतों के अभिज्ञानात्मक उपकरण तथा (२) छंद शास्त्रीय उपकरण।

(१) गीतों के अभिज्ञानात्मक उपकरण—

(क) गीत शब्द का अर्थ

संस्कृत के 'गै' धातु से 'क्त' प्रत्यय लगने पर गीत शब्द व्युत्पन्न होता है। उक्त धातु केवल गाने के अर्थ में ही प्रयुक्त नहीं होती। कहना, वर्णन करना, अनुवाचन करना आदि अनेक अर्थों में 'गै' धातु का प्रयोग होता है।[1]

डिंगल गीत वाद्य-यंत्र की सहायता से गाए जाने वाले गीत नहीं है। ये विशिष्ट लय में पढ़े जाने वाले गीत हैं। छंदोबद्ध होने के कारण इन गीतों में लय का होना तो स्वाभाविक ही है। वस्तुतः लयात्मक पद्धति पर युद्ध-वर्णन, गुण-कथन यशोगान के व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ में डिंगल के गीत शब्द की सार्थकता है।

गीत के लिए आगे जाकर रूपक शब्द का भी प्रयोग मिलता है। कविराजा

---

(1) To speak to recite in a singing tone, to relate, to declare tell (Specially in a metrical language) to describe, relate or celebrate in song.:–The student's Sanskrit-English Dictionary by V.S. Apte, Page 192.

वाँकीदास,[1] उम्मेदराम वारहठ,[2] मंछाराम,[3] किसना आढ़ा[4] प्रभृति विद्वान कवियों ने रूपक को गीत का पर्याय माना है। रूपक शब्द का अर्थ राजस्थान में प्रशंसा, शोभा आदि होता है। यद्यपि अनेकानेक विषय गीतों के वर्ण्य–विषय रहे हैं, परन्तु उनका प्रमुख स्वर वीरों, दातारों, जूझारों और आदर्श पुरुषों की कीर्त्ति को प्रकट करने वाला ही है। अतः व्युत्पत्ति और प्रवृत्ति दोनों ही दृष्टियों से गीत शब्द की यहां सार्थकता है।

(ख) गीतों का नामकरण—

डिंगल काव्य में ज्यों-ज्यों गीतों का प्रयोग वढ़ने लगा उनके अनेक भेद भी हो गए और प्रत्येक का नामकरण भी हो गया। छंद के नामकरण के पीछे कोई न कोई कारण अवश्य होता है। हिन्दी के चौपई, षट्पदी, चौपाई आदि छंदों के नाम और उनके लक्षणों से यह वात स्पष्ट हो जाती है। अतः इसी प्रकार के कई कारण गीतों के नामकरण के सम्बन्ध में खोजे जा सकते हैं, जिससे गीतों की रूपगत विशेषताओं को पहचानने और समझने में वड़ी सहायता मिलती है। नामकरण सम्बन्धी कुछ मुख्य कारण अथवा आधार निम्न प्रकार हैं-

(१) गीत की लय अथवा ध्वनि के आधार पर—

(अ) गीत मृग-झंप—

इस गीत में १४-१४ मात्राओं की दो पंक्तियों के वाद एक साथ २४ मात्राओं की एक पक्ति आती है, इसी क्रम से सारा गीत चलता है, जिससे छंद की गति में मृग के छलांग मारने का-सा आभास होता है। इसलिए इसका नाम मृग-झंप रखा गया प्रतीत होता है। उदाहरणार्थ—

> निज आठ जोग अभ्यास अहनिस,
> सधै सुर घर जुगम रवि सस,
> करै रेचक पूरक कुंभक वहै दम सिर ठांम।[5]

---

(१) रच थारा घरकाँ रा रूपग, रूपग म्हारा काय रचै।
(डिंगल गीत:सं० रावत सारस्वत, चंडीदाँन सांदू, पृ० ८५)

(२) समस्त रूपक यधक, रची सीस वितरेक।
(कविकुल वोध-रा० शो० सं०, जोधपुर का संग्रह)

(३) धुर रूपक ज्यांही धरे, विखमा वरण विसेख।
(रघुनाथ रूपक गीतां रो:महतावचंद्र खारेड़, पृ० ११)

(४) अगीयार दोख कवि आखिया ए निवार रूपग ऊचर।
(रघुवर जस प्रकाश : पृ० १७६)

(५) रघुवर जस प्रकास: रा० प्रा० प्र०, जोधपुर, पृ० २३३

(आ) गीत संगीत—

इसमें लय-ताल आदि संगीत के नियमों के अनुसार ही शब्द योजना होती है। उदाहरणार्थ—

ध्रोंकट ध्रोंकट ध्रोंकट ध्रों,
कटध्रों कटध्रों टिक टिक ध्रं।
तिह समय ताल ठंकार कंठकति,
कंठ ठठकति सं कदं ।।[1]

(इ) गीत ढोल—

इस गीत की शब्द-योजना तथा लय ढोल की ध्वनि के समान प्रतीत होती है। उदाहरणार्थ—

पेख वरण जिण वाह परघ्घर,
धींग भुजां निज चाप सरघ्घर।
जेण भजे रिखी ब्रह्म जटघ्घर,
गाव वे गाव वे गरव गिरघ्धर ।।[2]

(ई) गीत जंघ खोड़ो—

इस गीत की चौथी पंक्ति में अनुप्रास की ऐसी योजना रहती है कि पंक्ति का उच्चारण लड़खड़ाते हुए आदमी की गति के समान प्रतीत होता है, जैसे—

घणा दल् हेड़वण जेम राजा सघण,
वंस खटतीस जस पालि्वा खट वरण।
रेणवां निवाजणा सदा हेकण रहण।
तौ हरीयण हरीयण हरीयण हरीयण ।।[3]

इसी प्रकार चितइलोल, गजगति, त्रवंकड़ो आदि गीतों के नामकरण हुए हैं।

२. पंक्तियों तथा द्वालों के आधार पर—

(अ) गीत दोढ़ो[4]

गीत में प्राय: ४ द्वाले माने गए हैं। जिस गीत में छह द्वाले (छंद) हों, वह

---

(१) पिंगल सिरोमणी : (परम्परा भाग १३), पृ० १६४
(२) रघुवर जस प्रकास: रा० प्रा० प्र०, जोधपुर, पृ० २४७
(३) पिंगल सिरोमणी (परम्परा भाग १३), पृ० १५३
(४) वही, पृ० १६३–६४

दोढ़ो (डेढ़ा) कहलाता है। इसी प्रकार जिसमें पांच द्वाले हों वह सवायो तथा जिसमें आठ द्वाले हों वह दूणो गीत होता है।

(आ) गीत सतखरो[1]

सात-सात मात्राओं पर यति वाली पंक्तियों से बना होने के कारण इसमें सात खाने प्रतीत होते हैं, इसलिए इसे सतखणो नाम दिया गया है।

(इ) त्रिपंखो[2]

गीत का प्रत्येक द्वाला तीन पंक्तियों का ही होता है इसलिए इसे त्रिपंखो (तीन पंख वाला) कहा गया है।

(ई) घड़उथल अथवा झड़ूथल[3]

इस गीत में दूसरी पंक्ति बहुत ही थोड़े परिवर्तन के साथ फिर तीसरी पंक्ति के स्थान पर रखी जाती है। इस प्रकार पंक्ति की पुनरावृत्ति के कारण इसे झड़ूथल कहा गया है। उदाहरणार्थ—

कल चंद्रकला तंह झड़ कीजै।
रस गीत घड्थल कुण रीझै॥
रस गीत घड्थल सुण रीझै।
कल चन्द्र कला गुण झड़ कीजै॥[4]

(३) जथा अथवा अलंकारों के आधार पर-

(अ) गीत विधानीक-[5]

इस गीत में विधानीक जथा का निर्वाह अनिवार्य होता है।

(आ) चौसर गीत-[6]

इस गीत की प्रत्येक पंक्ति में चार अनुप्रासों का बन्धन अनिवार्य है, इसलिए इसे चौसर कहा गया है। उदाहरणार्थ चौसर की पंक्तियां द्रष्टव्य हैं-

---

(१) पिंगल सिरोमणी, पृ० १७५
(२) रघुवर जस प्रकास : रा० प्रा० प्र० जोधपुर प्र० २९७
(३) कविकुल बोध : रा० शो० सं०, जोधपुर का संग्रह।
(४) वही, गीत प्रकरण।
(५) पिंगल सिरोमणी (परम्परा भाग १३), पृ० १५८
(६) वही, पृ० १५७

कंकाळी किसन कमाळी दिनकर,
नारी नृसिंघ त्रिचख ग्रहनूर।
चक्रभुज चक्रकर उमावर जगचख,
सिवदूती सांई जट सूर।।

(इ) घण कंठ गीत–[1]

यहां कंठ का तात्पर्य अनुप्रास से है। इस गीत में अनुप्रासों का आधिक्य होता है।

(ई) चोटी वंध गीत–[2]

इसमें सिर जथा का निर्वाह किया जाता है जिससे छंद के अन्त में जाकर एक प्रकार का वंध लगता है, अतः इसे चोटी वंध कहा है। इसी प्रकार झड़मुगट, सिहचलौ आदि का नामकरण हुआ है।

(४) तुक अथवा मोहरा-मेळ के आधार पर-

छंदों की वनावट में तुकों का वड़ा महत्व होता है, अतः कई गीतों के नाम इसके आधार पर भी रखे गए हैं।

(अ) दुमेळौ गीत–[3]

इस गीत की प्रत्येक पंक्ति के अन्तिम दो अक्षरों की तुकें दूसरी पंक्ति से मिलती हैं। उदाहरणार्थ–

भूपाळां भांमी नेकनामी,
सेव पाय सुरेस।
सुज दया-सिंधू दीन-वंधू,
अखै कीत अहेस।।[4]

(आ) अमेळौ गीत–[5]

यह गीत वेलिया, सोहणा तथा खुड़द गीतों के द्वालों के मिश्रण से वनता है। इसलिए इसके मोहरे वरावर नहीं मिलते हैं। अनेक गीतों के मेल से वनने के कारण इसका नाम अमेळ प्रचलित हुआ है।

---

(१) रघुवर जस प्रकासः रा० प्रा० प्र०, जोधपुर, पृ० ३१७
(२) पिंगल सिरोमणी (परम्परा भाग १३), पृ० १७०
(३) रघुवर जस प्रकाशः रा० प्रा० प्र०, जोधपुर, पृ० २६५
(४) रघुवर जस प्रकासः रा० प्रा० प्र०, जोधपुर, पृ० २६५
(५) वही, पृ० २९५

(इ) अठतालौ–[1]

इस गीत की अन्य सभी पंक्तियों के अतिरिक्त चौथी और आठवीं पंक्तियों की तुकें मिलती हैं, इसलिए इसे अठतालौ कहा गया है।

(ई) अहिबंध–[2]

इस गीत की पंक्तियों में पास-पास तुकें आने के कारण बंधन में जकड़ा हुआ जिस प्रकार सर्प चलता है, उसी प्रकार गीत चल रहा हो, ऐसी बनावट प्रतीत होती है। इसलिए यह नाम रखा गया है। उदाहरणार्थ–

रांम नांम रसारे, जय संभ जसारे।
बोल बुध विसारे, पहारे कौड़ पाप।।
सेत भ्रात सही रे, कंज जात कहीरे।
देत थाट दही रे, चहीरे बाण चाप

इसी प्रकार यकखरो, भड़लुपत, आदि गीतों के नामकरण का भी आधार खोजा जा सकता है।

(५) छंदों के मिश्रण के आधार पर–

इन उल्लिखित प्रमुख चार आधारों के अतिरिक्त कई छंदों अथवा गीतों की विशेषताएं एक गीत में मिलने से भी उसका नाम इस प्रकार का रख दिया गया है, जैसे गीत गाहणो में गाहा तथा गाहणी छंद का सम्मिश्रण किया गया है।[3] गीत त्रिमेल,[4] पालवणी, वसंतरमणी, जयवंत तथा मुणालसावभड़ा तीन के मिश्रित लक्षणों से बनाया गया है, इसलिए इसका नाम त्रिमेल रख दिया गया है।

उक्त विवेचन से स्पष्ट है कि गीतों के नामकरण के पीछे कोई न कोई कारण अवश्य रहा है। किन्तु सभी गीतों के नामकरण की सार्थकता यहां सिद्ध करना हमारा अभीष्ट नहीं है।

(ग) गीतों का पाठ—

गीत गाने के लिए नहीं रचे गए, यह पहले ही स्पष्ट कर दिया गया है, परन्तु इन गीतों का पाठ साधारण कविता के पाठ से कहीं भिन्न है। ये गीत उन

---

(१) रघुनाथ रूपक: सं० महताबचन्द्र खारेड़, पृ० २०६
(२) रघुवर जस प्रकास: रा० प्रा० प्र०, जोधपुर, पृ० २७४
(३) रघुवर जस प्रकास: रा० प्रा० प्र०, जोधपुर, पृ० ३१६
(४) वही, पृ० २६५

चारण कवियों की रचनाएं हैं, जो अपनी ओजस्वी वाणी में काव्य पाठ, शत्रुओं से लोहा लेने वाले शासकों और योद्धाओं के समक्ष किया करते थे। अनेक बार युद्ध-भूमि में उपस्थित होकर भी अपने गीतों के द्वारा वीरों को उत्साहित कर, अदम्य वीरता के साथ लड़ने और प्राणोत्सर्ग करने की प्रेरणा देते थे। ऐसी स्थिति में इन गीतों की प्रभावोत्पादकता केवल ओजस्वी ढंग से ही उनका पाठ करने में निहित थी। गीतकार प्राय: अपने गीत को बुलन्द आवाज के साथ एक विशेष प्रकार के लहजे में बोलते थे जिनकी अपनी लय (रिद्म) होती थी। गीत का असली भाव शब्द को वाणी का विशिष्ट संबल मिल जाने से स्पष्ट ही नहीं हो जाता था, श्रोता के मानस पर वह दुगुनी ताकत के साथ अपना प्रभाव भी डालता था। गीत के शब्दों में व्याप्त ललकार, उद्बोधन, व्यंग्य अथवा उपालम्भ जब कवि के मुंह से विशिष्ट खूबी के साथ प्रकट होता था तो श्रोता के हृदय में ही नहीं, वहाँ के वातावरण में भी गीत का मुख्य आशय प्रतिध्वनित होने लगता था। अत: गीतों के पाठ की कला का अपने आप में बहुत बड़ा महत्व रहा होगा, क्योंकि अच्छे से अच्छे गीत का पाठ जब तक अपेक्षित ओज और विशिष्ट उच्चारण के साथ नहीं किया जाता था तब तक कवि की काव्य-कला निखर कर बाहर नहीं आ सकती थी।

काव्य-पाठ की खूबी पर कहा गया निम्नलिखित दोहा गीतों के सम्बन्ध में पूर्णतया घटित होता है—

कवि के अक्खर सब सक्खर, कछु, कहिवे के वैण।
वोही काजल् ठीकरी, वोही काजल् नैण ॥[1]

प्रारंभ में कवि लोग गीतों का पाठ बुलन्द आवाज से अपने-अपने ढंग के अनुसार करते रहे होंगे, परन्तु कालान्तर में गीतों के पाठ की दो शैलियां प्रमुख रूप से प्रचलित हुईं। इन दोनों शैलियों पर यहां सोदाहरण प्रकाश डाला जा रहा है।

१. एकादोई—

इस शैली के अनुसार गीत की प्रथम पंक्ति एक साँस में एक साथ पढ़ी जाती हैं। उसके पश्चात् दो-दो पंक्तियां एक साथ एक सांस में पढ़ी जाती हैं। अन्त में जाकर गीत की पहली पंक्ति अंत की पंक्ति के साथ पढ़ी जाती है।

---

(१) वो ही चंदो दीह रो, वो ही चंदो रैण।

गीत छोटो सांणोर

पड़ियौ नह धरण न भखियौ पंखी,
ऊपाड़े न जल़ायौ आग ।
अरजण गौड़ तणौ तन आखौ,
लड़तां गयौ लोहड़ां लाग ।।१
खित पड़ियौ न पल़चरां खाधौ,
पावक घट तकियौ न प्रजाल़ ।
वीठल सुतन तणौ तन वढ़तां,
अजड़ां चहोट गयौ रिण ताल ।।२
गिरियौ धरा न विहंगे ग्रसियौ,
दावानल़ नह पंजर दह्यो ।
पालहरो असुरां पाड़ंतौ,
रज रज धारां विलग रह्यो ।।३
दल़ पल़चर सुरमुख अपछर हर,
जोवो किण वासते जग ।
वाय हंस अमरापुर वसियौ,
खाधौ घट हूं कह्यौ खग ।।४
प्रथम पंक्ति पुनः यहां पढ़ी जायेगी ।

२. पंचादोई—

इस शैली में पाठ करना वड़ा कठिन है । इसके अनुसार प्रारम्भ में गीत की प्रथम पांच पंक्तियों को एक ही सांस में एक साथ पढ़ा जाता है । इसके बाद दो-दो पंक्तियां एक साथ पढ़ी जाती हैं । गीत के अन्त में अन्तिम पंक्ति के साथ गीत की प्रारम्भिक चार पंक्तियां पुनः एक साथ पढ़ी जाती हैं । उदाहरण—

पड़ियौ नह धरण न भखियौ पंखी,
ऊपाड़े न जल़ायौ आग ।
अरजण गौड़ तणौ तन आखौ,
लड़तां गयौ लोहड़ां लाग ।।१
खित पड़ियौ न पल़चरां खाधौ,
पावक घट तकियौ न प्रजाल़ ।
वीठल सुतन तणौ तन वढ़तां,

अजड़ां चहोट गयो रिणताल ।। २
गिरियो धरा न विहंगे असियों,
दावानल् नह पंजर दह्यो ।
पालहरो असुरां पाड़ंतो,
रज रज धारां विलग रह्यो ।।३
दल् पल्चर सुरमुख अपछर हर,
जोवो किण वातते जग ।
वाय हंस अमरापुर वसियों,
खाघो घट हूं कह्यो खग ।।४
प्रारम्भ की चार पंक्तियां पुनः यहां पढ़ी जायेंगी ।

उपरोक्त दोनों शैलियों में प्रमुखतया सांणोर गीत (व उसके सभी भेद) सुपंखरो, पंखाल़ो, हंसावल़ो, गोख आदि गीत पढ़े जाते हैं। गीतों की सर्वाधिक रचना भी इन छंदों में ही हुई है। अन्य गीत अलग-अलग ढंग से ही पढ़े जाते हैं। कुछ गीत ऐसे भी हैं, जो कई प्रकार से पढ़े जा सकते हैं, जैसे 'ढोल गीत'। आठ प्रकार से ढोल बजाया जाता है और आठ ही प्रकार से 'ढोल गीत' का पाठ भी किया जा सकता है। इस प्रकार कुछ विशिष्ट गीतों के लक्षणों के अनुसार उनके पाठ में भी भिन्नता है।

गीत का पाठ करते समय यह अपेक्षित है कि प्रत्येक शब्द का उच्चारण शुद्ध ढंग से अलग-अलग किया जाए। यह प्रारम्भ में ही कहा जा चुका है कि गीत रचना का मुख्य उद्देश्य एकान्त में बैठकर पढ़ना व मनन करना न होकर श्रोताओं को प्रभावित करना था। इसीलिए उनके पाठ पर इतना अधिक ध्यान दिया जाता था। गीतों में जो वैणसगाई के निर्वाह तथा जथाओं पर अधिक बल दिया गया है, उसके पीछे भी गीत रचयिताओं का यह विशिष्ट उद्देश्य परिलक्षित होता है, क्योंकि उपरोक्त दोनों उपकरण गीतों के पाठ को प्रभावोत्पादक बनाने में सहायक होते हैं।

गीतों का वास्तविक मर्म केवल उनकी काव्य-कला में ही निहित नहीं है अपितु अपेक्षित वातावरण में मनःस्थिति को रखकर अधिकारी पात्र के मुख से उनका श्रवण करने में है।

(घ) गीत-नायक सम्बन्धी ज्ञातव्य—

ऐतिहासिक पात्रों को लेकर की गई गीत-रचना में गीत-नायक की पूरी जानकारी प्रकट करने के लिए कुछ चीजें अनिवार्यतः गीत में आनी चाहिए।

इतिहास में एक ही नाम के अनेक शासक और योद्धा हुए हैं, इसीलिए गीत में केवल योद्धा का नाम मात्र आना पर्याप्त नहीं है। केवल नाम के कारण अनेक भ्रान्तियां हो सकती हैं, जिनका निवारण तभी हो सकता है, जब नायक के नाम के अतिरिक्त उसके पिता या पूर्वज, जाति तथा स्थान आदि की ओर भी संकेत किया जाय। गीतों के आचार्यों ने भी इन उपकरणों की आवश्यकता और गीत-नायक के स्पष्ट परिचय को बड़ा महत्व दिया है। नायक का परिचय संदिग्ध रह जाने पर उन्होंने गीत में "हीण दोष' बताया है। डिंगल के प्रसिद्ध लक्षण ग्रंथ रघुनाथ रूपक में इस दोष की परिभाषा कवि मंछाराम ने इस प्रकार दी है :—

हीण दोष सो हुवै जात पित मुदो न जाहर,[१]

इस दोष के निवारण के लिए कवि प्राय: सचेष्ट रहे हैं, और उन्होंने नायक का नाम, पिता अथवा पूर्वज और जाति तथा स्थान आदि के नामों को अनेक प्रकार से अपनी कृतियों में व्यक्त किया है।

(अ) नायक का नाम—

प्राय: गीतों में यह प्रवृत्ति पाई जाती है कि नायक का नाम या तो संक्षिप्त रूप में दिया गया है या फिर शब्दों के पर्याय आदि का प्रयोग कर नाम की ओर संकेत किया गया है। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं:–

नाम के संक्षिप्त रूप—

अजीतसिंह–जीतो, जैत,[२] अजो, अजमल
प्रतापसिंह–पतो, पातल,[3] पातलौ
पृथ्वीराज–पीथल, प्रिथु[४] प्रीथी, पीथलो
रतनसिंह–रयण,[५] रैण, रतनो,

---

(१) रघुनाथ रूपक:ना० प्र० स०, काशी, पृ० १४

(२) आवियों जैत ससमाथ आडो। (गीत अजीतसिंघ राठौड़ री)

(३) पातल तूझ तणो पड़ियालग, रुधर चरचियो सदा रहै (महाराणा यश प्रकाश पृ० ९६)

(४) प्रिथु वेलि कि पंचविध प्रसिद्ध प्रणाली। (वेलि क्रिसन रुकमणी री, छंद २९४)

(५) राजा वाखांणीस रयण। (राठौड़ रतनसिंघ री वेलि, पृ० १९ छंद १)

नाम के पर्यायवाची रूप–

रुक्म–सोनानांमी[१]
महेसदास–भूतेसनांमी[२]
भीमसिंह–पांडवनांमी[३]

विस्तार–भय के कारण उपरोक्त संक्षिप्त रूपों व पर्यायवाची रूपों में से कुछ उदाहरण ही पाद-टिप्पणी में दिए गए हैं।

(आ) पिता अथवा पूर्वज का नाम–

गीतों में कहीं कहीं नायक के पिता का नाम और अधिकांशतया किसी प्रसिद्ध पूर्वज का नाम उसके वंशानुगत गौरव को व्यक्त करने के लिए प्रयुक्त हुआ है। पिता व किसी पूर्वज के नाम के आगे या पीछे कुछ विशिष्ट शब्दों का प्रयोग करके नायक के साथ उनका सम्बन्ध जोड़ा जाता है। नीचे इनमें से कुछ शब्द दिए जा रहे हैं, जिनमें से कुछ के उदाहरण उनका प्रयोग स्पष्ट करने के लिए पाद-टिप्पणी में दिए गए हैं–

पिता के लिए–तण,[४] तणो, तणउ, नंद, सुत, सुतण, वाल़ो आदि।
पूर्वज के लिए–हर, हरा, हरौ,[५] हरउ, अमनमो, कल़ोधर आदि।
पिता व पूर्वज के लिए–बियो, बीजौ, दूजो, दूसरौ,[६] समोभ्रम, उत आदि।

(इ) नायक की जाति–

गीतों के नायक प्रायः राजस्थान के राजवंशों के व्यक्ति रहे हैं। इन राज-वंशों में से प्रत्येक वंश के लिए अनेक शब्द प्रचलित हैं। गीतों में प्रायः उन्हीं का प्रयोग किया गया है। प्रमुख राजवंशों के लिए प्रयुक्त होने वाले शब्द निम्न प्रकार हैं–

राठोड़–खेड़ेच, खेड़चा, खेड़ेचो, मंडोवरो, कमध,[७] कमधजिया, रिड़मल, मुरधरियो, मारू, मारूवो, जोधाणपत, नवसहंसो आदि।

---

(१) निराउध कियौ तदि **सोनानांमी**, केस ऊतार विरूप कियो। (वेलि : राठौड़ पृथ्वीराज छंद १३४)
(२) ऊचरे **भूतेसनांमी** मरहठाँ एम। (गीत महेसदास कूंपावत रौ)
(३) **पांडव नांमी** नीठ पड़ियौ लग ऊगमण ने आंथमण लग।
(गीत भीमसिंघ सिसोदिया रौ)
(४) तेज प्रभुता नमो गुमानसिंघ **तण** (गीत महाराजा मानसिंघ रौ)
(५) **पालहरो** असुरां पाडंतां रज रज धारां विलग रह्यो। (गीत अरजण गौड़ रौ)
(६) खंडाल़ा निराल़ा ऐम **दूसरो** खूमाण। (गीत नरसिंहगढ़ चैनसिंघ रौ)
(७) रंग तूठो **कमध** जंग रूठो। (गीत पाबूजी राठौड़ रौ)

कछवाहा–कूरम,[१] कमठ, ढूढाड़ो, आमेरपत, आमेरो, कूरमेस, नरूखण्डनाथ, जैपुरियो, आदि ।

भाटी–माडपत, माडेच, माडेचा, उतरधर किवाड़, जदुवंसी,[२] आदि ।

सीसोदिया-नागद्रहो, केलपुरो,[३] दस संहसो, सीसोद, मेवाड़ो, चीतोड़ो, आहाड़ो, आदि ।

चौहान–मछरीक,[४] संभरी, सांभरियो आदि ।

हाडा-वल़ानाथ,[५] हाडेन्द्र, बूंदीछात आदि ।

गौड़–मारोठनाथ, अजमेरपत, खैराड़ा[६] आदि ।

झाला–मकवाण,[७] हलवदपत आदि ।

यहां यह स्पष्ट कर देना भी आवश्यक है कि उपरोक्त शब्दों में से अनेक शब्द ऐसे हैं, जो नायक का राज्य विशेष का शासक होना सूचित करते हैं, परन्तु उनका सामान्य अर्थ जातिवाचक ही है । इसलिए जोधांणपत का तात्पर्य केवल जोधपुर के शासक से न होकर जोधा के वंशज से भी हो सकता है ।

(ई) नायक का स्थान—

जहाँ तक नायक के स्थान का प्रश्न है, उसका समावेश प्राय: जातिसूचक शब्दों में ही कर दिया गया है । ऐसी स्थिति में नायक के स्थान विशेष अथवा जागीर आदि का उल्लेख न कर केवल राज्य विशेष की नागरिकता की ओर ही संकेत किया गया है । जैसे, गीत-नायक के लिए जोधपुरो, मेवाड़ो, सिरोहियो, आमेरो आदि शब्दों का प्रयोग उस राज्य विशेष की नागरिकता को भी प्रकट करते हैं ।

---

(१) भेट हुवो नंह जको भाजसी, कूरम धोको मूझ कद ।
(गीत राव लिछमणसिंह सीकर री)

(२) कान्ह अवतार ने साझियो जांणि कंस, राव जदुवंस ने हुवौ राजा ।
(गीत रावल़ मनोहरदास भाटी री)

(३) मेल़ न कियो जाय विच महलां केलपुरो खग मेल़ कियौ ।
(गीत राणा प्रतापसिंघ री)

(४) तुरकां रा तावूत ज्यूं मेल चल्या मछरीक । (गीत डूंगरपुर रै सरदारां री)

(५) नाराचां चलाकी झोक हाथां वल़ानाथ ।
(गीत महाराव राजा उमेदसिंह हाडा री)

(६) खैराड़ा खपियौ खुरसांण । (गीत सिवरांम गौड़ री)

(७) सोहे छतर चंवर मकवाण सिर । (गीत झाला मानसिंघ री)

आधुनिक युग के कुछ गीतों में जो ठिकानों के ठाकुरों पर लिखे गए हैं, ठिकानों का नाम भी कहीं-कहीं मिलता है। उदाहरणार्थ—आसोप ठाकुर शिवनाथसिंह पर लिखे गए गीत की निम्नलिखित पंक्तियां देखिए :—

परगट थट लियाँ सिंघ रै प्राक्रम.
रवताले. गाड़ा पग रोप।
कियो अमल रजवट कांटाले.,
आंटाले. ठाकुर आसोप ॥[1]

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि गीतों को ठीक तरह से समझने और उनके ऐतिहासिक महत्व को जानने के लिए इन उपकरणों की ओर पाठक को पर्याप्त ध्यान देना चाहिए।

२. गीतों के छंदशास्त्रीय उपकरण—

गीतों के छंदोविधान पर अन्यत्र विचार किया गया है। यहाँ छंदशास्त्रों में निर्देशित कुछ अन्य उपकरणों पर विचार किया जा रहा है, जो गीत निर्माण सम्बन्धी आवश्यक नियमोपनियमों को समझने में सहायक हैं।

(क) डिंगल गीतों में जथा—

डिंगल गीत के निर्माण में जिस रीति (विशिष्ट प्रकार की रचना प्रणाली) का सालंकार या अलंकार रहित नियमवद्ध रूप में निर्वाह किया जाता है, उसे जथा कहते हैं।

इन जथाओं के निर्वाह की सामान्य विशेषता यह है कि प्रथम द्वाले में कही गई बात इस नवीन ढंग से पुनः पुनः कही जाती है कि उसमें एक प्रकार की पुनरुक्ति होते हुए भी पुनरुक्ति दोष नहीं होता। इस पुनरुक्ति के कारण ही जथा शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत के 'यथा' शब्द से मानी जा सकती हैं। कवि मंछ ने अपने छंदशास्त्र के ग्रन्थ 'रघुनाथ रूपक' में जो वर्णन-क्रम को निबाहने की बात कही है वह इसी तथ्य की ओर संकेत करती है।[2]

इस प्रकार की वर्णन-प्रणाली डिंगल गीतों की अपनी विशेषता है। इसलिए कविराजा मुरारिदान ने इसे मारवी रीति कहा है।[3]

---

(१) आसोप का इतिहास : पं० रामकर्ण आसोपा, पृ० १६४।

(२) 'रूपक मांहे रीति जो, वर्णन करें विचार।
सो क्रम निवहे सो जथा, तवै मंछ विसतार।'

(३) 'इलिए प्रथम छन्द में जो वर्णन किया जावे वह का वह वर्णन बारम्बार दूसरे, तीसरे और चौथे छन्द में भी किया जावे जिससे कि पुनरुक्ति दूषण न होवे और पर्यायोक्ति भूषण हो जावे, यह मारवी रीति है।'
(जसवन्त जसो भूषण, पृ० १४३–१४४)

कवि मंछ ने रघुनाथ रूपक में ११ प्रकार की जथाओं का वर्णन किया है। यथा :—

विधानीक, सर, सिर, वरण, अहिगत, आद, अताण।
सुध, इधक, सम, नून, सो जथा ग्यारह जाण॥

कवि किसनाजी आढ़ा ने भी 'रघुवर जस प्रकास' में ग्यारह प्रकार की जथाये मानी हैं,[1] परन्तु उदयराम ने अपने 'कवि कुल बोध' में २१ प्रकार की जथाओं का वर्णन किया है।[2] यथा :—

विधानीक, सर, वरण, सीस, सुद्ध, मुगट, सम।
नून, आद, निपुणाद, ग्यान, अहगति, सरल गम॥
सुद्धधिक, सम, यधक, यधक, रूपक उरधारत।
बोध, अनुपम, बंध, साख, चित्र, तोल, सुधारत॥
गुण प्राकृत, रूपम, बन्धगुण, मुगताग्रह, जगबंध मत।
संकलत जथा वरणो सुकव, विध इक्कीस कायव वदत॥

यहां इन जथाओं को स्पष्ट करने के लिए प्रत्येक का लक्षण और उदाहरण प्रस्तुत किया जा रहा है :—

१. विधानीक जथा—

प्रत्येक पद में क्रम से जिनका वर्णन किया जाय उनका नाम उसी क्रम से चौथे पद में जहाँ आता है वहां विधानीक जथा होती है।[3] उदाहरण :—

लीधी लंका सी समापे पांणां फैली मंजु कोस लाखां,
संपा सी समंद छोलां सारदा सुवेस।
आहवा अजीत, छाह हमांऊ पुनीत एही,
रुक रीझां, कीत यूं तिहारी राघवेस।[4]

२. सर जथा—

कवि मंछ के अनुसार सर जथा के चार भेद होते हैं। यथासंख्य अलंकार युक्ति से करके और एकसी उसकी श्रृङ्खला वनाई जाती है उसे सर जथा कहते हैं।[5] उदाहरण गीत चौसर :—

---

(१) रघुवर जस प्रकास, पृ० १७१-१७२।
(२) कविकुल बोध—रा० शो० सं०, जोधपुर का संग्रह।
(३) रघुवर जस प्रकास, पृ० १७२, 'रघुनाथ रूपक', पृ० २४६
(४) रघुनाथ रूपक, पृ० २४६
(५) वही पृ० २४८

तो पद अविधान प्रवाड़ा सूरत अरविंद इडग तंत इकधार ।
नांमे रटे सांभले निरखे मसतक जिहें श्रुत नयण मुरार ।।
मग अविधाँ गुण वदन अप्रेपर अंबुज अचल सार अभिराम ।
वंद्र जपै सुणै अवलोके सीस जीभ श्रवण ं दृग सांम ।।
पै संज्ञा कीरत मुख प्रीतां वारज अवथ मूल दुतवीस ।
प्रणव भंजे संग्रहे पेखें उतवंग जवां करण चख ईस ।।
ओयण नाम चरित्रां आंणण विमल निरंतर भेद सुवेस ।
धोकै कहल लखै जिके धन धू रसणां श्रव चख अवधेस ।।[1]

यथासंख्य के साथ उल्लेख अलंकार मिला देने से भी सर जया होती है ।[2]
उदाहरण :—

दोयण रमणीय कुवेसुर दासां जव्र समर सुरतर निज जोत ।
अवध भूप दरसे तो वाला अवनी मोहे रूप उद्योत ।।

इसमें अन्त में देखने वाले या समझने वाले का नाम भी उल्लेख अलंकार के साथ होता है ।[3] जिसका वर्णन किया जाता है उसका नाम प्रथम आता है और उसमें भी यथासंख्य अलंकार होता है ।[4]

किसना आढ़ा ने इसका लक्षण भिन्न प्रकार से दिया है । उनके अनुसार गीत के दोहों की तीन तुक में जो बात कही जाय उसका बराबर निर्वाह हो ।[5]
उदाहरण—गीत वेलियो सांणोर—

ओयण जे रांम सिया नित अरचै,
सुज सरचै सिव ब्रहम सकाज ।
जग अघहरण सुरसरी जांमी,
राज तणा चरणां रघुराज ।।
धाय मुनेस सेस सिर धारे,
निज सिर जिकां सुरेस नमाय ।
जोत सरुप तणा आगर जस,
पोत रूप भव सागर पाय ।।

---

(१) रघुनाथ रूपक, पृ० २४६
(२) वही पृ० २४६
(३) वही, पृ० २५०
(४) वही ।
(५) रघुवर जस प्रकास, पृ० १७३

गायव अरच चींतव सुख गेहां,
मत छोड़े नेहा मतमंद ।
जग दुख हरण सरण जग जेहा,
ऐहा रांम चरण अवब्यंद ॥

नाथ अनाथ दासरथ नंदण,
स्त्री रघुनाथ 'किसन' साधार ।
कदन पखी अपखी ज्यां काळा,
अवखी पुळ वाळा आधार ॥[१]

कवि उदयराम के अनुसार भी 'सर जथा' का लक्षण इनसे भिन्न है । कविकुळ बोध में बताया गया है कि प्रथम द्वाले में जो नाम आते हैं उन्हीं व्यक्तियों के भिन्न (पर्यायवाची) नाम उसी क्रम से आगे के द्वालों में वर्णन करते समय निभाए जावें । उदाहरण—

मघवा गजानन जिसुन अरजुन गुणां भूप मिठां ।
आसता वुवी दन मुगन आड़े ॥
भूप सिणगार गुणसार (करतार) भुज ।
झपट खग धार दळां खळां झाड़े ॥

व्रखी गुण रगण रव सुतनं घनजै विभू,
समत मत व्रवण जुव करण सरसै ।
क्रीत विध च्यार जगजीत विरदां कळां,
दुवा 'लखवीर' खत्रवाट दरसै ॥

पुरंद गणराज अंगराज पथ भूपति,
सद घटा सिधी दत समर साजै ।
गुणां रजवाट रा घाट दूजा गहड़,
छत्रपती वदै विध प्रसव छाजै ॥

सुरपती गणपती करन्न पारथ सुभट्ट,
प्रभत वधती छती धरम पाजा ।
छना सुमती दती रती भारथ छटा,
रंग देसल पती कच्छ राजा ॥[२]

---

(१) रघुवर जस प्रकास, पृ० २००

(२) कवि कुळ बोध : रा० शो० सं०, जोधपुर का संग्रह ।

३. सिर जथा—

कवि मंछाराम के अनुसार गीत के प्रथम द्वाले में जिस तरह से जो वर्णन किया जाय उसी तरह से अन्य द्वालों में भी उसका निर्वाह हो तो सिर जथा होती है।[1] उदाहरण—

> अवतारां छात नमो अवधेसर सभ तो वाळा प्रात समैं।
> चरणां नहीं नमायौ चाचर नर वे अवरां चरण नमैं॥
> चंद चकोर जेम हुय अणचल प्रेम करे ते नेम पकैं।
> सनमुख आय तकी न सूरत, ते पर सूरत न्याय तकैं॥

'रघुवर जस प्रकास' में इसके लक्षणों पर प्रकाश डालते हुए इस नियम को और भी पूर्णता प्रदान करने के लिए उन्होंने रूपक के निर्वाह की शर्त भी रखी है।[2] उदाहरण—शुद्ध सांणौर सत सर गीत—

> अडग तेज अणयघ सरद, ध्यांन स्रुत आसती,
> नीम वर कार कळ, जोग तप नांम।
> थिर प्रभा, नीर, पद्म यंद वुध, नीत थट,
> मेर, रिव, समंद, चंद भव भ्रहम रांम॥

४. वरण जथा—

कवि मंछाराम के अनुसार वरण जथा में कवि क्रमशः प्रत्येक द्वाले में नवीन वर्णन करता हुआ गीत पूर्ण करता है। 'रघुवर जस प्रकास' में भी इसी प्रकार का उदाहरण प्रस्तुत किया गया है, पर उसमें वर्णन का क्रम उल्टा है अर्थात् नख-शिख या सिख-नख किसी प्रकार से हो सकता है और क्रम नहीं टूटता। सभी अङ्गों का वर्णन क्रमशः होता रहता है। उदाहरण—

> पांवडियां सहत नरम पद पंकज,
> नूपुर-हाटक परम पुनीत।
> छक कड़वंध सुचगा छाजै,
> पट-रंगा राजै पुण पीत॥
> पुणचा जड़त जड़ाऊ पुणची,
> कळ आजान भुजा केयूर।
> वैजंती गळ मुगठ विसाळा,
> प्रगट हिये माळा भरपूर॥

---

(१) रघुनाथ रूपक, पृ० २५०–२५१

(२) रघुवर जस प्रकास, पृ० १७४

कंडसरी ग्रीवा श्रुत कुण्डल,
चंदण निले तिलक दुतचंद ।
सिर सिरपेच सुघट हीरासद,
क्रीट मुगट सोभे सुखकंद ।।
जलधर वरण भगत भव भंजण,
सीता मन रंजण सज साथ ।
मो मन आंण सुजांण सिरोमण,
नित इण वांण वसो रघुनाथ ।।[1]

'कवि कुल वोध' में भी इस प्रकार के वर्णन की निपुणता के निर्वाह को वरण जथा माना है । उदाहरण में देसल के घोड़ों का वर्णन किया है ।

५. अहिगत जथा—

जहाँ वर्णन में सर्प की चाल की तरह की वक्रता शब्दों के क्रम से वनती हो उसे अहिगत जथा कहते हैं । यथा—

तरवर नदियांण सुरसरी सुरतर.
सरयां गज ऐरावत सेस ।
सरां नखत रजनीस मांनसर,
अवनीसां ओपम अवधेस ।।[2]

'रघुवर जस प्रकास' में भी लक्षण और उदाहरण इसी प्रकार के दिए हुए हैं ।[3] 'कवि कुल वोध' में भी इसी प्रकार का वर्णन है ।

उदाहरण—गीत वेलियो—

सरवर ग्रह व्रंद दिनंद मानसर ।
गिरवर देवां यंद गिरंद ।।
तरवर चारां चंद कलपतर ।
यला निरंद जिका कछयंद ।।
दाता सिधां महेस पुरंदर ।
खगां वक्र गत सेस खगेस ।
गण गुण गणां गणेस,
नरपतियां भुज पाट नरेस ।।

---

(१) रघुनाथ रूपक, पृ० २५३-२५४
(२) वही, पृ० २५५

वीरत दांन करन पथ विरदां,
वाचा भगत ग्यांन विदवांन ।
वसुधा ओखद ध्यान सिरै वद,
जादवपत सिरणगार जिहांन ।।

(६) आद जथा—

आद जथा में जिसका वर्णन किया जाता है उसका नाम पहले द्वाले में स्पष्टतया आ जाता है और आगे क्रमशः उसका वर्णन चलता है ।[1] उदाहरण—

प्रसघ नाम इधकार जगजारे मांटी पणो,
अतुल दातार कीरत उजाला ।
भलमवातां चिहुं वेस आणियां भमर,
वाहरे कंवर अवधेस वाला ।।
तरंगां तुंग अणथाह आपार तस,
करै नह नाव उपचार किरिया ।
महण जिण नाम थी चार सौ कोस में,
तरवरां पांन जिमि गिरंद तिरिया ।।
धनुष किय भंग मद मलै फरसा धरण,
कौसपत वालसा ढले काथा ।
मार खल अनेकां वले दसमाथरा,
मौख सर एकदस दले माथा ।।
द्रुरज धज दिख गढ़राज कितरा दिया,
कीगिणां अडम सो अचल कीधी ।
तुव नमो नाथ पुर स्वान सूकर तिका,
देव दुरलभ जिका मुगत दीधी ।।
सिव तिलक चिहुर बिध सेस तन मण सरप,
छत्र नृप अभूषण नरां छाजै ।
सुरग पाताल मृतलोक तीनां सरस,
राज जस तणों सिणगार राजे ।।
खलक तारण तरण खलां खंडण खतम,
रोर जण विहंडण सुखद सरसै ।
सियावर तूझसो तुंही दाखे सको,
दूसरो समौवड़ न को दरसै ।।

(१) रघुनाथ रूपक पृ० २५६ ।

(७) अन्त जथा—

जहाँ गीत में क्रमशः वर्णन चलता है और अन्त के द्वाले में जाकर उसका पूर्ण स्पष्टीकरण होता है उसे अन्त जथा कहते हैं।[1] उदाहरण—

इकवीसे वार नछत्रीं अवनी,
कीधी पौरस धार करूर।
डर वधियौ दुजराज अमायो,
दरव गमायो जिण रो दूर।।
वाहां वीस तणें भय वंधव,
लुले वभीख ननाहाँ लीव।
रखे ओट तिणनूं फिर राजा,
कनक दुरंग सकाजा कीध।।
की ध्रोध सवरी जिण केता,
मन सुध भगत करी अणनाप।
जांमण मरण भंवण जग ज्हांरो,
आवा-गमण मिटायौ आप।।
सेस महेस गणेस सारदा,
नारद सुर ग्रंध्रप नर नार।
पुणै दिवस रजनी गुण तो पिण,
पामें नह चिरतां रो पार।।
गृभ गंजण रिच्छक सरणागत,
संतांभव मंजण संसार।
साद उपमा जितरी तो साजै,
तितरी ही छाजै करतार।।

'रघुवर जस प्रकास' में भी लक्षण और उदाहरण इसी प्रकार हैं।[2]

(८) सुद्ध जथा—

मछाराम के अनुसार गीत के प्रथम द्वाले में जो वर्णन किया जाता है उसी रीति का वर्णन आगे के द्वालों में भी होता है तो उसे सुद्ध जथा कहते हैं।[3]

किसना आढ़ा ने इस जथा के लक्षण में और भी बारीकी से काम लिया है। उनके अनुसार पहले द्वाले की पहली पंक्ति में जो भाव हो, वही भाव अन्य द्वालों

---

(१) रघुनाथ रूपक पृ० २५८-२५९
(२) रघुवर जस प्रकास, पृ० १७६
(३) रघुनाथ रूपक, पृ० २६०

की प्रथम पंक्ति में भी होना चाहिए। इसी प्रकार अन्य तीन पंक्तियों के भावों की समानता क्रमशः अन्य द्वालों की पंक्तियों के साथ होनी चाहिए।[1] कवि उदयराम ने भी 'सुद्ध जथा' का लक्षण कवि मंछाराम से मिलता-जुलता ही दिया है।[2] यथा—

गीत सुद्ध साणोर—

विमल् धारण विकट चख रूप खत्रवाट रा,
भूप जुग घाट रा सभा व्रद भाल् ।
दूधियां पाल् द्रग छौल् दरियाव री,
झुकै किरमाल् उनाल् री झाल् ।।
भारमल पाट 'भारौ' हुवौ भूपति,
निजर खग त्याग खत्रवाट रा नैत ।
रीझ रा चसम द्रुम राट कल् रैणवां,
खीज रा चसम खग झाट खल् खैत ।।
गरज सारण किता कितां गाहण गढां,
जवर धारण पढ़ाँ 'खेंग' हरजीत ।
सैण पारस तिसा वधारण सुपातां,
रीमां मारण जिसा नैण जम रीत ।।

(६) इधक जथा—

कवि मंछाराम के अनुसार वर्णन जहां रूपकालंकार द्वारा करके उस पर व्यतिरेक अलंकार रखें तो 'इधक जथा' होती है। जैसे चन्द्रमा की उपमा राम से देकर फिर आगे के द्वालों में चन्द्रमा की कमियों को वताते हुए राम को उससे श्रेष्ठ वताना। उदयराम के अनुसार वर्ण्य विषय का वर्णन प्रत्येक द्वाले में क्रमशः पहले से भी वढ़ा-चढ़ाकर किया जाय, उसे अधिक (यधक) जथा कहते हैं।

किसना आढ़ा ने इसके दो भेद किए हैं। एक में तो एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को श्रेष्ठ वताने की परिपाटी अपनाई जाती है और दूसरी में गणना क्रम के अनुसार एक, दो, तीन, चार, पांच इत्यादि के क्रम से वर्णन की व्यवस्था की जाती है।[3]

उदाहरण—

एक रमा अहनिसा, दोय रविचन्द त्रिगुण दख ।
च्यार वदै तत पंच, सुरत छह सपत सिंध सख ।।

---

(१) रघुवर जस प्रकास, पृ० १७६
(२) कवि कुल् बोध–रा० शो० सं०, जोधपुर का संग्रह ।
(३) रघुवर जस प्रकास, पृ० १७७

आठ कुलाचल अनड़, नाग नव नाथ निरन्तर ।
दस द्रिगपाल दुबाह, रूद्रह एक दस सरतर ।।
सझ सझ उमंग वारह सघण, विसुध चित कायक वयण ।
तेरहा भांण पय रांमतो, भल सेवै चवदह भुयण ।।[1]

(१०) **सम जथा**—

कवि मंछ के अनुसार जिसका प्रसंग चल रहा हो उसमें रूपकालंकार करके नायक का यश वर्णन किया जाय उसे सम जथा कहते हैं ।[2] कवि उदयराम ने इसे 'सील सम जथा' कहा है और उसका लक्षण भी उपर्युक्त लक्षण से मिलता-जुलता वताया है ।[3]

कवि किसना आढ़ा के अनुसार जहां अभेद सम रूपक का वर्णन पूर्ण रूप से किया जाय उसे सम जथा कहते हैं ।[4] यथा—

अवधी गगन वाजी अयण, सयण कुमुद सुख साज ।
जस सीय कर रोहिणी जुकत, रामचन्द्र महाराज ।।

यहाँ रामचन्द्र और चन्द्रमा का समान रूप से वर्णन हुआ है ।

(११) **न्यून जथा**—

मंछ कवि के अनुसार जहां प्रथम द्वाले में वर्णन का जो प्रमाण किया गया हो आगे भी उसी प्रकार क्रम से न्यून वर्णन किया जाय वहां न्यून जथा होती है ।[5]

उदयराम के अनुसार नायक (उपमेय) को उपमान से तुलना में न्यून वता कर भी उसकी प्रशंसा प्रगट करने को न्यून जथा कहते हैं । यथा—

गुण दाता धरम करावे गिरधर, धरमपति वांधे धरम धज ।
देवां देव कनै रै दधजा, भुज देसल पास भुज ।।

किसना आढ़ा के अनुसार सम जथा को क्रम भंग करके अस्त-व्यस्त करने पर न्यून जथा होती है ।[6] उदाहरण—

---

(१) रघुवर जस प्रकास, पृ० १०२
(२) रघुनाथ रूपक, पृ० १६५
(३) कवि कुल वोध, गीत प्रकरण ।
(४) रघुवर जस प्रकास, पृ० १७८
(५) रघुनाथ रूपक, पृ० २६६
(६) रघुवर जस प्रकास, पृ० १७८

जम लग कठै मै सीस जियां,
तन दासरथी नित वास तियां।
तन दासरथी नह वास तियां,
जम लगसी माथै जो जियां ॥[1]

'रघुनाथ रूपक' और 'रघुवर जस प्रकास' में उपरोक्त ग्यारह जथाओं का ही विवरण है। इन ग्यारह जथाओं के अतिरिक्त दस अन्य जथाओं की व्यवस्था केवल 'कवि कुल वोध' में ही मिलती है।

(१२) जोग अजोग जथा—

इस जथा में वर्ण्य नायक अथवा विषय द्वारा योग्य कार्य करवा कर पीछे से उसी कार्य को अयोग्य बताने की परिपाटी अपनाई जाती है, जैसे जीतना एक योग्य कार्य है, पर यह जीतना यदि विप्र को जितना है तो योग्य कार्य होते हुए भी अयोग्य हो जाता है। उदाहरण—

वेद जीत विप्र सूं गाय पय पाय पुरोगत।
वितदत विख या वाठ, मेल ठग हूंत महामत ॥
प्रीत अराधै प्रेत, सार गुण खलां समपै।
वणौं ग्रन्थ रस विखय, जांण ऋपणां जस जंपै ॥[2]

(१३) अजोग जोग जथा—

इसमें नायक आदि द्वारा अयोग्यता सूचक कार्य को भी विशिष्ट प्रकार से योग्य प्रकट करने की परिपाटी अपनाई जाती है। जैसे दण्ड चुकाना हीनता का द्योतक है पर अपने गोत्र के लिए गयाजी में जाकर दण्ड चुकाना शुभ कार्य है।[3]

उदाहरण—

मार रोर मांगणां धाखंघण तलाव घर।
गया दंड गत वार, सार नांखण सेवासुर ॥
सती छार पती संग वार खारो सुधार वप।
ऋत तीरथ खगमार, तारखत फटै मिटे तप ॥

(१३) एक रंगी भ्रांति जथा[4]—

इसमें भ्रान्ति अलंकार का निर्वाह सामान्य तौर पर किया जाता है।

---

(१) रघुवर जस प्रकास पृ० १७८
(२) कवि कुळ वोध: गीत प्रकरण
(३) वही।
(४) वही।

उदाहरण—

पवंगां वज नाल़ पताल़ धरा पुड़,
दंती माल़ घटां दरसाय ।
भुजपत रा दीठा दल़ भारथ,
भ्रांति खलां पड़े मन भाय ॥

(१५) निश्चयान्त भ्रान्ति जथा[1]—

प्रारम्भ के द्वालों में सन्देह अलंकार का सा निर्वाह वर्णन में किया जाता है और गीत के अन्त में उस सन्देह को निश्चय भ्रान्ति के रूप में प्रकट कर दिया जाता है, वहां निश्चयान्त भ्रान्ति जथा होती है।

उदाहरण—

घणां वादल़ा घोर नह सोर दुंदभ घुरे,
स्याम नह घटा दल़ गजां सल़कै ।
व्रखी नह धनुख धज पल़क नहीं विजली,
भड़ां भुजनाथ रा सेल मल़कै ॥
केकियां कौहक नह वजै करनाल़ियां,
घटा विण नाल़ियां सोर घर रै ।
सुकै नह जदासा तेज घट सात्रवा,
भुकै नह मेघ गज-पटा भर रै ॥
दुति नह पंत वग दुरद रद दरसियां,
सेहरा चरण नह खूर सारकै ।
पोव सुण अरज नह मेघ फौजां प्रभा,
थाट थंम अरी त्यां नार थरकै ॥
पुरंद नह साज दल़ राज भुज पति,
छत्रपती आज अनवांद छोड़ी ।
सरण चरणां कियां काज सगल़ा सरै,
जंग तज साज पिय हाय जोड़ी ॥

(१६) ग्यान यथा—[2]

प्रथय द्वाले में जो रूपक का क्रम प्रारम्भ किया जाता है उसका उसी क्रम से अलग-अलग एक-एक द्वाले में जहां वर्णन होता है वहां यह जथा होती है। निम्न-

(१) कवि कुल वोध: गीत प्रकरण ।
(२) वही ।

लिखित गीत में छः ऋतुओं का वर्णन कमशः किया गया है और राजा देशल के साथ रूपक बांधा गया है। उदाहरण—

सुभट तेज ग्रीखम सरांधार वरखा सरद,
कायरां हेम जुध सिसर कीजै।
मदझरां तरवरां नरां मधुकर मधु,
दुगम देसल भुजां विरद दीजै॥

क्रोध घमसांण अप्रमांण ग्रीखम कलां,
दुरस व्रखभांण केवांण दरसै।
कवांणां वांण खटतीस आवध किरण,
सत्रांदल़ घांण सिर लूंवां सरसै॥

घटा वगमाल़ व्यल़ दुंदभ घुरे,
झुकै नग छटा रणताल़ झाल़ा।
केवियां काल़ घर चल़ वरखा करै,
वाट किरमाल़ जल़ काछ वाल़ा॥

चंद्र चंद्रहास दुत कास उजल़ चढ़ै,
छटा आभास आवध अछांने।
पंख खल़ जवासा जास गिरदां पुल़ै,
मिल़ै केवी सर तास मांने॥

धाक हेमन्त गुण कंपका धर धड़क,
रुक वाजै रहल सूर राडै।
वरफ गिर सिर ज्यूं वधै जाडां विरद,
झूल कमलां खल़ाँ खाग झाड़ै॥

अड़ै वल़ घटै दिखणांण दल़ ज्यूं अरी,
वडै उतरांण दिन विरद वधता।
ऊटै जुध झड़ै भड़ आव घट वध कल़ा,
प्रभाकर किरण ज्यूं चढ़ै प्रभता॥

सैल खगधार पिचकार गोल़ां सरां,
मधु रित वार हल़कार माता।
वाग तोखार गजधजां केल़ां विचैं,
तिजड़ झड़ रचै जुध फाग तातां॥

खत्रीवट ख्यात खट रित ख़ल़ां ख़ेत में,
वात सुख सात रसराज वेता।

प्रभा अखियात 'लखधीर' कुल़ पाटवी,
कछपती ख्यात कव करै केता ।।

(१७) अनूप जथा[1]

जिस गीत में रसवत् अलंकार का निर्वाह अन्त तक अनूठी उक्ति के साथ किया जाय वहां अनूप जथा होती है। उदाहरण—

अद्भुत गत त्याग कल़ां नृप आचां,
निपुण वरण लागै कर ।
सुण सोभाग लहर सम्पतियां,
दल़द मरै क्रपणां उरदाग ।।
सुसव भाय मौज काछैसुर,
पाय चढ़े कुंभी कव पात ।
विख लहराय विया समवादी,
रौर जाय स्रत दाह अरात ।।
कुल़ लखधीर उजाल़े कीरत,
वित पायू हार्यां देव्वाल़ ।
घर भूपाल़ घणा सिर घूणैं,
कुरंद काल़ दुसहां क्रत झाल़ ।
दीरघ पीठ भयंकर देतां,
घीठ गरल़ घूमै अन भाव ।
रोर अदीठ हुवै अजल़ै रिम,
रीम, गरीठ स्रवे भुजराव ।।
पोह जस अमर सुधा दत पातां,
गरल़ दुजीह कुदातां गात ।
तोरा प्रलै जल़ै तनताई,
खपिया सिर देसल नृप ख्यात ।।

(१८) परस्पर माला गुण जथा[2]—

जिसमें अन्योन्यालंकार का निर्वाह अन्त तक किया जाय उसे परस्पर माला गुण जथा कहते हैं। उदाहरण, गीत वेलियो—

---

(१) कवि कुल़ बोध : गीत प्रकरण।
(२) वही

सस सुं निस सुं सस सोभा:
सस निस सूं दुत गयण सुणाय।
वारज वल़ जल़ सूं दुत वारज,
जल़ वारज सर प्रभा सुणाय ।।
वनता वर वर सुं दुत वनता,
वर वनता प्रभता घर वार।
कंकण नग नग सूं दुत कंकण,
नग कंकण दुत करग निहार ।।
गुणियण ग्रंथ ग्रंथ दुत गुणियण,
गुणियण ग्रंथ प्रभा जग ग्यांन।
नृप सुं निपुण निपुण सूं नृप्त,
नृप कव सूं दुत छमा निदान ।।
देसल़ कुल़ कुल़ सूं दुत देसल,
कुल़ देसल जस काछ प्रकास।
भाव प्रकास जथा गुण भारी,
उदैरांम जस कियौ उजास ।।

कविकुळ बोध ग्रन्थ की एक ही हस्तलिखित प्रति उपलब्ध हुई है जिसमें २१ जथाओं का विवरण है। उसके कुछ पत्र त्रुटित होने से केवल १८ जथाओं के ही उदाहरण मिल सके हैं। अतः उन्हीं के उदाहरण व लक्षण यहां प्रस्तुत किये जा सके हैं।

(ख) वैण सगाई अलंकार—

साहित्य में अलंकारों का महत्व सर्वमान्य है। राजस्थानी काव्य में भी कवियों ने शब्दालंकारों और अर्थालंकारों का प्रयोग बड़ी निपुणता के साथ किया है। शब्दालंकारों में अनुप्रास का बड़ा महत्व है। हिन्दी व अन्य भारतीय भाषाओं में इस अलंकार के थोड़े से भेदों पर ही अलंकार शास्त्रियों का ध्यान गया है, परन्तु राजस्थानी साहित्य में इस शब्दालंकार के आधार पर ही कवियों ने 'वैण सगाई' नामक अलंकार का अपने काव्य में प्रयोग ही नहीं किया वरन् उसके अनेक भेदोपभेद पर यहाँ के आचार्यों ने बड़ी बारीकी से विचार भी किया है।

वैण सगाई अलंकार का शाब्दिक अर्थ अक्षरों के आपसी सम्बन्ध से है। इस अलंकार में अक्षरों का सम्बन्ध कई प्रकार से बिठाया जाता है जिससे काव्य में विशिष्ट प्रकार का नाद सौन्दर्य प्रकट होता है। इस अलंकार के प्रयोग से काव्य में एक प्रकार की कसावट और निपुणता आ जाती है। जहां इस अलंकार का

प्रयोग पूरी दक्षता के साथ किया जाता है वहां काव्य को कंठस्थ करने में भी बड़ी सहूलियत हो जाती है क्योंकि अक्षरों के ध्वनि-साम्य के कारण स्मृति उन पंक्तियों को सहज ही ग्रहण कर लेती है और काव्य की पंक्ति की गमक को स्मृति आसानी से छोड़ती नहीं। डिंगल के अलंकार शास्त्रियों ने इस अलंकार को शुभ माना है। यहां तक कि दग्धाक्षरों के अशुभ प्रभाव तक को समाप्त करने की शक्ति इस अलंकार में उन्होंने मानी है। यथा—

इण भाखा आवै अवस, वैण सगाई वेस।
दगध अखर अर अगण दुख, लागे नह लवलेस ॥[1]

अत: कवि ने स्पष्टतया इस अलंकार के महत्व को स्वीकार किया है। कवि मंछ ने भी इस अलंकार को शुभ तथा श्रेष्ठ माना है।

खून कियां जांणे खलक, हाड वैर जो होय।
वैण सगाई वरणतां, कलपत रहै न कोय ॥[2]

इस अलंकार का प्रयोग, अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता को समाप्त किये विना वही कवि कर सकता है जिसका भाषा के ऊपर असाधारण अधिकार हो।

वैण सगाई अलंकार का प्रयोग डिंगल काव्य में चौदहवीं-पन्द्रहवीं शताब्दी में भी देखा जा सकता है, परन्तु सोलहवीं शताब्दी में इस अलंकार का प्रयोग बहुलता से होने लगा। मध्यकालीन राजस्थानी काव्य रचयिताओं को यह अलंकार बहुत प्रिय रहा है। विशेष तौर से चारण काव्य में इस अलंकार की बहुलता देखने में आती है। राठौड़ पृथ्वीराज ने अपनी वेलि में आदि से अन्त तक इस अलंकार का बड़ी खूबी के साथ निर्वाह किया है। इस प्रकार इस अलंकार का प्रयोग डिंगल गीतों में भी अनिवार्य सा हो गया था। इस नियम का उल्लंघन कविराजा सूर्यमल्ल ने सन् १८५७ में रचित अपनी वीर सतसई में किया क्योंकि शायद उन्होंने स्वतन्त्र अभिव्यक्ति में इस अलंकार के नियम को किसी हद तक बाधक समझा।

वयण सगाई वाळीयां, पेखीजे रसपोष।
वीर हुतासण बोल् में, दीसे हेक न दोष ॥[3]

१६ वीं शताब्दी में रचित रघुनाथ रूपक, रघुवर जस प्रकास, कवि कुळ बोध आदि ग्रन्थों में भी इस अलंकार के महत्व को स्वीकार किया है, परन्तु आधुनिक

(१) रघुनाथ रूपक, पृ० १२
(२) रघुनाथ रूपक, पृ० १३
(३) वीर सतसई (सूर्यमल्ल कृत)।

काल में कुछ गीतकार व अन्य कवि ऐसे भी हुए हैं जिन्होंने इस अलंकार का अपने काव्य में अनिवार्यतः प्रयोग नहीं किया।[१]

इस अलंकार के अनेक भेदोपभेद हो सकते हैं। कवि मंछाराम ने अपने ग्रंथ रघुनाथ रूपक में इस अलंकार पर संक्षेप में ही प्रकाश डाला है। उन्होंने इसके चार भेद किए हैं।[२] पर रघुवर जस प्रकास में वैण सगाई व अखरोट को अलग-अलग करके दस भेदोपभेद किए हैं। यथा—

> **आदि, मध्य, अन्त, उत्तम मध्यम, अधम,**
> **अधमाधम, अधिक, सम और न्यून।**[३]

मोटे रूप में वैण सगाई के तीन भेद किए जा सकते हैं। (१) शब्द वर्ण वैण सगाई, (२) वर्ण संख्यक वैण सगाई और (३) अखरोट मित्र वर्ण वैण सगाई।

अब यहां प्रत्येक प्रकार की वैण सगाई के भेदोपभेदों पर सोदाहरण प्रकाश डाला जा रहा है।

(१) शब्द वैण सगाई—

> वयण सगाई तीन विध, आद, मध्य, तुक, अन्त।
> मध्य मेल हरि महमहण, तारण दास अनन्त॥

इस अलकार में चरण के आदि अन्त में आने वाले शब्दों के अन्तर्गत कई भेदोपभेद किए जा सकते हैं।

(अ) आदि मेल—

इस अलंकार के अनुसार चरण के प्रथम शब्द के आदि वर्ण स्वर या व्यंजन की पुनरावृत्ति चरण के अन्त में आने वाले शब्द के आदि में होनी चाहिए।

> सांचों मित सचेत, कहो काम न करै किसो।
> हर अरजण रै हेत, रथ कर हांकयो राजिया॥

(आ) मध्यम मेल वयण सगाई—

जहां चरण के प्रथम शब्द के प्रथम वर्ण की पुनरावृत्ति चरणान्त शब्द के मध्य में हुई हो वहां यह अलंकार माना जाता है। यथा—

---

(१) द्रष्टव्य-ऊमर काव्यः सं० जगदीशसिंह गहलोत।

(२) रघुनाथ रूपक, पृ० ३४-३५

(३) रघुवर जस प्रकास पृ० १८२-१८४

घू जिसा अडग ने सेर जेह वेधड़ा,

कसे भूयाण केकांण जेह वंकड़ा।

(इ) अन्त मेल वयण सगाई—

जहां चरण के प्रथम शब्द के आदि वर्ण की पुनरावृत्ति चरण के अन्त के शब्द के अन्त में होती है, वहां यह अलंकार होता है।

किसना निस्चै कर, राच सिया वर,
जाण भरोसो जेण रो जी।

दूसरी पंक्ति में अन्त मेळ वैण सगाई है। इन तीन भेदों के तीन और उपभेद अत्युत्तम वैण सगाई के अनुसार किए जा सकते हैं। जहां चरण के प्रारम्भ के शब्द के आदि वर्ण की उसी रूप में (मात्रादि के अनुसार) चरण के अन्त के शब्द के आदि वर्ण के रूप में पुनरावृत्ति हो तो वहां अत्युत्तम वैण सगाई होती है। यथा—

नर नादेत नरिंद नरेहण,

निकल् निघुट निपाप निधेम।

(राठौड़ रतनसिंघ री वेलि)

इसी प्रकार मध्य मेळ अत्युत्तम वयण सगाई और अन्त मेळ अत्युत्तम वयण सगाई भी होती है।

(२) वर्ण संख्यक वैण सगाई—

जहां चरण के आदि वर्ण की पुनरावृत्ति चरणान्त में वर्ण संख्या के नियम से की गई हो वहां वर्ण संख्यक वैण सगाई मानी जाती है। इसके पांच भेद किए जा सकते हैं।

(अ) अत्युत्तम वर्ण संख्यक वैण सगाई—

जहां चरण के आदि वर्ण की पुनरावृत्ति उसी रूप में चरणान्त के एक वर्ण पहले होती है वहां यह अलंकार होता है। यथा—

"तांणे वात तवे सचतांह"

यहां चरण के आदि वर्ण 'तां' की पुनरावृत्ति उसी रूप में 'तां' चरणान्त के एक वर्ण के पहले हुई है। इसलिए यहां अत्युत्तम वर्ण संख्यक वैण सगाई है।

(आ) उत्तम वर्ण संख्यक वैण सगाई—

जहां चरण के आदि वर्ण की पुनरावृत्ति चरणान्त के एक वर्ण के पहले हुई हो (इसमें वर्ण की मात्रा संयुक्त या मात्रा रहित कोई भी रूप हो सकता है

अथवा मात्रा में भिन्नता भी हो सकती है) वहां यह अलंकार होता है। यथा—

"लेणां देणां लंक"

(इ) मध्यम वर्ण संख्यक वैण सगाई—

जहां चरण आदि वर्ण की पुनरावृत्ति चरणान्त के दो वर्ण से पहले होती है वहां यह अलंकार होता है। यथा—

"भुज दंड राघव भांनणै"

इस पंक्ति में वर्ण संख्या के अनुसार प्रथम वर्ण 'भु' की स्थिति द्रष्टव्य है।

(ई) वर्ण संख्यक अधम वैण सगाई—

चरण के आदि वर्ण की पुनरावृत्ति जहां चरणान्त के तीन वर्णों के पहले होती है वहां यह अलंकार होता है। यथा—

"निरखे आभ घटा निसकार"

यहां चरण के प्रारम्भ में प्रयुक्त 'न' की पुनरावृत्ति चरणान्त में तीन वर्णों के पहले हुई है। अतः यहां वर्ण संख्यक अधम वैण सगाई है।

(उ) अधमाधम वर्ण संख्यक वैण सगाई—

जहां चरण के आदि वर्ण की पुनरावृत्ति चरणान्त के चार वर्णों के पहले होती है वहां यह अलंकार होता है। यथा—

"केवाट के लाग कीधौ अनमी ऊकड़ाह जींहीं।

(३) अखरोट (मित्र वर्ण वैण सगाई)—

रघुनाथ रूपक में कवि मंछ ने अखरोट को अलग से न समझाकर वैण सगाई के थोड़े से भेदों में से एक मानकर संकेत मात्र कर दिया है, पर कवि किसनाजी आढ़ा ने अपने ग्रंथ 'रघुवर जस प्रकास' में अलग से इसे समझाने का प्रयत्न किया हैं। इसके वर्ण मैत्री के आधार पर चार भेद किए हैं।

वर्ण मैत्री—

किसना आढ़ा[1] के अनुसार मित्र वर्ण निम्न प्रकार हैं।

१. अधिक मित्र - आ, इ, ई, ऊ, ऐ, य, व
२. सम मित्र वर्ण - ज, झ, ब, व, प, फ, न, ण, ग, घ
३. न्यून मित्र वर्ण - ट, त, ठ, थ, ड, च, छ।

---

(१) रघुवर जस प्रकास: रा० प्रा० प्र०, जोधपुर, पृ० १८३

(अ) अधिक अखरोट—

जहां चरण के आदि वर्ण के अधिक मित्र वर्ण का प्रयोग चरणान्त में हो तो यह अलंकार होता है। यथा—

अवधि नगर रे ईलरा, ऐहा हाथ उदार।

यण सरणागत वासते, दीध लंक सुदतार॥

(आ) सम अखरोट—

जहां चरण के आदि वर्ण के सम मित्र वर्ण का चरणान्त में प्रयोग होता है वहां यह अलंकार होता है। यथा—

"जस कज करै झलूस, वाज गजराज वडाला़'

उपरोक्त पंक्ति के प्रथम चरण के आदि वर्ण 'ज' के सम मित्र वर्ण 'झ' का प्रयोग चरणान्त में हुआ है, अतः यहां यह अखरोट है।

(इ) न्यून अखरोट—

जहां चरण के आदि वर्ण के न्यून मित्र वर्ण का प्रयोग चरणान्त में हो वहां 'न्यून अखरोट' होता है। यथा—

धम चाकां ढींचाल़ डौल़, खग झाट लखां दल़।

चौरंग उरस चाचर छिपै, हर आज पूरण हूंस रौ॥

यहां रेखांकित न्यून मित्र वर्णों के यथा स्थान प्रयोग के कारण न्यून अखरोट है। तीन प्रकार की अखरोट के आदि मेल़, मध्य-मेल़, अन्त-मेल़, उत्तम, मध्यम, अधम, अधमाधम आदि कोई दस भेदोपभेद और हो सकते हैं। विस्तार भय के कारण उनके उदाहरण यहां नहीं दिए जा रहे हैं।

इसके अतिरिक्त उपरोक्त 'वैण सगाई' के सभी भेदों के पद के चरणानुसार १५ और उपभेद हो सकते हैं। डिंगल गीतों की दृष्टि से इन उपभेदों का यहां महत्व नहीं है क्योंकि डिंगल गीत के तो प्रत्येक चरण में वैण सगाई का कोई रूप होना अनिवार्य-सा समझा गया है और प्रायः सभी कवियों ने इस परिपाटी का पालन करने का प्रयत्न किया है। अतः काव्य के चरणों के आधार पर होने वाले भेदोपभेदों की यहां चर्चा करना अप्रासंगिक होगा।

(ग) डिंगल गीतों में उक्ति—

डिंगल गीतों की रचना में उक्ति का बड़ा महत्व है। यहां उक्ति का तात्पर्य

वचनों को प्रकट करने से है।[1] कौन किससे और किसके लिए वचन प्रकट कर रहा है इसके आधार पर उक्ति के कई भेद किए गए हैं। कवि मंछ, किसना आढ़ा और उदयराम ने अपने छंद ग्रन्थों में इसका विश्लेषण किया है। उक्ति के निर्वाह या प्रयोग में त्रुटि रहने पर अंध दोष माना गया है। गीतों की रचना में उक्ति का महत्व काव्य को अस्पष्टता से बचाने के लिए है परन्तु इसका निर्वाह करना बड़ी चतुराई का कार्य है—

सगत रा पुत्र जांणै कोइक वचन सिध
उगत री जुगत रा घाट वेंडा।[2]

"रघुवर जस प्रकास" और "रघुनाथ रूपक" में नौ प्रकार की उक्तों को व्यवस्था है। 'कवि कुल बोध' के रचयिता उदयराम ने नौ प्रकार की उक्तों के अतिरिक्त कुछ भेद और भी बताए हैं। यहां प्रत्येक उक्ति का विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है।

(१) सनमुख उक्ति

इसके दो भेद "सुद्ध सनमुख" और "गरभित सनमुख" किए गए हैं।

(अ) सुद्ध सनमुख—

जिस व्यक्ति का प्रसंग हो कवि सीधा उसी के सन्मुख जहां वर्णन करता है, वहां यह उक्ति होती है। यथा—

दस सिर सल मारण दुसह, हाथी तारण हाथ।
कृपा रूप किसनो कहै, निमो भूप रघुनाथ॥[3]

यहां रामचन्द्रजी की प्रशंसा कवि स्वयं उनके आगे कर रहा है।

(आ) गरभित सनमुख—

जहां प्रसंगी का वर्णन अन्योक्ति के द्वारा करता हुआ कवि अपने मन को समझाता है, वहां यह उक्ति मानी जाती है। यथा—

खड़िया त्यांरी खबर, मिलै न कीधी मालम।
चेत रे अजूं मनड़ा चतुर, रट रट श्री सीतारमण॥[4]

यहां कवि ने रामचन्द्रजी का वर्णन कर अपने मन को शिक्षा दी है।

---

(१) भाखे मारग बुध भला, सखरा वचन सुजान,
कहै मंछ कवि जिकण नूं उक्त सदा हिज आण।
(२) डिंगल गीतः रावत सारस्वत चंडीदांन सांदू, पृ० १३
(३) रघुवर जस प्रकास, पृ० १६८
(४) रघुनाथ रूपक, पृ० ४३

(२) परमुख उक्ति—

इसके भी 'सुद्ध परमुख' तथा 'गरभित परमुख' दो भेद होते हैं।

(अ) सुद्ध परमुख—

किसी अन्य पुरुष का वर्णन अन्य पुरुषों के आगे करने से यह उक्ति होती है। यथा—

भुजपत जकां न मेटियो, विद्या गुण वे काम।
नृप देसल भेटे निपुण, धन सोभा सुख धाम ।। (कवि कुल बोध)

यहां पर कवि ने नृप देसल की प्रशंसा अन्य लोगों के सामने की है।

(आ) गरभित परमुख—

जहां अन्य पुरुष का वर्णन अन्योक्ति द्वारा किया जाय वहां यह उक्ति होती है। यथा—

हर सम रौ होसी हरि, जीतै जम रो जंग।
कर उदिम रोलम करै, मन रौ कौटी भंग ।।[1]

यहां अन्योक्ति पूर्ण वर्णन होने से गरभित परमुख उक्ति होती है।

(३) परामुख उक्ति—

इसके भी दो भेद होते हैं-शुद्ध परामुख तथा गरभित परामुख।

(अ) सुद्ध परामुख—

परामुख उक्ति में 'परमुख' उक्ति होने से सुद्ध 'परामुख' उक्ति होती है। यथा—

समपो लंका सोवनी, दीन्ह भभीखण दान।
जैण राम उज्वल सुजस, जम्पो सकल जिहांन ।।

यहां 'सकल' (शिव) से पार्वती राम की महिमा का वर्णन कर रही है।

(आ) गरभित परामुख—

जहां परामुख में 'सनमुख' उक्ति होती है वहां 'गरभित परामुख' उक्ति कहलाती है। यथा—

हर जीं रै कच-कूप मह, वसै क्रोड़ ब्रह्माण्ड
केम प्रभु भावै तिकै, परगट कोड़ी पिंड ।।[2]

यहां परामुख में सनमुख की छाया होने से उपरोक्त उक्ति का प्रयोग है।

---

(१) रघुवर जस प्रकास, पृ० १६६
(२) वही, पृ० १७०

(४) स्री मुख उक्ति—

(अ) सुद्ध स्रीमुख—

कवि मंछाराम[1] और उदयराम ने इसे 'साख्यात स्रीमुख' कहा है। जहां कोई व्यक्ति अपने ही मुंह से अपनी बात कहता है वहां यह उक्ति होती है। यथा—

हूं देसल् लाखहरों, लाखां दिऊं लुटाय।
जाघण भूपां जगत में, जाचण कदे न जाय॥ (कवि कुल् बोध)

यहाँ देसल् स्वयं अपने मुंह से अपनी बात कह रहे हैं।

(आ) कलपत स्री मुख—

जहां कवि कल्पना करके विषयी के मुंह से बात कहलाता है, वहाँ यह उक्ति होती है। किसनाआढ़ा ने इसका नाम ही 'कवि कलपित स्री मुख' उक्ति दिया है।[2]

कोपे तूं मो राज कज, सांभल् बायक सेस।
गरवां मत ग्राहियौ नहीं, यूं कहियौ अवधेस॥

यहां कवि ने कल्पना करके राम के मुंह से लक्ष्मण के प्रति वचन कहलवाए हैं।

(५) मिस्रित उक्ति—

जहां प्रत्येक तुक या गीत के प्रत्येक द्वाले में भिन्न-भिन्न उक्तों का प्रयोग होता है वहां मिस्रित उक्ति होती है। यथा—

नारद कहियो नाथ, अचल हूं तम कर आयो।
सुण अब वच, दे सीख, बीच बन नगर बणायौ॥
जठे स्वयंवर जाय धीय की मांही नील धुज।
नृप कन्या रो नूर देख के प्रभू कने गयो दुज॥
एक री अरदास, हुवे हरि सो मुख म्हारो।
मुलक मुजं महाराज हुसी जो चाह तिहारो॥
बांदरा तणौं वणियो वदन धरवीणा दरगह धसे।
संपेख रूप सगलो सभा, हड हड हड हड हड हंसे॥[3]

कवि कुल् बोध में उदयराम ने इन नौ उक्तों के अतिरिक्त समन्त तथा भ्रान्ति उक्तों का भी जिक्र किया है जो इन्हीं उक्तों के भेदोपभेद के रूप में हैं। उनके लक्षण

---

(१) 'रघुनाथ रूपक', पृ० ४७
(२) 'रघुवर जस प्रकास', पृ० १७१
(३) 'रघुनाथ रूपक', पृ० ४८-४९

आदि कवि ने स्पष्ट नहीं किए तथा डिंगल के अन्य छंदशास्त्र पिंगल सिरोमणी, पिंगल प्रकास, हरि पिंगल आदि में उक्तों का विवरण नहीं दिया गया है। अतः उपरोक्त चार उक्तों के दो-दो भेद तथा पांचवीं मिश्रित उक्ति को मिलाकर कुल ६ उक्तों को काव्य-रचना करते समय ध्यान में रखना आवश्यक माना गया है।

(घ) डिंगल गीतों में दोष—

डिंगल गीतों में ग्यारह प्रकार के दोषों का ध्यान रखने का आदेश डिंगल के काव्य-शास्त्रियों ने दिया है—

अगियार दोख कवि आखिया जे निवार रूपग (गीत) उचर।

डिंगल के उपलब्ध छंद शास्त्रों में से केवल 'रघुनाथ रूपक'[1] और 'रघुवर जस प्रकास'[2] में इन का उल्लेख किया गया है तथा दोनों ही ग्रन्थों मे दोषों के लक्षणों में भी समानता है। दोषों का नामकरण प्रायः पुरुष के शारीरिक दोषों अथवा जातिगत दोषों के कुछ नामों के आधार पर किया गया है। यहां 'रघुवर जस प्रकास' में उदाहरण के तौर पर दिए गये छप्पय के आधार पर प्रत्येक दोष की व्याख्या की जा रही है।[3]

(१) अंध दोष—

इसमें उक्ति का निर्वाह ठीक तरह से नहीं होता। यथा—

"कहिये में के कहूं किसूं 'अंधों' ते कहियौ"

यहां कहियौ में अति सन्मुखादिक उक्ति है पर उसका निर्वाह नहीं हो सका तथा यहां कवि-वचन है अथवा और कोई वचन है इसका स्पष्ट पता नहीं चलता इसलिए अंध दोष है।

(२) छवकाळो दोष

जहां कविता में एक ही भाषा का प्रयोग न होकर अनायास अन्य भाषाओं के शब्द आ जाते हैं, उसे छवकाळो दोष कहते हैं। यथा—

"लिता, पान, धनख रांम 'छवकाळो' लहियौ"

यहां लिता पंजाबी भाषा का शब्द है, पान व्रज भाषा का शब्द है और रांम देशज शब्द है। इसलिए तीन भाषाओं के शामिल हो जाने से 'छवकाळो' दोष हो गया।

---

(१) 'रघुनाथ रूपक', पृ० १४ (इसमें दस दोषों का वर्णन है)
(२) 'रघुवर जस प्रकास' पृ० १७६ (इसमें ग्यारह दोषों का वर्णन है)
(३) वहीं, पृ० १७६, १८०

(३) हीण दोष—

नायक के माता पिता आदि का जिक्र न होने से उसके बारे में भ्रम पैदा हो जाता है उसे हीण दोष कहते हैं। यथा—

'अज अजेव जग ईस निमो ते 'हीण दोष' निज'

यहां अज शब्द शिव के लिए प्रयुक्त हुआ है या विष्णु के लिए, यह स्पष्ट नहीं हो पाता क्योंकि दोनों ही अजेव तथा ईश है यहां पर दोनों की जाति, माता-पिता या विशेष गुण की ओर संकेत न होने से भ्रम हो जाता है।

(४) निनंग दोष—

जहां उपयुक्त क्रम से वर्णन नहीं किया जाता और पहले कहने की बात बाद में कही जाती है या बाद में कहने की बात पहले कही जाती है तो वहां यह दोष होता है। यथा—

'रत नदी, तरत कबंध, सार इम चली 'निनंग' सुज'

यहां होना यह चाहिए था कि पहले तलवार चली, फिर लोही बहने से उसकी नदी चली और फिर उसमें कबंध बहने लगे। पर यहां पहले खून की नदी बहने का वर्णन करके फिर उसमें कबंधों का बहना बताया गया है और फिर तलवार चलने की बात कही है, जिससे वर्णन-क्रम अस्त-व्यस्त हो गया है।

(५) छंद भंग दोष—

जहां छंद में मात्रा आदि की कमी आ जाती है, उसे छंदोभंग कहते हैं। यथा—

'कवि छन्दों भंग कह तुक घुर लछण तो में'

यहां छप्पय के लक्षणानुसार एक मात्रा की कमी है, इसलिए यह छंद भंग हो गया है।

(६) जात विरोध दोष—

जहां एक ही गीत में अन्य गीतों के द्वालों का समावेश छंदशास्त्र के नियमों का उल्लंघन करके किया जाय तो वहां एक जाति के गीत में अन्य जाति का गीत आने से जाति विरोध दोष होता है। जैसे—'वेलियो' गीत में यदि 'जांगड़ो' या 'सुपंखरो' गीत के द्वाले आजावें तो वहां यह दोष होगा।

(७) अपस दोष—

जहाँ दृष्टिकूट पदों की तरह बहुत गूढ़ और क्लिष्ट अर्थ काव्य में हो वहां 'अपस दोष' होता है। यथा—

'विष्णु नांम कुल् विष्णु, विष्णु सुत मित्र 'अपस' वद ।'

यहां विष्णु का नाम हरि और हरि सूरज का भी नाम है, जिससे सूरज के वंशज रामचन्द्र भी सूर्य हैं, यह इच्छित अर्थ बड़ी कठिनाई से ही निकलता है, इस लिए यह दोष है ।

नाल् छेद दोष—

जहां वरण जथा के क्रम का निर्वाह ठीक तरह से नहीं हो सके वहां यह दोष होता है । यथा—

'कच अहि, मुख शशि लंक स्यंध कुच कोक 'नाल्' छिद ।'

यहां पर पहले चोटी का वर्णन कर मुख का विर्णन किया फिर कटि का वर्णन करने के पश्चात् कुच का वर्णन किया इसलिए नख-सिख में क्रम भंग हो गया । अतः यहां 'नाल् छेद' दोष है ।

(९) पख तूट दोष—

जहां काव्य में भाषा का प्रयोग एक ही स्तर का न हो और उसमें स्थान-स्थान पर हल्के शब्द प्रयोग में आवें तो पख तूट दोष होता है । यथा—

'मनख्या मत विललाय गाय प्रभूजी 'पख तूटल् ।'

यहाँ प्रभू पद तो उचित ही है पर 'जी' शब्द प्रभू के साथ लगा देने से यह शब्द पूर्ण साहित्यिक स्तर का न होकर हल्का प्रतीत होता है ।

(१०) बहरा दोष—

जहां शब्दों का प्रयोग ऐसी अस्पष्टता के साथ किया जाता है कि अर्थ उल्टा भी हो सकता है वहाँ यह दोष होता है । यथा—

'रावण हणियो राम ।'

यहां शब्दों से यह पता लगाना कठिन हो जाता है कि राम ने रावण को मारा या रावण ने राम को मारा । जहां कविता में अश्लील और भोंडे शब्द प्रयुक्त होते हैं वहां पर भी यह दोष माना जाता है ।

(११) अपंगल् दोष—

जहां छंद के अन्त की तुक के अन्त का अक्षर आपस में लिखने से अमंगल-सूचक बन जाय वहां अमंगल दोष होता है । यथा—

'महपत में पय राम रे'

जहां यदि अन्तिम शब्द के पहले का अक्षर, अन्तिम अक्षर के साथ मिला दिया जावे तो 'म' कार के साथ 'र' कार मिल जाने से 'मरे' शब्द बन जाता है जो अमंगल सूचक है । अतः यहां 'अमंगल' दोष है ।

इन दोषों को देखने से पता चलता है कि डिंगल के कवि तथा आचार्य बंधी-बंधाई परिपाटी पर ही नहीं चले उन्होंने काव्य के सम्बन्ध में कुछ मौलिक उद्भावनाएं भी की हैं। हिन्दी के आचार्यों ने जहां संस्कृत के लक्षण ग्रंथों के नियमों को ही अपनाते हुए दोष निरूपण किया है वहां डिंगल के आचार्यों ने कुछ नवीन दोषों की ओर भी ध्यान आकर्षित किया है।

उपरोक्त उपकरणों के विवेचन से यह भली भांति स्पष्ट है कि गीतों का रचना-विधान कितना विकसित और नियम बद्ध है। गीतों की वास्तविक रचना प्रणाली का ज्ञान अर्जित कर नियम बद्ध रूप में गीत-रचना करना सहज कार्य नहीं है। इसलिए बांकीदास जैसे प्रतिभा सम्पन्न कवि ने भी गीत-रचना की कला को देवी की कृपा का ही प्रसाद माना है:—

पायौ रचण रूपगां (गीत) पेंडो मेहाई थारी महर।[1]

विवेच्य उपकरणों में जथाओं का निर्वाह साधारण कवि के वश की बात नहीं है इसलिए २,३ सरल जथाओं का प्रयोग ही अधिकांश कवियों के गीतों में मिलता है। वैण सगाई के निर्वाह तथा दोषों के निवारण की ओर सभी गीतकार अवश्य प्रयत्नशील दिखाई पड़ते हैं।

---

(१) बांकीदास ग्रंथावली: भाग ३, पृ० १३६

तृतीय अध्याय

●

गीतों का उद्भव और विकास

गीतों का उद्भव और विकास | २

गीतों के उद्भव और विकास के विवेचन की सुविधा के लिए उनका काल विभाजन निम्न चार भागों में किया जा रहा है :—

(१) उद्भव काल: (संवत् ६००-१३००)।

(२) विकासोन्मुख काल: (संवत् १३००-१५००)।

(३) विकास काल:

(क) पूर्वार्द्ध—(संवत् १५००-१७००)।

(ख) उत्तरार्द्ध—(संवत् १७००-१६००)।

(४) ह्रास काल: (संवत् १६००-२०१६)।

डिंगल साहित्य के क्रमिक विकास पर विचार करते समय विद्वानों ने उसका काल-विभाजन अनेक प्रकार से किया है। यहां हमने मुख्यत: गीतों के उद्भव और विकास को ही ध्यान में रखकर काल विभाजन किया है। गीतों का प्राचीनतम उल्लेख ६वीं शताब्दी में हमें मिल जाता है तथा १२वीं शती तक आते-आते उस काल के गीतों के पुष्ट प्रमाण भी उपलब्ध होते है। १३वीं शताब्दी के अन्त तक महत्वपूर्ण गीत रचना नहीं पाई जाती, केवल उसका उद्भव ही प्रमाणित होता है। अत: १३वीं शताब्दी के अन्त तक की सीमा उद्भव काल के अन्तर्गत रखी गई है। संवत् १३०० से १५०० तक के काल को हमने विकासोन्मुख काल माना है। इस काल में अलाउद्दीन खिलजी और अन्य कई आक्रान्ताओं से राजस्थान को लोहा लेना पड़ा था और पराजय पर पराजय सहनी पड़ी थी। यह काल बहुत बड़ी अशान्ति का काल रहा है। प्राप्त गीत-रचना के आधार पर यह कहा जा सकता है कि इस काल में गीतों का निर्माण पुष्कल मात्रा में अवश्य हुआ परन्तु १५वीं शती के अन्त तक उन्होंने कोई महत्वपूर्ण मोड़ नही लिया। अत: १५वीं शताब्दी के अन्त तक इस काल की सीमा रखी गई है।

१६वीं शताब्दी के प्रारम्भ में चित्तौड़ के राणा कुम्भा ने अपनी शक्ति बढ़ाकर मुसलमानों के आक्रमणों को विफल करना प्रारम्भ कर दिया था। उसके कला-प्रेम ने भी निश्चय ही साहित्यकारों को प्रोत्साहित किया होगा। तब से हमें गीतों में कुछ विशेषताएं भी दिखाई पड़ती हैं। यद्यपि सं० १५८४ में राणा सांगा के परास्त होने से मुगलों का शासन दिल्ली पर कायम हो गया और राजस्थान की स्थिति भी अस्तव्यस्त रही पर कुछ ही वर्षो बाद अकबर ने जब राज्य संभाला तो राजस्थान में स्थायी व्यवस्था स्थापित हो गई और यह व्यवस्था शाहजहां की मृत्यु (सं० १७१५) तक बनी रही। इस काल में गीतों ने सर्वाधिक उन्नति की है। अतः मध्यकाल को पूर्वार्द्ध तथा उत्तरार्द्ध में बाँटते हुए पूर्व मध्यकाल की सीमा १७०० के लगभग मानी है।

मध्यकाल का उत्तरार्द्ध १८वी शताब्दी के प्रथम चरण से लेकर १९वीं शताब्दी के अन्त तक माना है। शाहजहां की मृत्यु के बाद औरंगजेब के शासन-काल में राजस्थान की स्थिति में बहुत परिवर्तन आ गया था, उसे फिर से धर्म तथा धरती के लिए बहुत बड़ा संघर्ष करना पड़ा। यह संघर्ष औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् ही समाप्त न होकर मरहठों तथा अंग्रेजों के साथ निरन्तर होता रहा। १९वीं शताब्दी के अन्त तक जाकर अंग्रेजों ने अपनी पूरी राज्य-व्यवस्था कायम की और मरहठों से मुक्ति मिली। अतः इस संघर्ष-काल की विशिष्ट परिस्थितियो ने १९वीं शताब्दी की अन्तिम सीमा तक की गीत रचना को अपने ढंग से प्रभावित किया है।

२० वीं शताब्दी के प्रारम्भ से ही अंग्रेजों की कूटनीति ने अपना प्रभाव जमाना प्रारम्भ कर दिया था और सं० १९१४ की क्रान्ति के पश्चात् तो पाश्चात्य शिक्षा तथा उनकी राज्य-व्यवस्था ने समाज को बहुत प्रभावित किया, जिससे समूचे डिंगल साहित्य पर उसका घातक प्रभाव पड़ा और तभी से गीतों का भी ह्रास प्रारंभ हो गया। अतः १९वीं शताब्दी के अन्त से गीतों का ह्रास मानते हुए यह इस काल की प्रारम्भिक सीमा मानी है। चीनी आक्रमण और मेजर शैतानसिंह की वीरगति ने प्राचीन शैली के कवियों को गीत-रचना के लिए पुनः प्रेरित किया है, अतः उसकी अन्तिम सीमा रेखा सं० २०१९ तक रखी गई है।

किसी भी साहित्य का ऐतिहासिक काल-विभाजन उसके अध्ययन की सुविधा तथा विशेषताओं को भली भांति समझने की दृष्टि से ही किया जाता है। प्रत्येक काल के बीच में निश्चित सीमा-रेखा खेंचना कठिन ही नहीं संभव भी नहीं जान पड़ता, क्योंकि साहित्य की प्रगति अटूट होती है उसमें मोड़ अवश्य आते हैं परन्तु प्रत्येक मोड़ काफी समय लेता है। अतः उपरोक्त काल-विभाजन गीतों के अध्ययन की सुविधा के लिए ही किया गया है।

प्रत्येक काल के गीतों पर विचार करने के पहले उस काल की विशिष्ट ऐतिहासिक घटनाओं और सामाजिक हलचलों का उल्लेख पृष्ठ-भूमि के रूप में किया गया है। कहीं-कहीं ऐतिहासिक पृष्ठ-भूमि को कुछ विस्तार भी देना पड़ा है, क्योंकि गीतों का सीधा सम्बन्ध ऐतिहासिक घटनाओं तथा उनके फलस्वरूप उत्पन्न नवीन परिस्थितियों से रहा है, जिससे गीतों को समझने में यह ऐतिहासिक पृष्ठ-भूमि भी सहायक होती है।

अब यहां काल-क्रम के अनुसार गीतों के उद्भव और विकास आदि पर विस्तार के साथ विचार किया जा रहा है :—

उद्भव काल

(संवत् ९०० से १३००)

ऐतिहासिक पृष्ठ-भूमि:—

हर्षवर्द्धन के राज्यकाल के समाप्त होते ही (सं० ७०५) उत्तरी भारत की राज्य-सत्ता छिन्न-भिन्न हो गई थी।[1] राजस्थान अनेक राज्यवंशों के शासकों के बीच बंट गया था। इस काल में उत्तरी भारत पर मुसलमानों के अनेक आक्रमण हुए। शुबुक्तगीन (सं० १०३४) ने भटिंडा के शासक जयपाल को हराया तथा उसकी मृत्यु के पश्चात् उसके पुत्र महमूद ने हिन्दुस्तान पर कोई १७ चढ़ाइयाँ कीं और जयपाल को भी दूसरी बार हराया।[2] संवत् १०८२ में सुल्तान महमूद ने सोमनाथ पर चढ़ाई की और बहुत-सा द्रव्य लूटा।

मुसलमानों ने निरन्तर लूट-मार राजस्थान में भी प्रारम्भ कर दी थी। लाहौर में गजनवी वंश के सुल्तानों का हाकिम रहा करता था और वहां से राजपूताने पर चढ़ाइयां हुआ करती थीं। इन चढ़ाइयों का सामना करने वालों में सांभर के चौहान दुर्लभराज (दूसरा), अजयदेव, अर्णोराज, बीसलदेव (विग्रहराज चतुर्थ) आदि का उल्लेख इतिहासकारों ने किया है।

गज़नवी खानदान की समाप्ति तक राजस्थान पर मुसलमानों के आक्रमण अवश्य होते रहे, परन्तु उसके किसी भाग पर मुसलमानों का अधिकार नहीं हो सका था। संवत् १२४९ के लगभग अजमेर का शासक पृथ्वीराज चौहान शहाबुद्दीन गोरी से परास्त हो गया, तबसे मुसलमानों का प्रभाव यहां बढ़ने लगा और सं० १२५० में शहाबुद्दीन के गुलाम सेनापति कुतुबुद्दीन ऐबक ने दिल्ली पर अधिकार कर प्रथम बार उसे मुसलमान राज्य की राजधानी बनाया। इस प्रकार राजस्थान के ठीक मध्य (अजमेर) में मुसलमानों का राज्य जम जाने से राजस्थान के तत्कालीन राज्यों पर

---

(१) राजपूताने का इतिहास चौथी जिल्द, पृ० ७५

(२) राजपूताने का इतिहास: ओझा: पहली जिल्द, पृ० २५७-२५९

उनका स्थायी प्रभाव पड़ने लगा।[१] इस प्रकार यह काल यहां के इतिहास में राज-नैतिक दृष्टि से एक नवीन अध्याय की सूचना हमें देता है।

ऐतिहासिक व्यक्तियों के जीवन को उपजीव्य बना कर काव्य लिखने की प्रथा हमारे देश में ७वीं शताब्दी के बाद तेजी से चल पड़ी थी।[२] उसका विकास इस काल की रचनाओं में ढूंढ़ा जा सकता है। यद्यपि जैन धर्मावलम्बियों की रचना के अलावा यहाँ लौकिक भाषा में लिखा गया साहित्य बहुत अल्प मात्रा में उपलब्ध होता है, तथापि इस काल की कुछ रचनाओं के आधार पर स्थानीय भाषा में विक-सित होने वाली परम्परा का अनुमान लगाया जा सकता है।

गीतों का उद्भव—

९ वीं शताब्दी से १३ वीं शताब्दी तक का काल आधुनिक भारतीय भाषाओं के प्रादुर्भाव का काल माना जाता है। इस काल में ये भाषाएँ अपभ्रंश की विशेषताओं के आधार पर अपना स्वतन्त्र अस्तित्व निर्माण करने लग गई थीं। मरु-भाषा का बीजारोपण भी ९ वीं शताब्दी के आस-पास हो गया था, यह प्रथम अध्याय में ही कहा जा चुका है। जब कोई नवीन भाषा प्राचीन भाषा के गर्भ से जन्म लेती है, तो वह अपनी मातृ-भाषा की अनेक विशेषताओं को आत्मसात् कर कुछ नवीन परम्पराओं की भी सृष्टि करती है। ऐसी स्थिति में भाषा की अभिव्यक्ति-क्षमता में भी नवीनता आना स्वाभाविक है। इस काल में अंकुरित डिंगल भाषा में जहां व्याकरण-गत परिवर्तन पाए जाते हैं, वहां छन्द-गत विशेषताओं का प्रादुर्भाव भी दिखलाई पड़ता है।

जहां तक डिंगल गीतों का प्रश्न है, उन का सबसे प्राचीन उल्लेख ९वीं शताब्दी में वर्तमान अनर्घ-राघव के कर्ता मुरारि कवि के एक श्लोक में मिलता है,[३] जो हरि कवि द्वारा संकलित सुभाषित हारावली में है। चन्द्रधर शर्मा गुलेरी इस बात से अपनी असहमति प्रकट करते हैं कि इतने प्राचीन काल में चारणों द्वारा गीत और ख्यात की रचना होती थी। उन्हें इस श्लोक की प्रामाणिकता में भी संदेह है।[४]

---

(१) द्रष्टव्य-राजपूताने का इतिहास: ओझा: पहली जिल्द, पृ० २६८-२७२

(२) हिन्दी साहित्य का आदिकाल: डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ० १२

(३) चर्चा मिश्चारणानां प्रितिरमण परां प्राप्य संमोद लीलां
मां कीर्तिः सौविदल्ला नव गणय कवि प्रात वाणी विलासान्
गीतं ख्यातंन नाम्ना किमपि रघुपतेरघ यावत्प्रासादा
वाल्मीकेरेव धात्रीं धवलयति यशोमुद्रया रामभद्रः॥
(नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग १, पृ० २२९-२३०

(४) नागरी प्रचारिणी पत्रिका भाग १, पृ० २२९-२३०

गीत का दूसरा उल्लेख ढोला मारू रा दूहा काव्य में भी मिलता है। दोहा निम्न प्रकार है—

गाहा गूढ़ा गीत गुण, कवित्त क्या कल्लोल।
चतुर तणा चित रंजवण, कहियइ कवि कल्लोल ॥[1]

यहां गीत शब्द, गाहा, कवित्त आदि छंदों के साथ आया है, इसलिए इसका तात्पर्य गीत छन्द से माना जा सकता है। ढोला मारू रा दूहा का रचना काल श्री सीताराम लाल्स ने एक हजार विक्रमाब्द माना है।[2] डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी भी इससे किसी हद तक सहमत हैं, क्योंकि उनके मतानुसार इन दोहों का प्राचीन रूप ग्यारहवीं शताब्दी का है।[3]

गीत छंद का प्राचीन एवं प्रामाणिक उदाहरण हमें हेमचन्द्राचार्य कृत व्याकरण के दोधक वृत्ति में मिलता है। यथा:—

ढोल्ला सामला धण चम्पा-वर्णी।
णाई सुवण्णरेह कसवट्ठइ दिण्णी ॥८।४।३३०।१

हेमाचंद्राचार्य का समय सं० ११४५ से १२२६ माना गया है।[4] इन्हीं हेमचंद्राचार्य की कृति में एक दोहा उद्धृत किया है, जिसमें आणंद कवि का नाम आया है।[5] इस आणंद की जोड़ी का कवि करमाणंद प्रसिद्ध है।[6] सिद्धराज जयसिंह के दरबार में कंकाली भाटनी को इन्होंने काव्य विवाद में परास्त किया था, ऐसा विद्वान मानते हैं।[7] सिद्धराज जयसिंह का समय वि० सं० ११५० से ११९९ माना गया है।[8] करमाणंद प्रसिद्ध भक्त कवियों की परम्परा में

---

(१) ढोला मारू रा दूहा: (भूमिका): ठा० रामसिंह, सूर्यकरण पारीक, पृ० ३७
(२) राजस्थानी सबद-कोस (भूमिका), पृ० ६२
(३) हिन्दी साहित्य का आदिकाल: डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ० ६
(४) कुमारपाल चरित, Introduction Page, XXIII-XXV, (1936)
(५) विवाहरि तणु रयण वणु, किउ ठड सिरि आणंद।
निरुवम रसु पिए पिउ विखणु, सेस हो दिण्णी मुंद ॥
(चारणो अने चारणी साहित्य: झवेरचन्द मेघाणी, पृ० ११६)
(६) आणंद के करमाणंद, माणसे माणसे फेरे।
अेक लाखुं देतां न मिलै, अेक टका नां सेर ॥
(वही, पृ० ११८-११९)
(७) चारणो अने चारणी साहित्य: झवेरचन्द मेघाणी, पृ० २३
(८) राजपूताने का इतिहास पहली जिल्द: डा० ओझा, पृ० २१८

हुए, इसलिए माधवदास दयवाड़िया ने अपने ग्रंथ रामरासो के प्रारम्भ में अन्य भक्तों के साथ इन्हें सादर स्मरण किया किया है।[1] इनका रचा हुआ एक भक्ति विषयक गीत भी उपलब्ध होता है।

गीत इस प्रकार है:—

अंग दिये लाख अंगि अंगि लाख उतमंगि,
उतमंगि मुष द्ये लाख अनंत।
मुषि मुषि रसणि दिये लख माहव,
मुणि तो सकां न सगुण महंत।।
सुतण कोटि तिणि तिणि कोटि सिर,
सिरि सिरि कोटि वदनि समराथ।
वदनि वदनि द्यै कोटि जीह वलि,
जपि तो सकां न गुण जगनाथ।।
घड़ि धू कोटि कोटि घड़ि घड़ि धू,
कोटि धू वांधू जिगनि करे।
जिगनि जिगनि धै कोटि लवन जो,
प्रम तो सुगुण पार न परे।।
वप धू वदनि जीह चित्रवांणे,
पार व्रहम कुण लाभे पारि।
करमाणंद छोडवो केसव,
क्रम बंधण हंता करतारि।।[2]

सिद्धराज जयसिंह पर भी श्रृंगारिक गीत उपलब्ध हुआ है यद्यपि उसका लेखक अज्ञात है। आणंद तथा करमाणंद के कई श्रृंगारिक दोहे उपलब्ध होते हैं, उन रचनाओं की संवादात्मक शैली से गीत की शैली भी मिलती-जुलती है। अतः संभव है इनमें से ही कोई इसका रचयिता हो:—

---

(१) मुनिवर करमाणंद, निय गुरु तुम्यौ नमः। (रामरासो: स्तुति का अंश)

(२) (क) साहित्य संस्थान उदयपुर की १७१९ की प्राचीन हस्तलिखित प्रति।

(ख) यह गीत साहित्य संस्थान उदयपुर से प्रकाशित प्राचीन राजस्थानी गीत भाग १२ में छप चुका है परन्तु सम्पादकों की असावधानी से करमाणंद के स्थान पर परमाणंद छाप दिया गया है। मूल प्रति में नाम करमाणंद ही है। इस त्रुटि को डा० हीरालाल माहेश्वरी ने भी राजस्थानी भाषा और साहित्य (पृ० ३५८) में दोहराया है, जबकि प्रकाशित गीत के अन्तिम द्वाले की तीसरी पंक्ति में भी कवि का नाम करमाणंद छपा हुआ है।

झलहले न झंपे कंपे न दिवला,
जोति जुगति थिर कहै कामिनी ।
सिधराज सूं रंग भर रमतां,
विसहर नहीं आ मो वामिनी ।।
ललकै लू व वल् वल वेणी,
दोई जीहा तो खरो डरां ।
आठ कुली मांही नवों कुल् दीसै,
ओट करो तो जोति करां ।।
बहुरस नाह अधिक रस कामिनी,
कहि सुन्दर केतला क्रमैंस ।
सोहै सीस सुहाग राखड़ी,
फण फण दिवला नहीं फणेस ।।
म डरि म डरि दिवला म डरि,
कायर म करि रे कायर पणो ।
भुवंग तणै मोले मति भूले,
सेज रमैं सुत करण तणो ।।[1]

इन तथ्यों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि गीत-रचना १२ वीं शताब्दी तक आते-आते अवश्य होने लग गई थी । १२ वीं शताब्दी के पहले गीतों के जो भी उल्लेख हमें मिलते हैं वे गीत छंद के अंकुरित होने की ओर स्पष्ट संकेत करते हैं । अतः गीतों का प्रारंभ ९ वीं शताब्दी से १३ वीं शताब्दी के बीच मान लेने में आपत्ति नहीं होनी चाहिए । इस तथ्य की पुष्टि को मजबूत बनाने वाले कुछ उल्लेख और भी मिलते हैं, जिनका जिक्र यहां कर देना भी आप्रासंगिक न होगा । संवत् १६१८ के आसपास रचित पिंगल सिरोमणी नामक ग्रंथ में ग्रंथकार ने लिखा है कि चंद वरदाई ने एक छंदशास्त्र की भी रचना की थी, [2] जिसमें साणोर और झमाल् आदि गीतों के लक्षण दिए थे । चंद वरदाई का समय यदि पृथ्वीराज चौहान के समकक्ष माना जाए तो उस ग्रंथ की रचना सं० १२४९ से पूर्व [3] होनी चाहिए । छंद शास्त्र में गीतों के लक्षणों को सम्मिलित करने का तात्पर्य यह है कि अनुमानतः १००-१२५ वर्ष पहले से ये छंद काव्य में प्रयुक्त होते रहे होंगे ।

---

(१) सिद्धराज जैसिंघ री गीत, अ० सं० ला०, बीकानेर का संग्रह ।
(२) पिंगल सिरोमणी (परम्परा भाग १३), पृ० १५१
(३) राजपूताने का इतिहास: ओझा, पहली जिल्द, पृ० २७०

पिंगल सिरोमणी में गीतों के प्राचीन छंदशास्त्रों का एक अन्य उल्लेख भी मिलता है। जिसके अनुसार सिंधू जाति के दो भट्ट कवियों ने बादशाहों के आश्रय में रहकर गीतों के दो बड़े ग्रंथ बनाए, जिनमें गीतों की अनेक जातियों का विवरण उन्होंने अपनी सूझ-बूझ के अनुसार किया। परन्तु अन्य कवियों ने उन्हें प्रामाणिक नहीं माना [1] बादशाहों के आश्रय में भट्ट कवियों का होना असंभव नहीं कहा जा सकता, क्योंकि मुहम्मद गौरी के आश्रय में भी केदार भट्ट जैसे कवि रहते थे [2] अन्य मुसलमान वशों की परम्परा में बादशाह अकबर के अतिरिक्त भाट जाति के कवियों को आश्रय देना नहीं पाया जाता। अतः ये कवि गोरी वंश के ही किसी शासक के आश्रित रहे हों तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। गोरी वंश राज्य १२९७ वि० तक विद्यमान था।[3] इसलिए गीतों के इन ग्रंथों की रचना इस समय के आस-पास हो सकती है। इससे यह अनुमान लगाया जा सकता हैं कि १३ वीं शताब्दी में छंद-शास्त्र की दृष्टि से गीत एक विचारणीय विषय भी बन गया था और कविगण उस पर विचार विमर्श करने लग गए थे।

बारहठ किशोरसिंह का यह मत है कि १२ वीं शताब्दी के लगभग चारण लोग जब तेमड़ा के मार्ग से राजपूताने में जाकर बसने लगे तब से डिंगल काव्य यहां उन्नत हुआ।[4] अतः बहुत संभव है कि इन्होंने गीत छंद की नवीनता से आकर्षित होकर १३ वीं शती के अन्तर्गत उसे प्रोत्साहन दिया हो और तब से गीत-रचना ने डिंगल काव्य में विशेष योग देना प्रारंभ किया हो।

१३ वीं शताब्दी के प्रारंभ में वर्तमान वीसलदेव [5] (विग्रहराज चतुर्थ) के पुत्र के शौर्य तथा वीरगति प्राप्त करने के सम्बन्ध में भी चारण कवि का कहा हुआ एक गीत उपलब्ध होता है। गीत निम्न प्रकार है:—

गीत वेसवटो चारण कहै:—

> वह दीह हूवा मौला घणा वेटी रहत पर हंस पेट रहै।
> मूलवा भी मडियालम राखीस काढि वाहि जमदाढ कहै॥
> तरवार तणो रस लेवा तूं ऊपर आया घणा अरि।
> कमल् ढुलतो समो कटारी काढू नहीं त रीस करि॥

---

(१) पिंगल सिरोमणी (परम्परा भाग १३), पृ० १५१

(२) हिन्दी साहित्य का आदिकाल: डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ० ३१

(३) राजपूताने का इतिहास: ओझा, पहली जिल्द, पृ० २७२

(४) चारणा: बारहठ किशोरसिंह, भाग १, पृ० १५४

(५) राजपूताने का इतिहास: ओझा, जिल्द पहली पृ० २६९

फारक अफर फौज फुरलतां गेये घड़ लग मूळवो गयो।
— — — — — — ॥
मेल खवा ऊतरीयो माथे कर सांगवुत दिखालो वाढ।
मूलवे मास महारस मेली जाणे तिकू माखे जमदाढ॥[1]

इस काल के इने-गिने गीत ही उपलब्ध होते हैं। उनके रचयिता भी प्रायः अज्ञात हैं। यह काल इतिहास की दृष्टि से बहुत बड़े सामाजिक ऊहापोह का काल रहा है, अतः ऐसी परिस्थितियों में साहित्य को लिपिबद्ध करके सुरक्षित करना भी संभव नहीं था। प्रायः इस काल की जैन रचनाएं ही धार्मिक आश्रय के कारण सुरक्षित रही हैं। राजस्थानी ही क्यों, इस काल की हिन्दी में लिखित प्रामाणिक रचनाएं भी बहुत कम उपलब्ध होती हैं।[2]

जो भी गीत उपलब्ध होते हैं, उनकी भाषा भी इतनी प्राचीन नहीं जान पड़ती, क्योंकि वे गीत बहुत बाद में जाकर कोई १६ वीं-१७ वीं शताब्दी में लिपिबद्ध हुए हैं। मौखिक परम्परा पर जीवित रहने वाले काव्य में यह परिवर्तन स्वाभाविक है। इस तथ्य की पुष्टि के लिए इस काल की कुछ अन्य रचनाओं में आगे जाकर होने वाले भाषागत परिवर्तन के उदाहरण यहां प्रस्तुत करना अप्रासंगिक न होगा।

पुरातन प्रबंध संग्रह में लंका के राजा रावण के जन्म सम्बन्धी एक दोहा इस प्रकार है:—

जईयह रावणु जाईयउ, दहमुहु इक्कु सरीस।
जणणि वियम्भी चिन्तवई, कवणु पियावउं खीरु॥[3]

इसी दोहे का आधुनिक रूप निम्न प्रकार से मिलता है:—

राजा रावण जनमियों, दसमुख एक सरीर।
जननी ने सांसों भयो, किण मुख घालूं खीर॥[4]

सिद्ध हेमचंद्र-शब्दानुशासन में विरहिणी नायिका सम्बन्धी एक दोहा इस प्रकार है:—

वायसु उड्डावंति अए, पिउ दिट्ठउ सहसत्ति।
अद्धा वलया महि हिं गया अद्धा फुट्ट तड़त्ति॥[5]

---

(१) अभय जैन ग्रंथालय बीकानेर का संग्रह।
(२) द्रष्टव्य: हिन्दी साहित्य का इतिहास: डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ० ४५-४८
(३) पुरातन प्रबंध संग्रह; मुनि जिनविजय, पृ० ११८
(४) राजस्थान रा दूहा सं०: नरोत्तमदास स्वामी, पृ० ११७
(५) सिद्ध हेम: श्री बूव और श्री ज० का० पटेल, प्रस्तावना, पृ० ४७

आधुनिक काल में इसका स्वरूप निम्न प्रकार हैं:—

काग उडावग धरण खड़ी, आयो पीव भड़क्क ।
आधी चूड़ी काग गल, आधी गई तड़क्क ।।[1]

चंद वरदाई विरचित पृथ्वीराज रासौ की एक षट्पदी पुरातन प्रबंध संग्रह में निम्न रूप में अंकित हैं:—

इक्कु बारा पहुवी सु जुपइं कइंबासह मुक्कओं ।
उर भितरि खडहडिउ धीर कक्खंतरि चुक्कउ ।।
वीअं करि संधीउं भंमइ सूमेसर नंदण ।
एहु सुगडि दाहिमओं खगइ खुद्दई सई भरिवण् ।।
फुड छंडि न जाई इहु लुबिभउ बारह पलकउ खल गुलह ।
नं जाणउं चंदबलदिउ कि नवि छुट्टइ इह फलह ।।[2]

इसी छंद का परवर्ती रूप इस प्रकार मिलता है:—

एक बान पहुमी नरेस कैमासह मुक्यौं ।
उर उप्पर थरहर्‌यो वीर कष्षंतर चुक्यो ।।
बियो बान संधान हन्यों सोमेसर नंदन ।
गाढ़ो करि निग्रह्‌यो षनिव गड्यो संभरि धन ।।
थल छोरि न जाइ अभाज रो गड्यों गुन गहि अग्गरो ।
इम जंपे चंद वरदिया कहा निघट्टे इन प्रलों ।।[3]

अतः इस काल के गीतों का जो स्वरूप हमें प्राप्त होता है केवल उसके आधार पर उनकी प्राचीनता में संदेह करना उचित नहीं जान पड़ता ।

निष्कर्ष:—

उपरोक्त विवेचन के आधार पर यह स्पष्ट है कि ९ वीं तथा १२ वीं शताब्दी के बीच गीत छंद का उद्‌भव हो गया था और १३ वीं शताब्दी में उसे चारण कवियों ने अच्छी तरह अपना लिया था । 'जिस प्रकार दोहा अपभ्रंश के पूर्ववर्ती साहित्य में एक दम अपरिचित होते हुए भी अपभ्रंश का मुख्य छंद हो गया था'[4] उसी प्रकार डिंगल के पूर्ववर्ती साहित्य में गीत छंद के दर्शन नहीं होते वह डिंगल के

---

(१) राजस्थान रा दूहा: सं० नरोत्तमदास स्वामी, प्रस्तावना, पृ० ४७
(२) पुरातन प्रबंध संग्रह: मुनि जिनिविजय, पृ० ८६
(३) पृथ्वीराज रासो; ना० प्र० स०, काशी, पृ० १४९६
(४) हिन्दी साहित्य का इतिहास डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, प्रस्तावना, पृ० ११

प्रादुर्भाव के साथ ही अंकुरित हुआ तथा उसके विकास के साथ पुष्पित होकर महिमामय बना है।

विकासोन्मुख काल

(संवत् १३०० से १५००)

ऐतिहासिक पृष्ठ-भूमि—

इतिहास की दृष्टि से यह काल भी बाह्य और आन्तरिक संघर्षों से भरा हुआ है। इस काल में गुजरात और राजस्थान एक ओर यवन शासकों तथा दूसरी ओर उनके सेनापतियों से पदाक्रान्त होता रहा है। राज्यवृद्धि की लालसा तथा आपसी द्वेष के कारण स्थानीय शासकों के आपसी संघर्ष भी अशान्ति फैलाते रहे हैं।

गुलाम वंश के शासकों से ज्यौंही इस भू-भाग का पीछा छूटा, अलाउद्दीन खिलजी जैसा ताकतवर तथा इस्लाम का एकछत्र राज्य चाहने वाला बादशाह राजस्थान के शासकों के पीछे ही पड़ गया। संवत्१३५७में रणथंभोर पर आक्रमण कर उसने राव हम्मीर चौहान से गढ़ छीन लिया।[१]इस युद्ध की भयंकरता और योद्धाओं के प्राणोत्सर्ग की कथा सर्व विदित है। इस युद्ध के बाद ही वि० सं० १३६० में उसने चितौड़ पर चढ़ाई कर दी। वहां के राणा रतनसिंह ने बड़ी बहादुरी से उसका सामना किया परन्तु अन्त में सभी योद्धा मारे गये और चितौड़ पर अलाउद्दीन का अधिकार हो गया। रानी पद्मिनी जो अपने नैसर्गिक सौन्दर्य के कारण अलाउद्दीन के आकर्षण का मुख्य केन्द्र बिन्दु थी, अनेक राणियों और राजपूत रमणियों के साथ अग्नि में प्रवेश कर गई।[२] इसी युद्ध में लक्षमण सिंह तथा उसके सात पुत्र लड़कर काम आये थे। राणा अरिसिंह भी इनकी मृत्यु के पश्चात् युद्ध में मारा गया था।[3] इसके बाद खिलजी ने सिवाना, जालोर आदि के दुर्ग भी जीते। जालोर के युद्ध और कान्हड़दे तथा वीरमदे के शौर्य तथा धर्म परायणता का वर्णन पद्मनाभ ने 'कान्हड़दे प्रबंध' में बड़ी खूबी के साथ किया है।[४]

इस समय दिल्ली पर तुगलक वंश का राज्य बहुत कमजोर हो चुका था। अतः मालवा, नागौर आदि स्थानों के सूबेदार केन्द्रीय सत्ता की कमजोरी से लाभ उठाकर स्वतंत्र हो गये थे।[५] १५ वीं शताब्दी के मध्य में अमीर तैमूर जैसी बाह्य

---

(१) राजपूताने का इतिहास पहली जिल्दः ओझा, पृ० २७२
(२) वही
(३) मुंहणोत नैणसी री ख्यात, भाग १, पृ० १८
(४) कान्हड़दे प्रबन्ध रा० प्रा० वि० प्र०, जोधपुर।
(५) राजपूताने का इतिहास पहली जिल्दः ओझा, पृ० १७३

शक्ति का आक्रमण हुआ। उसने अपने रास्ते में पड़ने वाले बीकानेर राज्य के भटनेर किले को जीतकर दिल्ली में कत्लेआम किया था।[1]

इन प्रमुख घटनाओं के अतिरिक्त युद्ध एवं विग्रह की छोटी-बड़ी कई महत्व पूर्ण घटनाएं इस काल में हुई हैं। गुजरात के सोरठ भू-भाग के शासक जैसिंह (जसा) कहवाटोत के साथ महमूद बेगड़े का युद्ध वि० सं० १३०२ से १३४७ के मध्य हुआ था।[2] संवत् १३६५ में जैसलमेर के रावल दूदा (दुर्जशाल) के साथ किसी मुसलमान बादशाह का भयंकर युद्ध होना ख्यातों में वर्णित है, जिसमें रावल दूदा ने वीरगति प्राप्त की थी।[3]

राणा हमीर ने सं० १३८३ में देवी बरवड़ी की कृपा से चितौड़ राज्य फिर से प्राप्त कर लिया था।[4] राणा हमीर की मृत्यु के पश्चात् सं० १४२१ में राणा खेता (क्षेत्रसिंह) चितौड़ के सिंहासन पर बैठा। सुलतान अमीर खां से इसका संघर्ष हुआ था।[5] प्रसिद्ध लोक-देवता पाबूजी राठौड़ का जन्म भी इसी शताब्दी में सं० १३१३ के आसपास हुआ था।[6] गायों की रक्षा हेतु जिन्दराव खीची से युद्ध करते समय उन्होंने वीरगति प्राप्त की थी। जिन्दराव खीची को मारकर पाबूजी का वैर सं० १३५४ वि० के आस-पास उनके भतीजे झरड़ा ने लिया।[7] संवत् १३४० वि० में राठोड़ छाडा ने जेसलमेर पर चढ़ाई की थी और शहर को लूटा था।[8] दला जोइया तथा वीरम की प्रतिस्पर्द्धा और वीरम के मारे जाने के पश्चात् सं० १४६० के आस-पास वीरम के पुत्र गोगादे ने दला जोइया को मार डाला था, जिसका वृत्तान्त बादर ढ़ाढ़ी कृत वीरमायण में प्राप्त हैं।[9]

इस बीच चितौड़ के राजाओं की पीढियां मुसलमानों से निरन्तर संघर्ष करती रहीं। मेवाड़ के प्रसिद्ध शासक राणा लाखा (सं० १४३९-१४७१) ने मुसलमानों से अनेक युद्ध किए और गोवध रोकने के प्रयत्न में गया तीर्थ पर युद्ध में प्राणोत्सर्ग

---

(१) राजपूताने का इतिहास, पहली जिल्द, पृ० १७४
(२) मुंहणोत नैणसी री ख्यात, भाग २, पृ० २५२
(३) वही, पृ० ३०१
(४) शोध पत्रिका (उदयपुर): मनोहर शर्मा, भाग ३, अंक २
(५) राजपूताने का इतिहास, प्रथम भाग; जगदीशसिंह गहलोत, पृ० २०३
(६) मरू-भारती (पिलानी) : डा० सहल, वर्ष १, अंक २, पृ० ४०
(७) द्रष्टव्य-पाबू प्रकास: मोडजी आशिया।
(८) राजपूताने का इतिहास (जोधपुर राज्य) : ओझा, पृ० १७४
(९) वीरमायण : रा० प्रा० प्र०, जोधपुर का संग्रह।

किया।[1] सं० १४५१ के आस-पास राठौड़ वंश के पराक्रमी योद्धा राव चूंडा ने मंडोर पर ईंदों की सहायता से अपना अधिकार मुसलमानों को हटाकर किया था।[2] यही चूंडा नागौर के युद्ध में पूंगल के भाटियों तथा जैसलमेर की सेना द्वारा सं० १४८० में परास्त होकर मारा गया।[3]

इन ऐतिहासिक घटनाओं और लूट-खसोट तथा जौहर के वर्णनों से सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि यहां का जन-जीवन कितना अस्त-व्यस्त और संघर्ष-पूर्ण रहा है। बाह्य आक्रमणकारी धन लूटने तथा राज्य प्राप्त करने की लालसा से तो आक्रमण करते ही थे, परन्तु धर्म और नारी का सम्मान लूटना उनकी बर्बरता के आवश्यक अंग हो गए थे। ऐसी स्थिति में उनका मुकाबला करने में न केवल यहां के शासक ही अपना सर्वस्व दांव पर लगा देने को कटिबद्ध रहते थे, अपितु जनता का भी उन्हें पूरा सहयोग मिलता था। यहां के शासकों की शक्ति आन्तरिक विग्रह और जन-संहार के कारण फिर भी क्षीण होती जा रही थी, जिसका दुष्परिणाम आगे की पीढ़ियों को भोगना पड़ा। यह सब कुछ होते हुए भी जिस अतुलनीय साहस, वीरता और दृढ़ता के साथ यहां के लोगों ने धर्म, धरती और नारी के सम्मान के लिए जो संघर्ष किया है, उसके जीवन्त स्वरूप की झांकी हमें इस काल के साहित्य में मिलती है।

इस काल के गीतों की विशेषताएं:—

(१) जैसा कि ऐतिहासिक पृष्ठ-भूमि से स्पष्ट है शत्रुओं से लोहा लेने वाले वीरों को बीरुदाना कवियों के लिए आवश्यक था। उन्होंने उनके युद्ध कौशल तथा प्राणोत्सर्ग की जी खोलकर प्रशंसा की है। अलाउद्दीन खिलजी के आक्रमण से चितौड़गढ़ की रक्षा करते हुए महाराणा अरिसिंह ने जिस वीरता का परिचय दिया उसकी अभिव्यक्ति निम्नलिखित गीत में देखिए:—

गीत छोटी साणोर के:—

पह दील अलायद थंड पैसे, गहण थिये गैं जूह गुड़ैं।
अड़सी तणा चित्रगढ़ ऊपर, अगुट पड़ैं भूडंड पड़ैं॥

---

(१) सा० सं०, उदयपुर के पुस्तकालय में कड़िया ग्राम से लाए गए प्रस्तर लेख में उपरोक्त सूचना अंकित है।

(२) आसोप का इतिहास : रामकर्ण आसोपा, पृ० १३

(३) मारवाड़ का इतिहास : विश्वेश्वर नाथ रेऊ, भाग १, पृ० ५८-६७

गढ़ पालटते गोरियां गाहै, ढाहै असत बहादुर ढांण ।
लखमसिहोत तणौ तन लोहे, पड़ै न असुर पड़ै पीठाण ।।

अवट सेन थयो साह आलम, पटहथ पील पठाण पड़ै ।
आड़े राण तणौ धड़ उभै, चामरियाल् न दुरंग चडै ।।

रविरथ पहर थकत हुय रहियो, नमो नमो चित्रंग नरेस ।
जावै नहीं नाम ससि जड़ियो, पड़ियौ तो चडियौ पंडवेस ।।[1]

(२) इस काल में जितने भी युद्ध हुए उनमें यहां के योद्धाओं की असाधारण वीरता गीतों में वर्णित है, परन्तु सिर कटने के पश्चात् भी योद्धा के कन्धन के लड़ने की जो किवदन्ती राजस्थान में प्रसिद्ध है उसका साक्षात वर्णन भी इस काल के गीतों में मिलता है । इस प्रकार की अदम्य वीरता के दर्शन अन्यत्र दुर्लभ है । जैसलमेर के रावल दुर्जनशाल ने सिर कटने पर भी शत्रुओं का संहार किया था । उसका वर्णन उसके समसामयिक कवि हापा सांदू द्वारा किया गया है:—

ऋमकेत स्वरग कज नह भारथ कज, दूठ दूदड़े दिया दूजोण ।
पह तिण भवणे त्रिणे पेखियो, धड़ प्राते नाचंतो ओण ।।

वाछंता वरमाल् वेगड़ा, वकता सुणै हूदै बसियो ।
जैसल् गिरी तिको दिन जांणै, हाथां ताली दे हंसियो ।।[2]

(३) वीर मैं वैर लेने की प्रबल भावना होती है, वह जितना उदार और निश्चन्त होता है, ठान लेने पर उतना ही लालायित वैर लेने के लिए भी रहता है । इस काल के कुछ गीतों में वैर-भावना का बड़ा ही स्पष्ट चित्रण किया गया है । ये गीत इस काल के योद्धाओं की चारित्रिक विशेषताओं और मनोभावों को समझने के महत्वपूर्ण साधन हैं । झरड़ा राठौड़ ने अपने काका पाबूजी और पिता बूडाजी का वैर जिंदराव खीची को मारकर लिया था, उसके वर्णन की निम्नखिखित पंक्तियां अवलोकनीय हैं:—

कर अेक कणै, कर वियो कटारी,
सुचवै झरड़ौ जींद सनां ।
बावौहि मांगू वाहि विन्हे कर,
काकौ हि मांगू तूझ कन्हां ।।

---

(१) प्राचीन राजस्थानी गीत : सा० सं०, उदयपुर भाग ३, पृ० ५
(२) मुंहणोत नैणसी री ख्यात, भाग २, पृ० ३०७

वागो पाणि कणाउलि वाल,
पाणि बियो जमवढ़ परठेय ।
झरड़ो कहे मांटी होइ जिंदरा,
वूड़ो पावू मांगू वेय ॥
घड़ विच धाराली धांधल,
गाली सत्र साँकड़ो ग्रहे ।
वले कहीं रा पिता वीसरे,
काका ही वीसरे कहे ॥
केवी झरड़े वाहि कटारी,
केवी दिस ऊठियो कहे ।
वले किणी रा पिता वहे तूं,
वले किणी रा चचा वहे ॥[1]

गोगेजी द्वारा वीरम का वैर लेने के कार्य को कवि ने एक आदर्श कार्य बताया है:—

वीरम तणो वाले वालजे इम वैर ।
इम वैरजी इम वैर गोगे वालयो हम वैर ॥[2]

(४) देवियों में क्षत्रिय जाति की अटूट श्रद्धा रही है। वीर योद्धाओं को किसी देवी अथवा देवता की कृपा के फलस्वरूप अनेक वार सफलता प्राप्त हुई है, ऐसे अनेक उल्लेख साहित्यों में मिलते हैं। राणा हमीर जब चित्तौड़ को पुनः प्राप्त करने का प्रयत्न कर रहे थे, उस समय वारूजी सौदा की माता वरवड़ी जी (चारण-कुलोत्पन्न देवी) के वचनों के फलस्वरूप उन्हें सफलता मिली थी। यह घटना वरवड़ीजी के पुत्र वारूजी सौदा द्वारा कहे गए गीत में इस प्रकार चित्रित है:—

गीत:—

एला चीतोड़ा सहै घर आसी,
हूं थारा दोयियां हरूं
जणणी यसो कहूं नह जायो,
कहवं देवी धीज करूं ॥

---

(१) राजस्थानी वीर गीत, बीकानेर, पृ० १५
(२) वीरमांयण, ढाढ़ी वादर कृत, पृ० ६०

रावल् बापा जसो रायगुर,
रीझ खीझ सुरपत री रुंस ।
दससहसा जेहो नह दूजो,
सकती करै गला रा सूंस ।।[1]

इस गीत से यह प्रमाणित होता है कि इस काल में चारण कुलोत्पन्न देवियों का राजनीति और समाज में महत्वपूर्ण हस्तक्षेप था ।

(५) अपने बाहुबल, त्याग और वीरता से प्राप्त राज्यलक्ष्मी शाशकों को कितनी प्रिय थी, उसका वर्णन एक गीत में हमें देखने को मिलेता है । कवि ने सोरठ भू–भाग की तुलना सुन्दरी से करते हुए कहा है:—सोरठ रूपी सुन्दरी का पाणिग्रहण करने के लिए मोहम्मद बादशाह प्रयत्नशील है परन्तु उसका समर्थ पति जयसिंह कहवाटोत उसके सारे प्रयत्नों को विफल कर देता है ।'

मोड़े घड़ सोरठ मेछ मणारंभ,
बांह विलागा वर श्री बेय ।
महमंद साह करे माणेवा,
जायवा दिये न जैसंघ देय ।।
महमंद साह जेम वर मोटो,
सरवहियौ सैधणी समाथ ।
हैवें राइ जोड़ै हथल्वौ,
हिंदवा राव विछोड़ै हाथ ।।
पाट अेक वैसे परणेवा,
पाट उधोर उथापै पाट ।
करग ग्रहै महमंदसाह कन्या,
करग विछोड़े सुतन कँवाट ।।
पांण चढ़ै जादवराइ परणी,
पडरवेस कन्तां ले पांण ।
जैसंघदे ऊभे किम जाये,
सोरठ वैरड़ी घरि सुरताण ।।[2]

---

(१) महाराणा यश प्रकाश: भूरसिंह शेखावत, पृ० २०

(२) राजस्थानी वीर गीत, बीकानेर, पृ० २८

(६) इस काल के कवि-समाज की शासक वर्ग में कितनी प्रतिष्ठा थी, उसके उदाहरण भी हमें गीतों में मिल जाते हैं। जो कवि शासकों के सुख-दुःख तथा संधि-विग्रह के साथी तथा परामर्शदाता थे, उन्हें न केवल व्यवहारिक सम्मान ही दिया जाता था, वरन् हाथी, घोड़े और धन-धान्य देकर सम्पन्न बनाने में भी शासक गर्व का अनुभव करते थे। बारूजी सौदा को राणा हमीर ने बड़ा सम्मान दिया था, उस विषय का एक गीत इस प्रकार है:—

बैठक ताजीम गाम गज बगसे,
कवि रो मोटो तोल कियो।
वड़ दातार हमें बारू नै,
दे इतरो बारोठ दियो॥
पोल प्रवाह करै पग पूजन,
वड़ा अवास छोल् द्रव वेग।
सिंधुर सात दोय दस सांसण,
नागद्रहे दीधा हम नेग॥
सहंस दोय महिषी जन सुरभी,
कंचन करहां भरी कतार।
रीझै दिया पांचसै रैंवत,
दससहंसा झोका दातार॥
कोड़ पसाव पेप जग कहियो.
अधपत यों दाखै इण ओद।
श्री मुख सपत करे अड़सी-सुत
सोदा नह विरचै सीसोद॥[1]

जैसलमेर के राव दुर्जनशाल (दूदो) को तो सिर कटने के बाद भी जब कवि ने पुकारा तो धरती पर पड़ा हुआ उसका मुण्ड हंसने लगा, ऐसा वर्णन एक गीत में हमें मिलता है। इससे बढ़कर आत्मीयता की चरम अभिव्यक्ति और क्या हो सकती है? गीत की पंक्तियां इस प्रकार हैं—

कर मूं विण मूंछ भ्रूह सो,
सूंजकर अजब ओपियो।
अंजसियो गढ़ां गिलवा आदम,
गोरो हड़ हड़ दूदो हंसियो॥[2]

---

(१) महाराणा यश प्रकाश: भूरसिंह शेखावत, पृ० १८
(२) मुंहणोत नैणसी री ख्यात, भाग २, पृ० ३०७

(७) इस काल के जो भी गीत उपलब्ध होते हैं, वे प्राय: सारणोर जाति के हैं, जिससे सारणोर गीत की प्राचीनता सिद्ध होती है। बादर ढाढ़ी द्वारा कहा हुआ एक चित इलोल् गीत इसका अपवाद अवश्य है। इस गीत के लक्षरण भी हस्त-लिखित प्रतियों में थोड़े-बहुत परिवर्तन के साथ भिन्न प्रकार के पाए जाते हैं। श्री सीताराम लाल्स (जोधपुर) के संग्रह की एक हस्तलिखित प्रति में ईसी गीत का शीर्षक सोरठिया (सारणोर) गीत दिया हुआ है। अतः बहुत संभव है इस गीत का का मूल रूप भी सारणोर का भेद रहा हो।ईस काल के गीत प्राय: तीन—चार पदों के मिलते हैं।

(८) इन गीतों में अलंकारों का भी सुन्दर प्रयोग हुआ है। अनुप्रास, उपमा, उत्प्रेक्षा, अत्युक्ति. यमक आदि अलंकारों के अतिरिक्त रूपक का सुन्दर निर्वाह इस काल के के गीतों की बहुत बड़ी विशेषता है, जिससे कवियों की उर्वरा कल्पना शक्ति और प्रतिभा का परिचय हमें मिलता है। राणा खेता (क्षेत्रसिंह) ने अनेक युद्धों में मुगलों का संहार किया था, उसका वर्णन कवि ने चक्की का रूपक बांध कर बड़े ही प्रभावोत्पादक ढंग से किया है। गीत निम्न प्रकार है:—

ओडरण पुड़ येक येक पुड़ असमर,
हाते मूंठज हातालि़या।
कोप खुधारथ केतल् काठा,
दारणव भांत नवी दलि़या॥
धर धूजवी धरा पुड़ धुवतै,
घरट घाय घरण घेरविया।
रातमुखा गोंहू अर राणै.
आवध धारे औरविया॥
अरिणयाँ धार अनेक आवरत,
पाड़े मूठज पारण गया।
खड्ग पलारण खेड़ते खेता,
थाट रवद रण लोट थया॥
पड़ पकवान प्रवाड़ प्रमरथ,
साहां सैन करै बोह संग॥
मैदा कटक महारस मसलै,
जीम्हरण रारण कियो रण जंग॥[1]

---

(१) प्राचीन राजस्थानी गीत: सा. सं०, उदयपुर पृ० १२

वैण सगाई अलंकार डिंगल काव्य की मुख्य विशेषता है। मध्यकाल के कवियों ने तो इस अलंकार का प्रयोग अनिवार्यतः किया ही है, परन्तु इस काल के गीतों में भी इसका प्रयोग प्रायः सफलता के साथ हुआ है। गीतों में एक तरह की कसावट इस अलंकार के प्रयोग से आ गई है।

(९) इस काल के गीतों की शैली में लाक्षणिक प्रयोग भी देखने को मिलते हैं, जिससे कहीं-कहीं अभिव्यक्ति में अच्छा चमत्कार आ गया है। कुछ उदाहरण यहां द्रष्टव्य हैं:—

(क) सूवर माल चरै सलखावत,
डाढ़ां मांहि किया दस देस।[1]

(ख) मोयू माल चरै नर मोटा,
गढ़ां समेत गिलै नित गाम॥[2]

(१०) इस समय में मुसलमानों का निरन्तर सम्पर्क यहां के शासकों और जनता से रहा है, पर उनकी भाषा का कोई विशेष प्रभाव इन रचनाओं में दृष्टिगोचर नहीं होता। इसका मुख्य कारण यही हो सकता है कि इस काल तक बाह्य सल्तनत पूर्ण रूप से यहां नहीं जम सकी थी और न ही दोनों संस्कृतियों में सामंजस्य स्थापित हो सका था। इसलिए उनकी भाषा और संस्कृति को यहां के लोग हेय दृष्टि से देखते थे। मुसलमानों के लिए मेछ, खद, पंडवेस, चामरियाल, रातड़-मुखो, नत्री आदि शब्द इसी काल में गढ़े गए प्रतीत होते है, जिनके प्रयोग आगे के गीतों में खूब पाए जाते हैं।

(११) इस काल में लिखे गए इन गीतों की भाषा इतनी प्राचीन न होने का कारण उनका लम्बे समय तक मौखिक परम्परा पर जीवित रहना है, यह पहले भी कहा जा चुका है। इस काल के जो भी गीत उपलब्ध होते हैं उनमें से केवल चार-पांच गीतों के रचयिताओं का ही पता चलता है। अतः अन्य गीत इस काल की घटनाओं के सम-सामयिक हैं या नहीं यह सन्देह पैदा होना भी स्वाभाविक है। इसके निवारण के लिए डिंगल-गीत-रचना की ऐतिहासिक परम्परा पर थोड़ा विचार करना आवश्यक है।

पन्द्रहवीं शताब्दी तक बहुत कम गीत उपलब्ध होते हैं, परन्तु विशाल गीत साहित्य की पूरी परम्परा का अध्ययन करने पर यह पता चलता है कि ईश्वर-भक्ति

---

(१) मारवाड़ का इतिहास, रेऊ कृत, पृ० ५५-५६
(२) वहीं।

तथा लोक-देवताओं सम्बन्धी रचनाओं को छोड़कर यदि ऐतिहासिक घटनाओं पर लिखे हुए गीतों को देखते हैं तो पता चलता है कि प्रायः इस प्रकार की घटनाओं पर लिखी हुई रचनाएँ सम-सामयिक ही है। मध्यकालीन गीत साहित्य में वर्णित घटनाओं आदि का मिलान समय की दृष्टि से करने पर यह बात भली-भांति स्पष्ट हो जाती है। गीत ही क्यों, अन्य छंदों में रचित डिंगल की अधिकांश ऐतिहासिक काव्य-कृतियां भी काव्य-नायकों के समकालीन कवियों द्वारा ही निर्मित हैं।

कथन की पुष्टि के लिए सं० १५०० से १७०० तक की कुछ कृतियों तथा लेखकों की नामावली यहां दी जाती है, जिन्हें विद्वानों ने सम-सामयिक माना है।

(१) गुण जोधायण: (गाडण पसाइत) [1]
(२) रावल माला रो गुण: (बारहठ आसा) [2]
(३) उमांदे भटियाणी रा कवित: (वही) [3]
(४) राउ चन्द्रसेण रो रूपक: (वही) [4]
(५) झूलणा महाराज रायसिंहजी रा: (माला सांदू) [5]
(६) झूलणा दिवांण श्री प्रतापसिंह जी रा: (वही) [6]
(७) झूलणा अकबर पातसाहजी रा: (वही) [7]
(८) वेलि राणा उदेसिंघ री: (रामा सांदू) [8]
(९) रतनसिंह री वेलि: (दूदा विसराल) [9]
(१०) हालां झालां रा कुण्डलिया: (ईसरदास) [10]
(११) महाराजा मानसिंह जी (आमेर) रा झूलणा: (दुरसा आढ़ा) [11]

---

(१) राजस्थानी भाषा और साहित्य: डा० हीरालाल माहेश्वरी, पृ० ८७
(२) राजस्थानी शबद कोस: भूमिका, पृ० १२७
(३) वही।
(४) वही।
(५) राजस्थानी भाषा और साहित्य : डा० हीरालाल माहेश्वरी, पृ १०६
(६) वही।
(७) वही।
(८) राठौड़ रतनसिंघ री वेलि: (परम्परा भाग १४), परिशिष्ट।
(९) वही।
(१०) हालां झालां रा कुण्डलिया: डा० मोतीलाल मेनारिया।
(११) महाराजा मानसिंह रा झूलणा: सौभाग्यसिंह शेखावत का संग्रह।

अतः डिंगल की काव्य-परम्परा के आधार पर इस काल के ऐतिहासिक पुरुषों व घटनाओं पर लिखे गए गीतों को उनकी सम-सामयिक रचनाएं मानने में आपत्ति नहीं होनी चाहिये। डा० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा गीतों को वास्तविक घटनाओं के आधार पर लिखी हुई ऐतिहासिक महत्व की काव्य-कृतियाँ मानते हैं,[१] इससे भी उपरोक्त मान्यता की पुष्टि होती है।

निष्कर्षः—

इस काल में गीतों की रचना अनेक घटनाओं को लेकर हुई है। कई गीत ऐतिहासिक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण हैं। उनमें विषय वैविध्य के साथ-साथ भाषा में निखार आया है तथा अलंकारों का भी यथोचित प्रयोग हुआ है। आगे जाकर गीतों में जिन परम्पराओं का विकास हुआ है उसकी कुछ झलक उपलब्ध गीतों में मिल जाती है। इसलिए यह काल गीत साहित्य के उद्‌भव और विकास के बीच की महत्वपूर्ण कड़ी है।

(३) विकास-काल

(क) पूर्वार्द्ध

(सं० १५०० से १७००)

ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि—

पिछली शताब्दियों में यहां के शासकों को बाह्य-शक्तियों से निरन्तर लोहा लेना पड़ा था और प्रायः वे आक्रान्ताओं से पराजित होते रहे थे, परन्तु १५वीं शताब्दी का प्रारम्भ होते-होते चित्तौड़ के शासक राणा कुंभा ने अपने बल, पराक्रम और सूझ-बूझ से मुसलमानों को परास्त करना आरम्भ किया जिससे राजस्थान के अन्य राजाओं में भी पुनः शक्ति और सामर्थ्य का संचार हुआ। राणा कुंभा ने अपने जीवन-काल में अनेक युद्धों में मुसलमानों को परास्त किया था।

सं० १५०३ में मालवा के शासक महमूद खिलजी को उसने परास्त किया।[२] संवत् १५१२ में महमूद मालवी भी मंदसौर की चढ़ाई में असफल रहा।[३] नागौर के शासक शमशखां को राज्याधिकार राणा कुंभा ने ही दिलवाया था,[४] परन्तु

---

(१) राजपूताने का इतिहास ओझाः पहली जिल्द, पृ० २६
(२) उदयपुर राज्य का इतिहासः ओझा, भाग १, पृ० ६११
(३) वही, पृ० ६१३
(४) उदयपुर राज्य का इतिहास : ओझा, जिल्द पहली, पृ० ३०१-३०२

जब वह गौ वध करने लगा और हिन्दू जनता को सताने लगा तो कुंभा ने उसे परास्त कर उससे नागौर छीन लिया।[१] कुंभलमेर के गढ़ पर अधिकार सुरक्षित रखते हुए उसने महमूद मालवी और उसके सहायकों को भी हराया था।[२] इसी विजय की स्मृति में चित्तौड़ के दुर्ग पर कीर्तिस्तम्भ का निर्माण हुआ।[3] विदेशी ताकतों से संघर्ष लेने के अतिरिक्त राणा कुंभा और जोधपुर के शासक राव जोधा के बीच अनबन रही तथा युद्ध भी हुआ। संवत् १५२५ में राणा कुंभा का देहान्त हो गया।[४]

उसके वंशज रांणा रायमल और मालवे का सुल्तान गयासुद्दीन के मध्य महत्वपूर्ण युद्ध हुआ था, जिसका वृतान्त रायमल रासो[५] में मिलता है। रायमल की मृत्यु के पश्चात् सं० १५६६ में उसका पुत्र रांणा सांगा चित्तौड़ का मालिक हुआ।[६] यह राणा भी कुंभा की तरह बड़ा बहादुर और युद्ध कौशल में प्रवीण था। राजस्थान के सभी शासकों की उसके प्रति श्रद्धा थी। रांणा सांगा ने अपने राज्य की सीमा दूर-दूर तक फैला दी थी, जिससे सशंकित होकर दिल्ली के बादशाह इब्राहिम लोदी ने उस पर चढ़ाई की, परन्तु वह राणा को परास्त नहीं कर सका।[७] संवत् १५५० में मांडू के हाकिम महमूद (द्वितीय) को भी इसने परास्त किया था।[८] बाद में किन्हीं कारणों से उसे क्षमा कर मांडू का गढ़ पुनः सौंप दिया। ईडर के शासक मुबारिजुल्मुल्क को भी सबक सिखाने के लिए मारवाड़ तथा डूंगरपुर आदि के शासकों की सहायता से उसे युद्ध में हराया।[९] इस प्रकार अनेक छोटी-बड़ी लड़ाइयों में राणा सांगा ने सफलता प्राप्त की थी।

सांगा का अन्तिम और महत्वपूर्ण युद्ध बाबर के साथ खानवा के मैदान में सं० १५८४ में हुआ था।[१०] बाबर के पास कोई बहुत बड़ी शक्ति नहीं थी, परन्तु वह बड़ा अनुभवी, कष्ट-सहिष्णु और निपुण राजनीतिज्ञ था। हिन्दुस्तान पर राज्य जमाने की लालसा से उसने इब्राहिम लोदी को तो हरा दिया था, किन्तु वह यह

---

(१) वही, पृ० ३०६
(२) वही।
(३) वही, पृ० ६२२
(४) वीर विनोद: कविराजा श्यामलदास, भाग १, पृ० ३४४
(५) मुंहणोत नैणसी री ख्यात: प्रथम भाग, पृ० ४१-४२
(६) उदयपुर राज्य का इतिहास: ओझा, भाग १, पृ० १४८-३४९
(७) Mewar and the Mugal emperors: Dr. G.N. sharma, Page 15
(८) उदयपुर राज्य का इतिहास: ओझा, प्रथम भाग, पृ० ३५३-३५४
(९) वीरविनोद: कविराजा श्यामलदास, प्रथम भाग, पृ० ३५९
(१०) उदयपुर राज्य का इतिहास: ओझा, प्रथम भाग, पृ० ३६९-३७०

भलीभांति जानता था कि राणा सांगा जैसी प्रबल शक्ति को वह परास्त नहीं करेगा तब तक उसका यहां टिकना कठिन है। अतः उसने यह जोखिम उठाना अनिवार्य समझा और खानवा के मैदान में जा डटा। राणा सांगा के पास बहुत विशाल शक्ति थी। मारवाड़ का राव गांगा, आमेर का राजा पृथ्वीराज, ईडर का राव भारमल, मेड़ता का राव वीरमदेव, डूंगरपुर का रावल उदयसिंह, गागरौन का राव मेदनीराय, बीकानेर का कुमार कल्याणमल, बूंदी का राव नरबद हाडा आदि भी अपनी सेनाओं सहित इस युद्ध में सांगा के साथ थे।[1] अतः पहली बार राजपूताने के सभी महत्व-पूर्ण शासकों ने अपने सम्मिलित प्रयास द्वारा विदेशी शक्ति का मुकाबिला करने का फैसला किया था। राजपूत सेनाओं में वीरता और साहस की कमी नहीं थी, परन्तु उनके लड़ने का तरीका वही पुराना था। उधर बाबर के पास बहुत बड़े तोपखाने के अतिरिक्त युद्ध-कौशल की नई जानकारी भी थी। प्रारम्भ में विजयलक्ष्मी सांगा की ओर जाती हुई दिखाई दी किन्तु अचानक राणा सांगा के तीर लग जाने से वह घायल हो कर मूर्च्छित हो गया, तब वह युद्ध-भूमि से हटा लिया गया। झाला अज्जा ने उसके स्थान पर युद्ध का कार्यभार सम्भाला[2], परन्तु यह पता लगते ही कि राणा सांगा युद्धभूमि में उपस्थिति नही है, सेना हतोत्साह हो गई और विजय बाबर की हुई।[3] राजस्थान के अनेक प्रसिद्ध योद्धा इस युद्ध में काम आए। राणा सांगा ने होश में आने पर बाबर को हराने का पुनः दृढ़ संकल्प किया, परन्तु वे यह कामना अपने मन में ही लेकर सं० १५८४ में कालपी स्थान पर इस संसार से विदा हो गए।[4]

राणा सांगा की यह हार न केवल चित्तौड़, अपितु समस्त राजस्थान के लिए बड़ी घातक सिद्ध हुई। अब राजस्थान में ऐसा कोई शक्तिशाली शासक न रह गया था जो बाह्य शक्तियों का डटकर मुकाबिला कर सके। दिल्ली पर अपना राज्य स्थापित कर बाबर सं० १५८७ में चल बसा,[5] तब हुमायूं गद्दी पर बैठा। सं० १५९६ में जब शेरशाह सूरी ने उससे राज्य छीन लिया तब वह जोधपुर के पास से होता हुआ ऊमरकोट के राणा की शरण में गया[6] और वहीं अकबर का जन्म हुआ। संवत् १६१२ में शेरशाह की मृत्यु के बाद हुमायू ने फिर से दिल्ली पर अधिकार कर लिया।[7]

---

(१) मारवाड़ का इतिहासः विश्वेश्वरनाथ रेऊ, भाग १, पृ० ११२
(२) वीर विनोदः कविराजा श्यामलदास, भाग १, पृ० ३६६
(३) पूर्व आधुनिक राजस्थानः डा० रघुवीरसिंह, पृ० २०
(४) Mewar and the Mugal emperors: Dr. G.N. Sharma, P. 44
(५) उदयपुर राज्य का इतिहासः ओझा, जिल्द १, परिशिष्ट ६, पृ० ५३५
(६) वही।
(७) वही।

शेरशाह के काल में उसका संघर्ष मारवाड़ के राजा राव मालदेव की सेना से हुआ था, जिसमें जैता और कूंपा बड़ी बहादुरी से लड़कर काम आये थे।[1] मारवाड़ का यह शासक बड़ा महत्वाकांक्षी, वीर और युद्ध प्रिय था। इसने अपने राज्य की सीमा में वृद्धि की तथा अनेक युद्धों में भाग लिया।[2]

मुगल वंश का सबसे पराक्रमी शासक अकबर संवत् १६१२ में राजगद्दी पर बैठा।[3] उसे प्रारम्भ में राजस्थान के राजाओं से अनेक युद्ध लड़ने पड़े। उदयपुर के राणा उदयसिंह पर पूरी तैयारी के साथ उसने चढ़ाई की थी। इस युद्ध में जयमल और पता सीसोदिया दुर्ग की रक्षा के लिए बड़ी वीरता के साथ लड़ते हुए काम आये। अकबर ने चित्तौड़ पर अधिकार कर लिया।[4] जोधपुर के पदच्युत राजा चन्द्रसेन को भी आधीनता स्वीकार न करने के फलस्वरुप उसने पराजित किया।[5] संवत् १६२८ में जब उदयसिंह की मृत्यु हो गई तो उसका उत्तराधिकारी राणा प्रतापसिंह गद्दी पर बैठा।[6] राणा प्रतापसिंह अत्यन्त स्वाभिमानी और स्वतन्त्रता का प्रेमी था। जिसके कारण हल्दीघाटी के युद्ध में परास्त होने पर भी स्वतन्त्रता की ज्योति को प्रज्वलित रखने के लिए पहाड़ों में भटकता रहा। अकबर जैसे प्रबल शत्रु का निरन्तर सामना उसने जीवन पर्यन्त किया। राजस्थान के सभी राजा अकबर की आधीनता स्वीकार कर चुके थे, परन्तु अकेला राणा प्रताप ही अपने संकल्प पर डटा रहा।

अकबर का काल राजस्थान की राजनीति में नए मोड़ का काल है। अकबर ने अपनी शक्ति और राजनैतिक सूझ-बूझ के द्वारा यहां के शासकों के साथ मेल-जोल की नीति अपनाई। राजस्थान का राजनैतिक और सामाजिक जीवन फिर से व्यवस्थित हो गया, परन्तु युद्ध की छोटी-बड़ी अनेक घटनाएं इसके उपरान्त भी होती रहीं।

अकबर स्वयं शिक्षित नहीं था, परन्तु विद्वानों, संगीतकारों, धर्माचार्यो और कलाविदों का बड़ा आदर करता था। उसके राज्यकाल में अनेक कवि एवं कलाकार हुए। डिंगल के प्रसिद्ध कवि राठौड़ पृथ्वीराज भी उसके कृपापात्र थे।

---

(१) आसोप का इतिहास: रामकर्ण आसोपा, पृ० ४३
(२) द्रष्टव्य-मारवाड़ की ख्यात: रा० शो० सं०, जोधपुर का संग्रह।
(३) उदयपुर राज्य का इतिहास: ओझा, जिल्द १, परिशिष्ट ६, पृ० ५३५
(४) पूर्व आधुनिक राजस्थान: डा० रघुवीरसिंह, पृ० ४६
(५) चन्द्रसेन चरित: रेवतसिंह भाटी, पृ० ५५
(६) उदयपुर राज्य का इतिहास: ओझा, पहली जिल्द, पृ० ४१८

अकवर की मृत्यु के वाद सलीम जहांगीर के नाम से दिल्ली के सिंहासन पर वैठा।[1] अकवर का स्वप्न पूर्ण करने के लिए उसने शाहजादे परवेज और कई सेनापतियों की अध्यक्षता में उदयपुर पर सेनायें भेजी, पर तत्कालीन शासक राणा अमर सिंह ने उनका डटकर मुकाविला किया। सफलता न मिलती देख जहांगीर ने स्वयं अपना पड़ाव अजमेर में डाला और शाहजादे खुर्रम को आगे भेजा। शाहजदे ने अनेक गांव लूटे और जनता को वड़ी क्षति पहुंचाई, तव राणा संधि के लिए तैयार हो गया। संधि की शर्तों के अनुसार सं० १६७१ में राजकुमार कर्णसिंह जहांगीर के दरवार में उपस्थित हुआ।[2] जहांगीर के शासनकाल में वीकानेर के राजसिंहासन के लिए झगड़ा हुआ जिसमें दलपत सिंह को सिंहासन से वंचित कर वादशाह ने शूरसिंह को राज्य दिया।[3] इस प्रकार की अन्य कई घटनाएं राजस्थान में हुईं।

संवत् १६८५ में जहांगीर की मृत्यु के वाद शाहजहां सिंहासनारूढ़ हुआ।[4] इस काल के प्रमुख शासक आमेर के राजा जयसिंह, जोधपुर के राजा गजसिंह, वूंदी के राव रतनसिंह आदि के सम्मान में शाहजहां ने वृद्धि की। स्थानीय शासकों के सम्वन्धियों की आपसी खट-पट और छोटी-वड़ी युद्ध की घटनाएं इस काल में अवश्य हुईं परन्तु सामान्यतया राजस्थान में यह काल शांतिपूर्ण ही रहा।

यह काल मुगल सल्तनत की स्थापना और उसके ऐश्वर्य का काल कहा जा सकता है। हुमायू के समय तक इस काल की राजनैतिक परिस्थितियां काफी अस्त-व्यस्त रही परन्तु अकवर जैसे कुशल शासक ने सम्पूर्ण हिन्दुस्तान में एक छत्र राज्य कर स्थायी व्यवस्था कायम करदी थी। ऐसी स्थिति में यहां की आर्थिक हालत में भी सुधार हुआ और धार्मिक सहिष्णुता की नीति के कारण जनता सुख से रहने लगी। इन परिस्थितियों में विभिन्न कलाओं और काव्य का उत्थान होना भी स्वाभाविक था। मुगल सल्तनत के पहले राणा कुंभा तथा राणा सांगा जैसे प्रभावशाली, कला-प्रेमी और कवियों का सम्मान करने वाले शासक होगए थे अतः उनके समय में भी इन क्षेत्रों में महत्वपूर्ण कार्य हुए। चित्तौड़ का कीर्तिस्तम्भ और उदयपुर, जोधपुर, वीकानेर, कुम्भलगढ़ के किलों का निर्माण तत्कालीन शासकों ने करवाया। इनके अतिरिक्त आमेर के राजमहल, सिल्ला माता का मंदिर (आमेर), उदयसागर तालाव, चांवंड के महल (उदयपुर) आदि इस काल की स्थापत्य कला के सुन्दर नमूने हैं।

---

(१) उदयपुर राज्य का इतिहास, ओझा, परिशिष्ट ६, पृ० ५३५
(२) उदयपुर राज्य का इतिहासः ओझा, भाग २, पृ० ४६०
(३) दलपत विलासः रावत सारस्वत, भूमिका पृ० ९–१०
(४) मुगलकालीन भारतः डा० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव, पृ० १

कुंभा ने संगीतज्ञों की सहायता से विख्यात ग्रंथ संगीतराज का सृजन किया। १७वीं शताब्दी के प्रारम्भ में राजपूत चित्रकला का जन्म हुआ।[1] डिंगल तथा पिंगल में अनेक प्रबन्ध तथा स्फुट काव्यों की रचना हुई, जिनका विवरण इस काल पर प्रकाश डालने वाले इतिहासों में मिलता है। इन तथ्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि यह काल अनेक दृष्टियों से राजस्थान के इतिहास में अत्यन्त महत्वपूर्ण रहा है।

इस काल के गीतों की विशेषताएं

डिंगल साहित्य की प्रगति की दृष्टि से यह काल बहुत महत्वपूर्ण रहा है। १५वीं शताब्दी के अंत में न केवल पद्य, अपितु राजस्थानी गद्य ने भी एक नया मोड़ लिया है, अचलदास खीची री वचनिका इसका प्रमाण है।[2] स्फुट और प्रबन्ध दोनों ही तरह का विपुल तथा उच्च कोटि का साहित्य इस समय में रचा गया है। प्रबंध काव्यों में जहां कान्हड़दे प्रबन्ध, क्रिसन रुकमणी री वेलि, राठौड़ रतनसिंह री वेलि, जैतसी रौ छंद तथा रुकमणी हरण जैसी परिमार्जित रचनाएं इस काल में रची गई, वहां दोहा, कवित, गीत, निशानी, झूलना, रसावला, कुण्डलिया आदि छंदों में भी श्रेष्ठ स्फुट रचनाएं हुई हैं। गीत का स्थान इस काल के प्रमुख छंदों में है।

(१) १५वीं शताब्दी के पहले जहां बहुत बड़ी संख्या में गीत रचना नहीं पाई जाती, वहां इस काल के सैकड़ों गीत उपलब्ध होते हैं। १७वीं शताब्दी में लिपिबद्ध अनेक हस्तलिखित प्रतियों में इस काल के महत्वपूर्ण गीत लिपिबद्ध हैं। गीतों की अधिकता इस बात को प्रमाणित करती है कि वह इस काल का बहुत लोकप्रिय छंद रहा है। गीत राजस्थान की सीमा को लाँघकर दिल्ली दरबार तक पहुंच गए थे और मुगल बादशाह उन्हें बड़ी रुचि के साथ सुनते थे। इसका प्रमाण हमें दुरसा आढ़ा, पृथ्वीराज राठौड़, लक्खा बारहठ, जाडा मेहडू आदि की जीवन सम्बन्धी घटनाओं से मिलता है। अकबर की प्रशंसा में दुरसा आढ़ा का कहा हुआ एक गीत इसका प्रमाण है—

बाणावलि लखण (कै तूं) अरजण वाणावलि।
सरदस रोलण (कै तूं) कंस-संहार।
सांसौ भांज हमायु समोभ्रम,
अकबर साह कवण अवतार॥

---

(१) हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास: ना० प्र० स०, काशी, भाग १, पृ० ६४५
(२) अचलदास खीची री वचनिका: सं० नरोत्तमदास स्वामी।

निगम साख मानव गत नाहीं,
असपत कथ सांचौ अणवार ।
वेधण भ्रमण कै तूं झख-वेधण,
गिरतारण कै तूं गिरधार ।।
जोगी परां करामत जौते,
(तूं) आदम नहीं वड़ो कोई अंस ।
धूंसण धण रव (कै) करण विधूंसण,
वंस रघू के तूं जदूवंस ।।
आख दलील कूंण तूं इण में,
अनंत कै नर प्रगट यहां ।
वीर अतल्बल् ढाहण वालो,
कै काली नायणहार कहां ।।[1]

(२) संख्या की दृष्टि से ही नहीं वरन विषय की दृष्टि से भी इस काल में गीतों को विस्तार मिला है। युद्ध, वीरता, प्रेम, भक्ति, नीति, धर्म, साहस, स्वतन्त्रता, दान, स्वामिभक्ति, प्रतिशोध आदि अनेक विषयों पर गीत-रचना हुई है। डिंगल गीतों का वर्गीकरण करते समय आगे इनके उदाहरण प्रस्तुत किए जायेंगे।

शृंगार और वीर रसों की परम्परा में भक्ति की तीव्र धारा ने इस युग में प्रवेश किया है। गीतों में भी इन तीनों रसों की अविरल धारा वहती हुई दृष्टिगोचर होती है। इस काल की सर्वश्रेष्ठ रचना 'वेलि क्रिसन रुकमणी री' इन धाराओं का संगमस्थल है।

(३) १५वीं शताब्दी के पहले के गीत चार-पांच द्वालों के ही पाए जाते हैं, परन्तु इस काल में अनेक द्वालों के गीत राव वीका,[2] राजा रार्यासह,[3] राजा गर्जासह,[4] आदि अनेक प्रसिद्ध नायकों पर रचे गए हैं। प्रसिद्ध कवि मेहा वीठू ने जैता और कूंपा पर २१ द्वालों का गीत रचा है। शेरशाह की सेना के साथ उनके युद्ध तथा शौर्य का विस्तृत वर्णन है।[5]

---

(१) राजस्थानी भाषा और साहित्य: डा० मोतीलाल मेनारिया, पृ० १३६
(२) सीताराम लाल्स, जोधपुर का संग्रह।
(३) देवकरण वारहठ, इंदोकली का संग्रह।
(४) रा० शो० सं०, जोधपुर का संग्रह।
(५) आसोप का इतिहास: रामकर्ण आसोपा, पृ० २७–३२

(४) डिंगल काव्य में वेलि नामक काव्य विधा इस काल में प्रारम्भ ही नहीं हुई वरन् अपने चरमोत्कर्ष पर भी पहुंची। ये वेलियां प्राय: वेलियो गीत में लिखी गई हैं। इस परम्परा को जन्म देने का श्रेय कर्मसिंह सांखले को है, जिन्होंने सोलह सौ के आस-पास "क्रिसण रुकमणी री वेल" लिखी थी। उसके २२ द्वाले उपलब्ध होते हैं।[1] पृथ्वीराज राठौड़ कृत "क्रिसन रुकमणी री वेलि" से साहित्य-जगत भली भांति परिचित है। अन्य वेलियों की सूचि निम्न प्रकार है—

(१)	राठौड़ रतनसिंघ री वेलि	दूदौ विसराल	१६१४ के लगभग[2]
(३)	राणा उदयसिंह री वेलि	रामा सांदू	१६१६ के लगभग[3]
(५)	देईदास जैतावत री वेलि	अखौ भांणत	१६२० के लगभग[4]
(४)	चांदा वीरमदेवोत री वेलि	मेहो वीठू	१६२४ के लगभग[5]
(५)	रायसिंघ रीं वेलि	माला सांदू	१६५० के लगभग[6]
(६)	महादेव पारवती री वेलि	किसना आढ़ा	१६३०-१७०० के मध्य[7]
(७)	राउ रतनसिंघ री वेलि	कल्याणदास मेहडू	१६६४-१६८८ के लगभग[8]
(८)	सूरसिंघ री वेलि	चोलो गाडण	१६७२ के लगभग[9]
(९)	गुण चांणक वेलि	चूंडौ दधवाड़ियौ	१७वीं शती का आरम्भ[10]

पृथ्वीराज राठौड़, माला सांदू, चूंडौ दधवाड़ियो जैसे विद्वान कवियों ने अपनी महत्वपूर्ण रचना की सृष्टि के लिए गीत छंद को चुना है, इससे यह प्रमाणित होता है कि गीत उस काल के कवियों की आत्माभिव्यक्ति का कितना शक्तिशाली माध्यम रहा होगा।

(५) १७वीं शताब्दी के प्रारम्भ में लिखा गया "पिंगल सिरोमणी" नामक छंदशास्त्र का ग्रंथ गीतों के छंद-शास्त्रीय पक्ष को पुष्ट करने वाला है।[11] इस छंद

---

(१) Descriptive Catalogue: Tessitori, Sec. II, Pt, 1, P: 45
(२) राठौड़ रतनसिंह री वेलि: (परम्परा भाग १४)।
(३) सा० सं०, उदयपुर का संग्रह।
(४) वरदा:देईदास जैतावत री वेलि:नरेन्द्र भानावत वर्ष ३, अंक ४
(५) राठौड़ रतनसिंह री वेलि (परम्परा भाग १४): नरेन्द्र भानावत।
(६) वही।
(७) महादेव पारवती री वेलि:सं० रावत सारस्वत।
(८) शोध पत्रिका:राव रतन री वेलि:सौभाग्यसिंह शेखावत, भाग १२, अंक २
(९) राठौड़ रतनसिंह री वेलि: (परम्परा भाग १४): नरेन्द्र भानावत।
(१०) मरूभारणी (जयपुर): चूंडाजी दधवाड़िया: रावत सारस्वत, वर्ष ४, अंक ५
(११) पिंगल सिरोमणी: (परम्परा भाग १४)।

शास्त्र में ही दो अन्य छंद-ग्रंथों के नाम भी मिलते हैं, जिनका उल्लेख पहले किया जा चुका है। वे ग्रंथ अद्यावधि अनुपलब्ध हैं। पिंगल सिरोमणी में लगभग ४० प्रकार[1] के गीतों के लक्षण उदाहरण सहित दिए गए हैं। गीतों का यह लक्षणगत वैविध्य इस बात को सिद्ध करता है कि उनके अनेक भेद इस काल में ही हो गए थे।

(६) इस काल के कई गीतों में कवियों ने अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन करते हुए गीतों के अभिव्यक्ति पक्ष को संवारा है। गीतों में जयाओं का सफल प्रयोग इस काल से प्रारम्भ हो गया था। उदाहरणार्थ बारहठ ईसरदास का गंगा की स्तुति में कहा हुआ एक गीत उद्धृत है, जिसमें शुद्ध जया[2] का निर्वाह किया गया है।

चाली विसन रा पगां हूंत ब्रहमंड हूंता चाली,
विसन रा कमंडलां चाली वाह वाह।
मेर रा सरगां मांह पधारी सहसमुखी,
पाहड़ां अनड़ां विचै गंग रा प्रवाह॥
निरमला तरंग वेल ऊजला प्रवाह नीर,
संमला करम मिटे तारणी ससार।
भली भांत सेवा करे भागीरथ ल्यायौ भली,
धन्य २ सुरसरी मुकत री धार॥
सतजुग द्वापर कलौ में सति,
नागां लोकां सुरां लोकां नरां लोकां नाम।
जान्हवी हरद्वारी वैकुंठी पैड़ी जिका,
पाप रा कपाट भांजे कीजिये प्रणांम॥
मुनेसां महेसां जोगेसां सरीखा मुणै,
कवेसां अनेसां भाखे मुखां यु सकीत।
ब्रहमा विसन सिव सूरज सरीखा वादे,
पारब्रह्म कीधी गंगा प्रथमी पवीत क्रीत॥
उलटां हजार वार गिरंदां विहार आई,
आधार संसार सारे महमा अपार।
अवतारां दसां जिसौ इग्यारमो अवतार,

---

(२) पिंगल सिरोमणी, पृ० १५१-१८०
(३) रघुनाथ रूपक: मंछाराम, पृ० २०७

कला रूप जीत घणो वणे जला तार ।।
पार तार च्यार जुग वलेई तारवा प्रथी,
विमला उजला जला प्रवला वहंत ।
महा पाप काटे परामुगती रा द्वार मिले,
कराँ जोड़ि नमो मात ईसरा कहंत ।।[1]

(७) इस काल के गीतों की भाषा बड़ी परिमार्जित, भावप्रवण और सबल है। प्रत्येक प्रकार के भाव को व्यक्त करने की क्षमता इस काल के गीतों में पाई जाती है। अपभ्रंश के प्रभाव से डिंगल १६वीं शताब्दी में पूर्णतया मुक्त हो चुकी थी।[2] अतः अब गीतों में तत्सम शब्दों का खूब प्रयोग होने लगा था। इस काल में उत्तरी भारत की परम्परा के साथ वृजभाषा का आगमन राजस्थान में होगया था और अनेक कवि डिंगल तथा वृज दोनों में रचना भी करते थे, परन्तु डिंगल गीतों की भाषा पर व्रज का उल्लेखनीय प्रभाव दृष्टिगोचर नहीं होता। व्रज के प्रभाव से गीतों की भाषा के अछूते रहने का कारण इस छंद के अपने विशिष्ट विन्यास (डिक्सन) तथा डिंगल भाषा की ओजपूर्ण विशेषता हो सकती है।

अरबी, फारसी जैसी विदेशी भाषा के शब्दों का प्रयोग इस काल के गीतों में बहुलता से मिलता है, क्योंकि इस काल में हिन्दू संस्कृति के साथ मुस्लिम संस्कृति का सम्पर्क स्थापित हो गया था, जिससे अनेक प्रकार के व्यावहारिक शब्द यहां के जन-जीवन में प्रचलित हो गये थे ! उदाहरणार्थ कुछ पंक्तियां नीचे उद्धृत हैं, जिनमें इस प्रकार के शब्दों का प्रयोग मिलता है।

(१) वडौ सूर सुदतार रायसिंह विसरामियौ,
विढ़ण कुण कंवारी घड़ा वरसी।
कूंजरां तणी मोहताद करसी कवण,
कवण घोड़ां तणी मौज करसी।।[3]

(२) चीर जरद पाखर चंडाउण,
कांचू जिरह जड़ाव करि।[4]

(८) राठौड़ पृथ्वीराज, दूदौ विसराल, किसना आढ़ा, ईसरदास बारहठ दुरसा आढ़ा, नांदण बारहठ आदि इस काल के प्रसिद्ध कवियों ने अपने गीतों में शब्दा-

---

(१) पिंगल सिरोमणीः (परम्परा भाग १३), पृ० १६३
(२) दयालदास री ख्यातः डा० दशरथ शर्मा, भाग २, पृ० १४०
(३) राजस्थानी साहित्य का मध्यकालः (परम्परा भाग १५-१६), पृ० २६८
(४) राठौड़ रतनसिंह री वेलिः (परम्परा भाग १४) पृ० ४६

लंकारों तथा अर्थालंकारों का प्रयोग प्रचुरता के साथ किया है। वैण सगाई का निर्वाह तो प्रायः प्रत्येक कवि के गीतों में देखने को मिलता है। आगे अलंकारों का विवेचन षष्ठ अध्याय में करते समय अनेक उदाहरण इस काल के गीतों में से दिये गए हैं। अतः यहाँ इतना कहना ही पर्याप्त होगा कि इस काल के अनेक कवियों ने गीतों में अपनी सूझ-बूझ के अनुसार अलंकारो का सुन्दर प्रयोग किया है।

(९)इस काल की गीत-रचना अधिकांश चारण कवियों द्वारा ही की गई है, परन्तु राजपूत, ओसवाल, भाट, मोतीसर आदि चारणेतर जातियों के कवियों का भी महत्वपूर्ण योगदान रहा है। उदाहरण के लिए चारणेतर कवियों में करमसी सांन्खला, राठौड पृथ्वीराज, राव गांगा, रावल हरराज, चतरा मोतीसर, वाघजी भाट आदि कवियों के नाम लिए जा सकते हैं, जिन पर सातवें अध्याय में प्रकाश डाला जाएगा। पद्मा सांदू जैसी चारण कवयित्री भी इस काल में हुई है, जिसके गीत ऐतिहासिक महत्व के हैं।

(१०) इस काल के कुछ कवियों की बहुत बड़ी विशेषता उनकी सत्यवादिता भी रही है। अनेक कवि ऐसे हुए हैं, जिन्होंने परिणाम की कोई चिन्ता न कर सत्यता को अभिव्यक्ति दी है। अकबर की विषय-लोलुपता और प्रतापसिंह की चरित्रोज्ज्वलता पर राठौड पृथ्वीराज की कुछ पक्तियां इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं :—

नर तैथ निमांणा निलजी नारी,
अकबर गाहक वट अवट।

चौहटे तिण जाय' र चीतोड़ो,
वेचे किम रजपूत वट॥

रोजायतां तणैं नवरोजे,
जे मुसाणां जणो जण।

हींदू नाथ दिलीचे हाटे,
पतो न परचै पत्रीपण:॥

परपंच लाज दीठ नह व्यापण,
खोटो लाभ अलाभ खरो।
रज वेचवा न आवै रांणो,
हाटे मीर हमीर-हरो॥[1]

---

(१) महाराणा यश प्रकाश: सं० भूरसिंह शेखावत, पृ० ९४

इस गीत से स्पष्ट है कि पृथ्वीराज ने अकबर के पास रहते हुए भी कितनी निर्भीकता के साथ स्थानीय शासकों की हीनता और क्षात्र-धर्म के महत्व को स्पष्ट शब्दों में प्रकट किया है।

(११) गीत-रचना करने वाले चारण कवि इस समय में बहुत बडी संख्या में हुए हैं, परन्तु उन सब का जीवन–वृत्तान्त नहीं मिलता है। अनेक कवियों का उल्लेख मुंहणोत नैणसी की ख्यात तथा अन्य राज्यों की ख्यातों में भी प्राप्त होता है। इन ख्यातों और कुछ काव्यांशों के आधार पर ज्ञात होता है कि यहाँ के शासक इन कवियों को बहुत बड़ा सम्मान देते थे। उन्हें ताजीम के अतिरिक्त जागीरें भी दी जाती थी। एक गीत में तो यहां तक उल्लेख हुआ है कि बीकानेर के महाराज रायसिंह ने शंकर बारहठ को प्रसन्न होकर सवा करोड़ का दान दिया था।
यथा:—

सव लाखां ऊपर नवसहंस,
लाख पचीसूं दीध हिलोल़।
खित पुड़ घणा गडौथल़ खावे,
बूड़े छात विया जस बोल़॥
पैं उलट्ये सामंद बीकमपुर,
छात विया वहग्या गह छंड।
मेघाडमर मुकुट सिर मंडै,
रीझ धके न सकै पग मंड॥[1]

इस काल में दी हुई कुछ जागीरें कुछ वर्षों पहले तक उनके वंशजों के पास रहीं हैं,[2] जिससे इस कवि-समाज की विशिष्ट स्थिति का आभास सहज ही होता है।
निष्कर्ष:—

इन २०० वर्षों का काल गीतों के वर्ण्य–विषय, छंद, भाषा–शैली तथा गीत रचयिताओं की सामाजिक स्थिति की दृष्टि से बड़ा ही सम्पन्न और ऐतिहासिक महत्व का है। राठौड़ पृथ्वीराज, ईसरदास, दुरसा आढ़ा, दूदो विसराल जैसे असा–धारण प्रतिभा के धनी इसी काल की देन हैं। गीतों में प्रबन्धात्मक तथा स्फुट दोनों ही तरह की सुन्दर रचनाएं इस काल में हुई है। छंद शास्त्र में गीतों के भेदों पर विचार हुआ है। गीत छंद ने डिंगल साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान इस काल में बनाया है। इन सब कारणों से इस काल को यदि डिंगल गीतों का स्वर्ण–काल कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी।

---

(१) दयालदास री ख्यात: सं० डा० दशरथ शर्मा, पृ० १२७
(२) द्रष्ट-मारवाड़ रायरगनां री विगत।

(ख) उतरार्द्ध

(सं० १७०० से १९०० तक)

ऐतिहासिक पृष्ठ-भूमि

दिल्ली सल्तनत की पिछली तीन पीढ़ियों में राजस्थान के राजपूत राजाओं का सम्बन्ध मुस्लिम सत्ता के साथ दृढ़ होता गया। अकबर ने जो धार्मिक सहिष्णुता की नीति अपनाई थी उसका निर्वाह जहांगीर और शाहजहां ने भी किया। अकबर ने अपने राज्य के विस्तार और स्थायी व्यवस्था में यहां के शासकों का पूरा सहयोग लिया था। जहांगीर और शाहजहां के राज्यकाल में भी यहां के शक्तिशाली शासक बराबर उनको सहयोग देते रहे।

१८वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में राजनैतिक स्थिति बहुत कुछ बदल गई। अपनी वृद्धावस्था में शाहजहां जब सख्त बीमार हुआ तो उसके चारों शाहजादों में राजगद्दी के लिए झगड़ा हुआ। शाहजहां दाराशिकोह को अपना उत्तराधिकारी बनाना चाहता था, क्योंकि वह सबसे मेल-जोल रखने वाला और अन्य भाइयों की अपेक्षा सुशील तथा विद्वान था।[1] चारों भाइयों में सबसे बड़ा होने के कारण भी गद्दी का अधिकारी वही था। परन्तु राज्यसत्ता के लोभ में पड़कर सभी भाई अपनी ताकत आजमाना चाहते थे, जिसके फलस्वरूप सं० १७१५ में उज्जैन के पास धरमत नामक स्थान पर औरंगजेब और मुराद की संयुक्त सेना से शाही सेना का मुकाबिला हुआ।[2] जिसमें राजस्थान के प्रसिद्ध योद्धा जसवंतसिंह (जोधपुर), रतनसिंह राठौड़ (रतलाम), अर्जुन गौड़ (राजगढ़), मुकंदसिंह हाडा (कोटा), राजा वेरीसिंह शेखावत (खण्डेला), दयालदास झाला (गंगधार), राजा रायसिंह सीसोदिया (टोडा) आदि अपनी सेनाओं सहित शामिल थे।[3] यह बड़ा ही भयंकर युद्ध हुआ था, जिसमें जसवंतसिंह राठौड़ तो किसी तरह बच निकला, पर दूसरे अधिकांश योद्धा बहादुरी से लड़कर काम आए। विजय औरंगजेब और मुराद की हुई। इस युद्ध का विस्तृत विवरण राठौड़ रतनसिंह महेसदासोत री वचनिका में मिलता है। इसी समय शाहजहां के संकेत पर जयपुर के मिर्जा राजा जयसिंह ने शाहजादा शुजा को बनारस के पास परास्त किया था, जिससे वह दिल्ली की ओर नहीं बढ़ सका।[4] इस प्रकार

---

(१) कोटा राज्य का इतिहास: डा० मथुरालाल शर्मा, भाग १, पृ० १५९
(२) वचनिका राठोड़ रतनसिंहजी री महेसदासोत री खिड़िया जगारी कही: सं० काशीराम शर्मा, डा० रघुवीरसिंह, भूमिका पृ० ७८
(३) वही, परिशिष्ट पृ० १५५-१३३
(४) मुगलकालीन भारत: डा० आशीर्वादी लाल, पृ० २८

यहां के प्रमुख शासकों ने दाराशिकोह की सहायतार्थ अनेक प्रयत्न किए, परन्तु औरंगजेब ने अपनी कूटनीति और क्रूरता के बल पर सभी भाइयों को मौत के घाट उतार दिया और स्वयं दिल्ली के सिंहासन पर बैठा।

औरंगजेब बड़ा ही शक्तिशाली शासक था, इसलिए राजस्थान के सभी शासकों को उसकी अधीनता स्वीकार करनी पड़ी। जोधपुर के राजा जसवंतसिंह और जयपुर के राजा मिर्जा जयसिंह जैसे शक्तिशाली राजाओं से वह सदैव भयभीत रहता था। अतः उन्हें अपनी राजधानियों से दूर सूबेदारी आदि देकर वहां विपक्षियों का दमन करने के लिए नियत कर दिया करता था। उदयपुर के राणा राजसिंह ने राजगद्दी के झगड़े में तटस्थता बरती थी, इसलिए औरंगजेब उससे खुश था, परन्तु जब किशनगढ़ की राजकुमारी चारुमती का विवाह उसने औरंगजेब के साथ नहीं होने दिया और स्वयं उसे वरण कर लाया तब वह राणा राजसिंह पर भी रुष्ट होगया।[1]

दक्षिण में शिवाजी के नेतृत्व में मरहठों की शक्ति जोर पकड़ रही थी। अतः जयसिंह (जयपुर) को उसका दमन करने के लिए भेजा गया। उसने अपनी रणदक्ष नीति से मरहठों के अधीनस्थ रूद्रदमन, लोहगढ़, राजगढ़, टोरना, रोहड़िया आदि को जीत लिया।[2] उसके सामने बीजापुर के शासक को भी परास्त होना पड़ा और शिवाजी को भी दिल्ली दरबार में प्रस्तुत होने के लिए बाध्य होना पड़ा।[3]

संवत् १७२४ में मिर्जा जयसिंह की मृत्यु हो गई। एक शक्तिशाली हिन्दू राजा के मर जाने के कारण औरंगजेब की हिन्दू-धर्म-विरोधी नीति उभरने लगी। अनेक मंदिर ध्वस्त होने लगे, मूर्तियां खण्डित होने लगी और धर्म-ग्रंथ जलाए जाने लगे।[4] अभी तक उदयपुर का राणा राजसिंह तटस्थ बैठा हुआ था, परन्तु उसने धार्मिक अत्याचारों को देखकर श्रीनाथजी और द्वारकानाथजी की मूर्तियाँ मथुरा से सुरक्षित रूप में लाकर क्रमशः नाथद्वारा और कांकरोली में प्रतिष्ठित कीं।[5] सिक्खों के धर्म-गुरू तेग बहादुर का वध करवाने के कारण गुरु गोविन्दसिंह के नेतृत्व में सिक्खों ने जोर पकड़ा।

---

(१) उदयपुर राज्य का इतिहास: ओझा, जिल्द २, पृ० ८५१
(२) मुगलकालीन भारत: डा० आशीर्वादीलाल, पृ० ९९-१०३
(३) वही।
(४) घंट न वाजे देहरां, संक न माने साह।
 अेकरसां फिर आवाज्यो, माहूंरा जयसाह॥ (महाराजा जसवंतसिंह)
(५) उदयपुर राज्य का इतिहास: ओझा, भाग १, पृ० ८५७

यह पहले ही कहा जा चुका है कि जसवंतसिंह से औरंगजेब भयभीत रहता था। अतः उसने उसे गुजरात की सूबेदारी से हटाकर अफगानिस्तान में भेज दिया। जसवंतसिंह पांच वर्ष तक वहीं रहा और जमरूद में ही उसकी मृत्यु होगई।[1] उसका कुटुम्ब जब जोधपुर की ओर उसके सामन्तों की देख-रेख में लाया जा रहा था तो लाहौर के पास दो रानियों के गर्भ से दो पुत्र पैदा हुए, जिनमें से दलथंमन तो तभी मर गया? तथा औरंगजेब की आज्ञानुसार दूसरे पुत्र अजीतसिंह को लेकर रानियों को दिल्ली पहुंचना पड़ा। औरंगजेब अजीतसिंह को भी मरवाना चाहता था, ताकि जोधपुर की गद्दी का कोई उत्तराधिकारी न रहे, परन्तु इस षड़यन्त्र का पता जब दुर्गादास और मुकन्ददास आदि स्वामि-भक्त सरदारों को लगा तो उन्होंने बड़ी चतुराई से अजीतसिंह को वहां से हटा लिया और उसका पालन-पोषण अरावली की पहाड़ियों में दुर्गादास की देख-रेख में होने लगा।[2]

इधर औरंगजेब ने नागौर के राव इन्द्रसिंह को जोधपुर की सनद दे दी थी और दिल्ली सल्तनत का पूरा दखल वहाँ हो गया था। दुर्गादास ने अजीतसिंह को सुरक्षित रखने तथा मारवाड़ का राज्य पुनः हस्तगत करने के लिए बड़ी भारी कठिनाइयों का सामना किया और अनेक युद्ध लड़े। अपनी राजनैतिक दूरदर्शिता के कारण शाहजादे अकबर और उसके परिवार को भी अपने पास रखा तथा अन्त में अजीतसिंह के बालिग होने पर उसे मारवाड़ का राज्य औरंगजेब को मजबूर कर दिलवाया।[3] संवत् १७६४ में औरंगजेब की मृत्यु हो गई।[4]

औरंगजेब के दो पुत्रों में राजगद्दी के लिए झगड़ा हुआ जिसमें राजस्थान के शासक भी दो पक्षों में बंट गए। बूंदी का बुधसिंह हाडा, किशनगढ़ का राजसिंह राठौड़ आदि मुअज्जम के पक्ष में और सवाई जयसिंह व रायसिंह हाडा (कोटा) आदि आजम के पक्ष में थे। युद्ध में मुअज्जम की विजय हुई, जो बहादुरशाह के नाम से दिल्ली के तख्त पर बैठा।[5] इस प्रकार राजस्थान की शक्ति दो भागों में बंट जाने से भविष्य में भी उन्हें बड़ी क्षति उठानी पड़ी।

---

(१) जोधपुर राज्य का इतिहास: ओझा, जिल्द १, पृ० ४६७
(२) सूरज प्रकाश: करणीदान कविया, रा० प्रा० पृ०, जोधपुर, भाग २, पृ० २६-२७
(३) जोधपुर राज्य का इतिहास: ओझा, जिल्द २, पृ० ५१८
(४) राजपूताने का इतिहास: जगदीशसिंह गहलोत, पृ० १२०
(५) कोटा राज्य का इतिहास: डा० मथुरालाल शर्मा, भाग २, पृ० २४०

बहादुरशाह ने पांच वर्ष तक राज्य किया। उसके बाद जहांदारशाह गद्दी पर बैठा, परन्तु फर्रुखसियर ने उसे मरवा डाला और सं० १७६८ में स्वयं बादशाह बन गया। इस समय दिल्ली दरबार में सैयद बन्धुओं का बड़ा दबदबा था। सारी राजनैतिक शक्ति उनमें केन्द्रित थी। जयपुर का राजा सवाई जयसिंह जहां फर्रुखसियर के पक्ष में था वहां जोधपुर का राजा अजीतसिंह सैयद बन्धुओं का विश्वासपात्र था। संवत् १७७६ में सैयद बन्धुओं ने फर्रुखसियर को भी मरवा डाला।[1] उसके बाद थोड़ी सी अवधि में दिल्ली के सिंहासन पर तीन-चार बादशाह बदले, परन्तु केन्द्रीय शक्ति अब बहुत क्षीण हो चुकी थी, जिससे मरहठों ने अपनी ताकत बहुत बढ़ाली। उधर भरतपुर के जाटों ने भी अपना स्वतन्त्र अस्तित्व कायम किया। जयपुर और जोधपुर के शासकों के बीच राजनैतिक वातावरण दूषित होने के कारण तथा दिल्ली दरबार की निम्न-कोटि की राजनीति के फलस्वरूप अजीतसिंह की सं० १७८१ में हत्या करवा दी गई।[2] उसका पुत्र अभयसिंह गद्दी पर बैठा और बख्तसिंह को स्वतन्त्र रूप से नागौर का राज्य दिया गया। अभयसिंह भी बड़ा ताकतवर राजा था। उसने सं० १७८७ में गुजरात की सूबेदारी हासिल की और तत्कालीन सूबेदार सर बुलन्दखाँ को हराया। उस समय उसके पास पचास हजार राजपूत सेना थी। इस युद्ध का विस्तृत विवरण कविया करणीदांन ने अपने ग्रंथ "सूरज प्रकास" में किया है।[3]

इस समय में राजस्थान के शासकों की आपसी फूट से लाभ उठाकर मरहठों ने राजस्थान की राजनीति में प्रवेश किया और लूट-खसोट प्रारम्भ की। ऐसी स्थिति में मेवाड़ की सीमा पर हुरड़ा नामक स्थान पर राजस्थान के सभी शासकों ने नई आपत्ति का सामना, आपसी वैमनस्य को भुलाकर करने का संकल्प किया।[4] उनका यह निश्चय आपसी फूट के कारण ही सफल नहीं हुआ और मरहठों का प्रभाव बढ़ता रहा। इधर राजस्थान शक्ति हीन हो रहा था, ऐसे अवसर पर नादिरशाह ने दिल्ली पर सं० १७९६ में हमला कर केन्द्र की बची-खुची शक्ति को भी समाप्त कर दिया।[5] अब बादशाह केवल नाम मात्र का सम्राट रह गया था।

---

(१) जोधपुर राज्य का इतिहास : ओझा, जिल्द २, पृ० ५८०
(२) वही, पृ० ६००
(३) द्रष्टव्य-सूरज प्रकाश : रा० प्रा० प्र०, जोधपुर।
(४) राजपूताने का इतिहास : ओझा, जिल्द २, पृ० ६२४
(५) Annals and antiquilies of Rajasthan by Tod, P : 1053 (1920 A. D.)

संवत् १८०० मे महाराजा सवाई जयसिंह की मृत्यु के पश्चात ईश्वरीसिंह गद्दी पर वैठा ।[1] ईश्वरीसिंह ने उदयपुर, बूंदी, कोटा और मरहठों से निरन्तर संघर्ष किया, क्योंकि उसका भाई माघोसिंह उसे अपदस्थ करना चाहता था। उधर मारवाड़ में अभयसिंह की मृत्यु के पश्चात् उसके लड़के रामसिंह और भाई वख्तसिंह में जोधपुर की गद्दी के लिए झगड़ा हो गया, जिसमें जयपुर, किशनगढ़, वीकानेर आदि के शासकों और मरहठों की शक्ति ने भी भाग लिया। दिल्ली दरवार का राजनैतिक प्रभाव अब राजस्थान में समाप्त हो चुका था, परन्तु मरहठों की सैनिक शक्ति के आधार पर वहुत से राजनैतिक निर्णय होने लगे। अभयसिंह और वरवतसिंह के बाद सं० १८०६ में विजयसिंह जोधपुर की गद्दी पर वैठा ।[2] पोकरण के ठाकुर देवीसिंह के साथ उसकी अनवन वहुत लम्वे समय तक चली। इस समय में मरहठों का प्रसिद्ध जनरल डिवोइन मारवाड़ की ओर आया, जिसके साथ मेड़ता नामक स्थान पर महेशदास कूंपावत ने बहुत भयंकर युद्ध किया ।[3]

विजयसिंह (जोधपुर) के वाद भीमसिंह राजगद्दी पर वैठा। उसने अपने नजदीक के कई कुटुम्वियों को मरवा डाला था। कुछ जागीरदारों की सहायता से मानसिंह वच निकला और जालौर के दुर्ग में शरण ली। सं० १८६० में भीमसिंह की मृत्यु के पश्चात् मानसिंह जोधपुर का उत्तराधिकारी हुआ ।[4] देवीसिंह के वाद पोकरण ठाकुर सवाईसिंह मानसिंह का वरावर विरोध करता रहा और धोंकलसिंह को भीमसिंह का पुत्र वताकर मानसिंह को अपदस्थ करने के लिए उसने अनेक योजनाएं वनाईं। अन्त में मीरखां की सहायता से मानसिंह ने सवाईसिंह को छल से मरवा डाला।

मरहठों की निरन्तर लूट-पाट और शासकों के आपसी वखेड़ों तथा राजगद्दी के झगड़ों के कारण स्थानीय राजा वड़े कमजोर हो गए थे। इसी समय में अंग्रेजों का प्रभाव वढ़ने लगा। जनरल लेक ने सं० १८६२ में भरतपुर के राजा रणजीतसिंह को परास्त किया ।[5] राजस्थान के अन्य शासकों ने मरहठों से छुटकारा पाने के लिए, राज्य-व्यवस्था के जम जाने के लोभ में आकर अंग्रेजों की कम्पनी सरकार से संधियां करली।

---

(१) कछवाहों का संक्षिप्त इतिहास : वीरसिंह तंवर, पृ० ३०
(२) मारवाड का इतिहास : विश्वेश्वरनाथ रेऊ, प्रथम भाग, पृ० ३५७
(३) आसोप का इतिहास : रामकर्ण आसोपा, पृ० ११०-११९
(४) जोधपुर राज्य का इतिहास : ओझा, द्वितीय खण्ड पृ० ७७५
(५) गोरा हटजा : (परम्परा भाग २), पृ० १३९

इन दो सौ वर्षों का इतिहास दिल्ली की मुस्लिम सल्तनत के पतन और राजपूत रियासतों के पूर्णतः बलहीन होकर परतन्त्र हो जाने का इतिहास है। पुरानी रियासतें भी इस काल में खण्डित हुईं और उनमें से कुछ नईं रियासतें बन गईं। किशनगढ़, अलवर, झालावाड़ और टोंक के स्वतन्त्र राज्य इस काल के अंतिम चरण में बने हैं।

इस काल की राजनैतिक परिस्थितियों से यह स्पष्ट है कि ऐसे समय में यहाँ की राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक स्थिति बहुत बिगड़ चुकी थी। मरहठों की लूट के कारण तो राजस्थान को बहुत बड़ी क्षति उठानी पड़ी, जिसकी पूर्ति वह कभी नहीं कर सका। जयपुर का राजा मिर्जा जयसिंह, सवाई जयसिंह, जोधपुर का राजा जसवंतसिंह, अजीतसिंह, उदयपुर का राणा राजसिंह, कोटे का राव भीमसिंह आदि कुछ शक्तिशाली शासक इस समय में अवश्य हुए, जिन्होंने धर्म, संस्कृति, साहित्य आदि की रक्षा की ओर पूरा ध्यान दिया। जयपुर का राजा जयसिंह विद्वानों का बड़ा कद्रदान था। उसने भारतीय ज्योतिष पर ऐतिहासिक महत्व का कार्य करवाया। बीकानेर के महाराजा अनूपसिंह ने औरंगजेब के काल में अनेक बहुमूल्य संस्कृत व लोक-भाषाओं के हस्तलिखित ग्रंथों का संग्रह कर बीकानेर में सुरक्षित रखा। जोधपुर के महाराजा मानसिंह ने चारण-कवियों का बड़ा भारी सम्मान किया और स्वयं उच्च कोटि की साहित्य-रचना की तथा चित्रकला को भी प्रोत्साहन दिया।

इस काल के गीतों की विशेषताएं

(१) उत्तर मध्यकाल में गीत-रचना बहुत बड़े परिमाण में हुई है। इस काल की प्रसिद्ध ऐतिहासिक घटनाओं के अतिरिक्त कितनी ही छोटी-बड़ी घटनाओं से सम्बन्धित अनेक गीत आज भी उपलब्ध होते हैं। यद्यपि यह काल राजनैतिक दृष्टि से शांति का काल नहीं था, फिर भी इस काल के बहुसख्यक ग्रंथ राजघरानों, ठिकानों व मंदिरों आदि में सुरक्षित मिलते हैं। यही कारण है कि लिपिबद्ध रूप में बहुसंख्यक गीत इस काल के ही उपलब्ध होते है। मुंहणोत नैणसी तथा अन्य कई ख्यातों का भी इसी काल में निर्माण हुआ था। राजस्थान के प्रत्येक राजवंश की ख्यातों को भी इस काल में विस्तार मिला और उनकी अनेक प्रतिलिपियां हुई। इनमें ऐतिहासिक घटनाओं की पुष्टि के लिए विभिन्न कवियों के अनेक गीतों को भी उद्धृत किया गया है, जिससे उन गीतों के ऐतिहासिक महत्व को समझने में बड़ी सहायता मिलती है। कवियों का परिचय प्राप्त करने में भी वे सहायक है।

(२) वर्ण्य-विषय की दृष्टि से इस काल की भी अपनी देन है। परम्परा से चले आने वाले विषयों और ऐतिहासिक घटनाओं के अतिरिक्त प्रकृति के साधारण उपकरण, मानव-स्वभाव तथा नीति-सम्बन्धि-विषयों को भी गीतों में स्थान मिला

है। वाणी के संयम की महत्ता पर वांकीदास आशिया का कहा हुआ एक गीत उदाहरण के लिए प्रस्तुत है—

वस राखो जीभ कहै हम बांको,
कड़वा बोल्यां प्रभत किसी।
लोह तणी तरवार न लागो,
जीभ तणी तरवार जिसी॥
भारी अग्रै उग्रै रा भारत,
हेकण जीभ प्रताप हुवा।
मन मिलियोड़ा तिकां माढ़वां,
जीभ करै खिण मांह जुवा॥
मैला मिनख वचन रै माथै,
वात वणाय करै विस्तार॥
वैठ सभा विच मूंडा वारै,
वचन काढ़णो घहुत विचार॥
मन में फेर घणी री माला,
पकड़ै नंह जमदूत पलो।
मिलै नहीं वकणा सूं माया,
भाया कम वोलणो भलो॥[१]

(३) मुगल वादशाहों की विलासिता और कामुकता का प्रभाव यहां के शासकों और सामन्तों पर भी पड़े विना नहीं रहा। पहले गीत-रचना का उद्देश्य जहां योद्धाओं को विरुदाना, उनकी चारित्रिक विशेषताओं का वखान करना और वीरगाथाओं को अमर करना था, वहां अव विलासिता-प्रिय शासकों की प्रेम-क्रीड़ाओं, शृंगार-भावनाओं, आखेट आदि विपयों को लेकर आश्रय-दाताओं को प्रसन्न करने की दृष्टि से भी गीत-रचना होने लगी। नारी जहां पहले के गीतों में वीर की प्रेरणा का प्रमुख श्रोत रही, वहां इस काल में किसी हद तक विलासिता का साधन भी वन गई। यद्यपि यह सत्य है कि वांकीदास जैसे कवियों ने नारी के नैसर्गिक सौन्दर्य को गीतों का विषय वनाया है,[२] परन्तु ऐसी रचनाएं इनी-गिनी ही हैं। इस काल में रचित शृंगारिक रचनाओं के उदाहरण आगे यथा-स्थान दिए जायेंगे।

---

(१) वांकीदास ग्रन्थावली, भाग ३, पृ० १०३
(२) वांकीदास ग्रन्थावली, भाग ३, झमाल सिख-नख, पृ० ३०

(४) औरंगजेब की धार्मिक असहिष्णुता के कारण हिन्दू-धर्म की रक्षार्थ पूरे देश की हिन्दू जनता प्रयत्नशील थी। बढ़ते हुए इस्लाम के प्रभाव को रोकने का जिस किसी ने भी जी-जान से प्रयत्न किया उसकी प्रशंसा राजस्थान के कवियों ने मुक्त कण्ठ से की है। यहाँ तक कि दक्षिण में बादशाह के विरुद्ध विद्रोह करने वाले छत्रपति शिवाजी की भी प्रशंसा गीत में सहज ही मुखरित हुई है। एक गीत यहां उद्धृत किया जा रहा है, जिसमें शिवाजी द्वारा मुगलों का सफाया करने के प्रयत्नों का रूपक धोबी की क्रियाओं के साथ बांधा गया है। गीत इस प्रकार है—

सूरातन सुजल़ सार करि साबू,
धोवण लागो सिवो सधीर।
पिंड भुंय सिला ऊपरे पटके,
मरे डरे घट काटे मीर॥

खूम इसी चाढ़ी खुमाणे,
धोया इसे अनोखे धोत।
दसता पड़े वीछड़े डाडर,
पिंड कापड़ आवे अणपोत॥

खग मोगरां भणी खल़ खोटे,
साह सुतन औरंग ची सेन।
इखड़े चोप आंणियो अणभंग,
मारे कितां दिखाये मेन।

माग जिके कूंड मझि मिल़या,
रहै जियां जुग चाढ़े रूप।
साह सुतन सेवो वड सांवत,
भंजे खग मुंह धोया नूप॥

धोवट घाट अनोखा धोया,
सारां मुंह ऊजल़ा सरीर।
सिवला तणी वीछलण सांप्रत,
चोल़ तणे रंगिया अगचीर॥[1]

इस प्रकार की गीत-रचनाएं उन कवियों के देश-व्यापी दृष्टिकोण की परिचायक है।

---

(१) वरदा : सौभाग्यसिंह शेखावत, वर्ष ४, अंक २, पृ० २८

(५) १९वीं शताब्दी में राजस्थान की कमजोर स्थिति से लाभ उठाकर जब अंग्रेजों ने अपना प्रभुत्व यहां कायम करना चाहा तो बांकीदास जैसे दूरदर्शी कवि ने इस नई आपत्ति के दूरगामी प्रभाव का अनुमान लगाकर यहां के शासकों को सचेत करना चाहा था। उन्होंने अपनी चेतावनी गीत के माध्यम से दी थी, जिसकी ललकार और ओजस्विता अनुपम है—

आयो इंगरेज मुलक रै ऊपर,
आहंस लीधा खैंचि उरा।
धणियां मरे न दीधी धरती,
धणियां ऊभां गई धरा॥

\+ \+ \+

महि जातां चींचातां महिला,
अै दुय मरण तणा अवसांण।
राखो रे किहिक रजपूती,
मरद हिन्दू को मुसलमांन॥[1]

उन्होंने राजस्थान के इतिहास में पहली बार हिन्दू और मुसलमान का भेद भुलाकर समुद्र पार के आक्रान्ता से लोहा लेने का उद्घोष अपनी वाणी में किया था, जो गीत की अन्तिम पंक्तियों में सुस्पष्ट है। महाराजा मानसिंह जैसे शासक ने कवि की वाणी को किसी हद तक आदृत कर साकारता भी प्रदान की है। उन्होंने मरहठों के पुराने वैर-भाव और अत्याचारों को भुलाकर अप्पाजी भोंसले को शरण दी थी, जिसकी प्रशंसा भी उनके सामयिक कवियों ने अपने गीतों में की है।[2]

(६) गृह-कलह इन वर्षों में राजस्थान के लिए बहुत बड़ा अभिशाप था, इसका संकेत पहले किया जा चुका है। जोधपुर के राजा और पोकरण के ठाकुरों के बीच बहुत लम्बे समय तक विरोध रहा, जिसके कारण सारे मारवाड़ का वातावरण सशंकित रहा। पोकरण के ठाकुर सवाईसिंह को अन्त में जब महाराजा मानसिंह ने मीरखां द्वारा धोखे से मरवाया, तब कहीं मानसिंह की जान में जान आई। परन्तु सवाईसिंह जैसे वीर योद्धा की इस प्रकार से हत्या करवाना सच्चे कवियों ने कृतघ्नता पूर्ण माना। इसलिए उनके आश्रित कवि नवलदांन लालस ने मानसिंह के इस कृत्य की भर्त्सना करने में कोई संकोच न रखा। गीत इस प्रकार है :–

---

(१) गोरा हटजा (परम्परा भाग २), पृ० ५४
(२) वही, पृ० ७५

महा अडाला दातार भूप भेजणा था दिली माथे,
रूकां बाढ़ झेलणा रजाला भाराथ ।
खांगी पाग वाला किलां भेड़णा था अड़ीखंभ,
नाग काला छेड़णा था नथी प्रथीनाथ ।।
मरायो आथ रे मंत्री चालीयो न खत्री मागां,
दाथ रे दिरायो खागां पालीयो नी धान ।
रिड़मालां तणा पट्टां जो हरायो वडा राज,
मारवाड़ सारी घू गिरायो आसमान ।।
कुसल रांम रो राज बोडियो थो लगा कैवे,
मारू देवे भुजां पछो ओढ़ियो थे मेर ।
घराज नू झाल मारवाड़ रो कियो थो धणी,
नागाणा सूं काम ले दियो थो जोधनेर ।।
घणा माणां फूलां बीचे पोढ़ीनाथ लेगो घरे,
ओढ़ी वात करे चावो ऊभो दइवांण ।
गालिया ओरां था मांण आपने बैठाया गादी,
जोधाहरा भलो पखो पालियो राजाण ।।
उमेला ओनाड़ भेला हुया देइसुत दोनुं,
सचेला सवाई माधोसींग ग्रहां सार ।
राखजे ओट घण करे खुसी भीम राजा,
हुसी नवांकोटां कोई नवी होणहार ।।[1]

ऐसे कुछ कवियों की सत्यता-पूर्ण एवं निर्भीक वाणी हमें राठौड़ पृथ्वीराज, ईसरदास, जसा बारहठ, आसा बारहठ आदि प्राचीन कवियों की काव्य साधना का स्मरण अवश्य दिला देती है, परन्तु इस काल के अन्तिम चरण की ह्रासोन्मुख प्रवृत्तियों का परिचय भी कुछ कवियों की अर्थ-लोलुपता एवं नितांत संयमहीन वाणी में मिल जाता है। यहां एक गीत उधृत हैं—

मुंहुं आधो करे महल जिग मंडीयो,
दत ओछंडीयो होय दढ़ ।

---

(१) सीताराम लालस, जोधपुर का संग्रह ।

भुपरो भांत भांत कर मंडीयो,
गंडीयो राव हमीर गढ़ ।।

वसुधा सिर अपकीत वधारी,
खोई सारी रीत खर ।

अक अक हुवो मूंड दिलवारा,
पिछम दवारी वेलपुर ।।

जग चख रसम प्रकासै जेते,
अपजस भासे लोक अह ।

परठे जिगन चरम डंड प्यासे,
सादुलै ग्यासे सुपह ।।

माहां म्हे जांन हुई अप्रमांणो,
खांचां ताणों खसोखस ।

रस जस मांही न जांणी रांणों,
रांणो जांणे पूंदरस ।।[1]

(७) इस काल में गीत ने साहित्य-समालोचना अथवा कृतित्व की प्रशंसा को पहली बार अपना वर्ण्य विषय बनाया है । महाराजा मानसिंह रचित नाथ-चरित्र पर चैनजी सांदू द्वारा गीत में प्रकट की गई सम्मति यहां दी जाती है, जो प्रशंसात्मक होते हुए भी बड़ी रोचक है :—

अई भूप कीधा ग्रंथ नाथ-चिरत्र मंजूसो उभे,
रीझा सुणे प्रयी तणा कवि राजा राव ।

सबदां अरथां बुधां मनां रा मोहिया सारा,
जांणजे सोहिया हीरां पनां रा जड़ाव ।।

दूजा जसा जिहांन में जणाया सुबुवां दौर,
छंदांरय नौखा भाव अणाया सुछंद ।

तरफां भगती ग्यांन उक्ती छणाया तंत,
वणाया सबदां छंदां जवाहरां व्रंद ।।

नोख-चीखां ऊबारणां भांमी श्री गुमा नंद,
जांमीनाथ गाय री कारणाभई जोत ।

(१) सीताराम लाळस का संग्रह (जोधपुर) ।

प्राचीन रूपगां सिरे नवीन वांणकां प्रभा,
ओपमा जें हीरां पनां मांणकां उदौत ।।
नाथ रे प्रताप एहां ग्रंथां रचै प्रथीनाथ,
उक्ती अरथां छंदां जोड़े नावै आंन ।
यंद महीलोक राजवंसां छत्र हिंदवांणे,
महाराजा जोधांणे चिरंजी तपौ मांन ।।[1]

(८) इस काल में गीत-विद्या की लोकप्रियता का एक बहुत बड़ा प्रमाण यह भी है कि कोश-निर्माण तक में उनका प्रयोग किया गया है। हमीरदांन रतनू ने डिंगल का पर्यायवाची कोश 'नाममाला' वेलियो गीत में लिखा है, जिसमें अनेक साहित्यिक शब्दों के पर्यायवाची शब्द अच्छी संख्या में संगृहीत हैं।[2]

(९) यह काल हिन्दी साहित्य में रीतिकाल के नाम से प्रसिद्ध है, क्योंकि इस समय प्रमुखतया लक्षण ग्रन्थों का निर्माण हुआ है। राजस्थानी में भी एक साथ इतने अधिक लक्षण ग्रन्थों का निर्माण होना दोनों साहित्यों की सम-सामयिक प्रवृत्तियों में कई भिन्न विशेषताओं के होते हुए भी एक विचारणीय साम्य रखता है।

(१०) पूर्व मध्यकाल यद्यपि डिंगल गीतों का स्वर्ण-काल कहा जा सकता है, पर इस काल में भी हुकमीचंद, सूर्यमल्ल तथा गिरवरदांन, करणीदांन जैसे प्रथम कोटि के कवि हुए हैं, गीत-विद्या को जिनकी देन निस्संदेह बहुमूल्य है। इन कवियों की विशेषताओं पर सातवें अध्याय में विस्तार के साथ प्रकाश डाला जाएगा।

(११) प्राचीन बातों के बीच-बीच में प्रायः दोहे, सोरठे, कवित्त आदि का प्रयोग देखने को मिलता है, परन्तु इस काल की अनेक बातों में स्थान-स्थान पर कथानक को रोचक और भावपूर्ण बनाने के लिए गीतों का भी उपयोग किया गया है। इस काल में रचित रतना हमीर री बात (महाराजा मानसिंह, जोधपुर), मोहकमसिंघ हरीसिंघोत री बात (महाराजा बहादुरसिंह, किशनगढ़), सजना सुजान री बात (संग्राम सिंह चूंड़ावत, उदयपुर) आदि इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं।

(१२) इस काल में तथा इसके पूर्व भी गीतों का निर्माण अत्यधिक हुआ है। अनेक कवियो की विलक्षण प्रतिभा तथा उच्च कोटि की काव्य-कला के दर्शन भी अनेक गीतों में होते हैं, जिससे इस काल के कुछ विद्वान कवियों को अपने

---

(१) रा० शो० सं०, जोधपुर का संग्रह।
(२) डिंगल कोश:रा० शो० सं०, जोधपुर, पृ० ३३

लक्षण ग्रन्थों में गीतों पर विस्तार के साथ विचार करने को प्रेरित किया है। इन ग्रंथों में गीतों के लक्षण तथा भेदोपभेदों के अतिरिक्त वैण सगाई, जथा, उक्त, दोष आदि पर भी विद्वता पूर्ण ढंग से प्रकाश डाला गया है। गीतों की रूपगत विशेषता और रचना-प्रणाली का अध्ययन उनके रचयिताओं ने सुलभ कर दिया है। इस काल के प्रसिद्ध लक्षण-ग्रंथ निम्न प्रकार हैं, जिन पर विस्तार के साथ विचार अन्यत्र किया जाएगा।

इस काल में निर्मित महत्वपूर्ण लक्षण-ग्रन्थ निम्न प्रकार हैं:—

(१)	हरि पिंगल[1]	जोगीदास चारण	सं० १७२१	२२ प्रकार के डिंगल गीत
(२)	गुण पिंगल प्रकास[2]	हमीरदान रतनू	सं० १७६८	वेलियो गीत के ३० भेद
(३)	लखपत पिंगल[3]	वही	सं० १७९६	२४ प्रकार के डिंगल गीत
(४)	कविकुल बोध[4]	उदयराम गूंगा		८४ प्रकार के डिंगल गीत
(५)	रघुनाथ रूपक[5]	मंछाराम सेवग	सं० १८६३	७२ प्रकार के डिंगल गीत
(६)	रघुवर जस प्रकास[6]	किसना आढ़ा	सं० १८७९	९१ प्रकार के डिंगल गीत

(१३) इस काल तक आते–आते गीतों की भाषा पहले की अपेक्षा कुछ सरल हो गई है। अरबी तथा फारसी शब्दों का प्रयोग भी बराबर होता रहा है। अंग्रेजों के सम्पर्क में आने तथा उनके साथ संघर्ष होने की अभिव्यक्ति जहां गीतों में हुई है, वहां अंग्रेजी भाषा के कुछ शब्द भी हेर-फेर के साथ कवियों ने प्रयोग में लिए हैं। इस समय के गीतों में जथाओं व उकतों आदि के प्रयोग भी पहले से कहीं अधिक हुए हैं। अनेक कवियों ने अपने गीतों में चमत्कार लाने के लिए रूपक व प्रतिकात्मक शैली को प्राथमिकता दी है। अनेक प्रकार के रूपकों से इस समय के गीत अलंकृत हैं। गीतों के कला पक्ष की ओर कवियों का विशेष झुकाव इस प्रकार की प्रवृत्ति से प्रकट होता है। यहां रूपक का एक उदाहरण प्रस्तुत किया जा रहा है जिसमें युद्ध का रूपक बगीचे की महफ़िल से बांधा गया है:—

---

(१) राजस्थानी भाषा और साहित्य:डा० मोतीलाल मेनारिया, पृ० २१४

(२) पिंगल सिरोमणी (परम्परा भाग १३), पृ० १९०

(३) वही।

(४) रा० शो० सं०, जोधपुर का संग्रह।

(५) रघुनाथ रूपक गीतां रो:सं० महताबचंद खारेड़, प्र० संस्करण।

(६) रघुवर जस प्रकाश:रा० प्रा० प्र०, जोधपुर।

बडा राग रा हुवे सुर ग्रच्छर गूघर बजै,
ठणक रिख जंत्र सिव उगठ ठाणै ।
दलां उछरंग रे जगीचे बहादर,
जंग रे बगीचे रंग जांणों ।।

हाम मद छाक चित्र धाम जंगी हवद,
वीर नृत काम नटवर वणावै ।
जाम खगताल सुर ग्राम जोगण जमै,
पोह कंवर ताम ग्राराम पावै ।।

त्रबंक धुन मृदंग विकराल रज धोम तम,
ज्वाल धख मुसालां तोप ज्वाला ।
भांमणां कितां मन कितां ग्रणभांमणां,
ग्रसी ग्रप्रियामणां कमंध वाला ।।

ग्रंत तर भायलां लता तंत ग्रलूझे,
फब रूधर हौद चादर फुहारां ।
झीत वाणी सझे रातलां कोकिलां,
बधे ग्राणद दिलां तेण बारां ।।

पेखती सिव नोख रिम सीस चाढ़ो पोहोप,
ग्रोख खित्रवाट कुलवट ग्रराधो ।
सोख माणे जसी रमै रामत ससत्र,
जोख माणे ग्रसी रायजादो ।।

सार भरमार गुलजार पल गूद सत्र,
ग्रलल गुंजार गोला ग्रली जे ।
साज घर जरद सामाज घर सांतरा,
राज घर नरेसुर सुतन रीझै ।।

प्रथी भुगते तरण फते लायक पणै,
हूंस नायक पणै सुनंद हसियो ।
मानहर धाड़ रे धाड़ जोबन मसत,
राड़ रे बगीचे तणा रसियो ।। १

(१) बहादुरसिंह किसनगढ़ रो गीतः बं. हिं. मं. कलकत्ता का संग्रह, कापी १४.

निष्कर्ष :—

उपरोक्त विशेषताओं को देखने से यह भलीभांति स्पष्ट हो जाता है कि यह काल न केवल परिमाण व वर्ण्य विषय की दृष्टि से ही महत्वपूर्ण है, अपितु मुगल सल्तनत के पतन और अंग्रेजों के प्रादुर्भाव से होने वाली कवि-समाज की प्रतिक्रियाएं भी इनमें व्यक्त हैं । धर्मरक्षा के देशव्यापी प्रयत्नों के प्रति भी गीतकार जागरूक रहे हैं। कुछ कवियों ने राजस्थान की गौरवपूर्ण सांस्कृतिक थाती को जीवित रखने की प्रेरणा भी अपने गीतों के द्वारा दी है । गीतों सम्बन्धी लक्षण ग्रंथों का निर्माण भी इस काल की बहुत बडी देन है । हुकमीचंद और सूर्यमल्ल जैसे श्रेष्ठ गीत रचयिताओं को जन्म देने का श्रेय भी इसी काल को हैं ।

अतः इस काल में राजनैतिक एवं सामाजिक परिस्थितियों के अनुकूल ह्रासोन्मुख प्रवृतियों के बीज अंकुरित हो जाने पर भी डिंगल साहित्य को गीतों की असाधारण देन रही है ।

ह्रास काल

(सं० १९०० से २०१९)

ऐतिहासिक पृष्ठ-भूमि—

जब अंग्रेजों ने स्थानीय रियासतों के साथ संधियां करली तो उनका ध्यान यहां कांनूनी व्यवस्था के माध्यम से शान्ति स्थापित करने की ओर गया । उन्होंने अपनी सूझ-बूझ तथा सैनिक ताकत से यहां की रियासतों में होने वाले छोटे-बड़े झगड़ों का दमन किया । मरहठों और पिंडारियों की लूट-खसोट भी अब समाप्त हो गई । कुछ लोग ऐसे भी थे जिन्हें अंग्रेजों की नियत में संदेह था, अतः कई लोग बागी हो गए । शेखावाटी के बठोठ ठिकाने के ठाकुर डूंगरसिंह और उसका भतीजा जवाहरसिंह इस समय के प्रसिद्ध बागी हुए, जिन्होंने सं० १९०४ में नसीराबाद की छावनी को लूट लिया था ।[1] उनकी बहादुरी और अंग्रेजों की खिलाफत से यहां की जनता बड़ी प्रभावित थी । अन्त में जोधपुर के शासक तख्तसिंह और बीकानेर के तत्कालीन शासक रतनसिंह ने बीच-बचाव कर उन्हें अपनी सुरक्षा में रख लिया ।[2]

---

(१) सीकर का इतिहास : प० झाबरमल शर्मा, पृ० १२४-१२५

(२) ऊमर काव्य : सं० जगदीशसिंह गहलोत, पृ० ३०० (पाद टिप्पणी)

अंग्रेजों ने यहां कानूनी व्यवस्था जमाने तथा राजनैतिक सम्पर्क बनाये रखने के लिए जयपुर, जोधपुर और उदयपुर में रेज़ीडेन्ट नियुक्त किए। अनेक रियासतों के सामन्तों और शासकों के बीच जागीर सम्बन्धी अधिकारों को लेकर कई झगड़े और उलझनें चली आ रही थी। अंग्रेजों ने सुलझा कर एक निश्चित कानूनी परम्परा डाली। उनकी इस न्याय-परायणता की प्रशंसा कवियों ने भी की है।[1] उन्होंने अपने राज्य की नींव गहरी जमाने के लिए अंग्रेजी शिक्षा का प्रचार-प्रसार करना आवश्यक समझा, जिसके फलस्वरूप जयपुर, अलवर अजमेर आदि स्थानों पर स्कूल खोले गए। मरहठों की लूट-खसोट और आपसी झगड़ों से यहां के शासकों को वहुत लम्बे समय के बाद राहत मिली थी, इंसलिए वे अंग्रेजों के बड़े कृतज्ञ थे और उन्हें व्यवस्था करने में सहयोग देते रहे।

इसी समय (सं. १६१४) उत्तरी भारत में अंग्रेजों के विरुद्ध भारतीय सिपाहियों ने विद्रोह कर दिया।[2] अंग्रेजों के पैर उखाड़ने के लिए कुछ लोग क्रियाशील हुए। उन्होंने दिल्ली के नाम मात्र के बादशाह बहादुरशाह के नेतृत्व में दिल्ली, लखनऊ, बिहार, झांसी, आदि स्थानों पर अंग्रेजों से जबरदस्त मुकाबिला किया। इस संघर्ष में झांसी की रानी लक्ष्मीबाई, तांतिया टोपे आदि वीरों ने जिस बहादुरी से संघर्ष करते हुए प्राणोत्सर्ग किया, उसकी कथा सर्व-विदित है।[3]

राजस्थान का शासक-वर्ग यद्यपि अंग्रेजों के साथ था और उन्होंने अंग्रेजों को सैनिक सहायता भी दी तथापि यहां के कुछ लोगों ने अंग्रेजों से संघर्ष अवश्य किया। इस प्रकार के क्रान्तिकारी लोगों में आउवा के ठाकुर खुशालसिंह, गूलर का

---

(१) लेवै नह सूंक पखै नह लागै, धरम करम पर नजर धरै।
कम्पनी साह तणा कांमेती, कोड़ां न्याव हसांब करै।।
रांकां वेल् ताव दे राजा, चौड़े झगड़ावै वेग्रह चाल्।
सायब ज्यूं ही जगत में सायब, प्रथी तणां करबा प्रतपाल्।।
हिंदसथांन अन्यावां हाले, तुरकसथांन न्याव नहीं तार।
गाढ़ै चित करै हद गोरा, न्याव अन्याव ताण निरधार।।
दोनूं राह अनीतां डूबा, ग्रहिया नीत तरै फिरंगांण।
जण परताप करै साह जांरी, ऊगै भांण जठा लय आंण।। (वदनजी आसिया)

(२) कोटा राज्य का इतिहास : डा० मथुरालाल शर्मा, द्वितीय भाग, पृ० ६०१-६०२

(३) द्रष्टव्य-हमारा राजस्थान : पृथ्वीसिंह मेहता, पृ० २३१-२४२

ठाकुर प्रतापसिंह, तथा आसोप, आलनियावास, बाजावास, सिंणली, लांबिया आदि के ठाकुरों के नाम उल्लेखनीय हैं ।[1]

जब एहरनपुरा तथा डीसा की भारतीय सेनाएँ बागी होकर आउवा पहुंची तब तत्कालीन पोलिटिकल एजेन्ट हेनरी लारेंस ने जोधपुर के राजा से मदद मांगी, जिसके फलस्वरुप तख्तसिंह ने किलेदार अनाडसिंह, सिंघवी कुशलराज तथा मेहता विजयसिंह के नायकत्व में अपनी फौज आउवा के विरुद्ध भेजी । इस युद्ध में अोनाड़सिंह मारा गया और विजयसिंह तथा कुशलराज के भी पैर उखड़ गए । स्थिति खराब होते देख अजमेर का पोलिटिकल एजेन्ट कैप्टिन मैशन स्वयं आउवा पहुंचा, परन्तु वह भी मार डाला गया । यह युद्ध चल ही रहा था कि अंग्रेजों की बहुत बड़ी सेना गुजरात की ओर से आ पहुंची और अन्य स्थानों से भी अंग्रेजों को सहायता मिल गई, जिससे उन्होंने आउवा के किले को घेर लिया । दोनों दलों में तीन दिन तक भयंकर युद्ध हुआ । आउवा ठाकुर खुसालसिंह अपने सहयोगियों की सलाह से किला छोड़कर निकल गया फिर भी अंग्रेज जब किले पर काबू न पा सके तब कामदार तथा किलेदार को बड़ी जागीर का प्रलोभन देकर किले पर अधिकार कर लिया तथा शहर को लूटा ।[2]

आउवा ठाकुर वहां से निकल कर पहाड़ियों में भटकता हुआ कोठारिया (उदयपुर) के रावत जोधसिंह के पास गया । उसने अंग्रेजों की परवाह न कर उसकी पूरी सहायता की ।[3] यह क्रान्ति जैसे-तैसे दबा दी गई ।

इस क्रान्ति के पश्चात् राजस्थान के लोगों में अब विद्रोह की उग्रता की भावना भी समाप्त हो चुकी थी, अब अंग्रेजों ने निश्चित होकर राजस्थान में पाश्चात्य शिक्षा व सभ्यता का प्रचार-प्रसार करना आरम्भ किया । जयपुर में सं० १९३१ में एक स्कूल खोला गया । अजमेर में राजकुमारों की शिक्षा के लिए मेयो कालेज की नींव पड़ी ।[4] यहां के शासक अंग्रेजों के साथ पूरी तरह घुलमिल कर रहने लगे । वे उनसे 'कौनसलर टू दी एम्प्रेस' जैसे सम्मान प्राप्त कर गौरव का अनुभव करने लगे । । अंग्रेजों की सहायता से रियासतों में सड़कें, डाकखाने, रेलवे, सफाखाने आदि बनने लगे, जिससे अंग्रेजों का प्रशासन और भी दृढ़ हो गया । देशी नरेश निश्चित होकर शिकार, होली आदि मनोरंजन में व्यस्त रहा करते थे ।

---

(१) गोरा हटजा : (परम्परा भाग २), जोधपुर, पृ० १४२-१४३
(२) गोरा हटजा : (परम्परा भाग २), पृ० १४२-१४३
(३) उदयपुर राज्य का इतिहास : ओझा, भाग २, पृ० १०८६
(४) पूर्व-आधुनिक राजस्थान : डा० रघुवीरसिंह, पृ० २९२

स्थानीय शासकों की गिरती हुई अवस्था को महर्षि दयानन्द सरस्वती ने सुधारने का प्रयत्न अवश्य किया और उनका प्रभाव भी यहां के नरेशों पर पड़ा।[1] परन्तु ये अंग्रेजी सत्ता और अपने व्यसनों में इतने लीन हो चुके थे कि उससे ऊपर उठना उनके लिए बड़ा कठिन था। इतने में स्वामीजी का देहान्त हो गया। स्वामीजी ने यहां आर्यसमाज की नींव डाल कर समाज-सुधार का बहुत महत्व-पूर्ण कार्य किया था। अतः इनका आविर्भाव यहां के सामाजिक जीवन में एक ऐतिहासिक घटना थी।

संवत् १९६० में प्रिंस आफ वेल्स भारत आया जिसके सम्मान में दिल्ली में एक बहुत बड़ा दरबार आयोजित किया गया था।[2] भारत के सभी नरेश उसमें अनिवार्य रूप से सम्मिलित हुए थे। उदयपुर के महाराणा फतहसिंह को भी कायदे के अनुसार सम्मिलित होना था। अतः वे इसके लिए तैयार हो गए, परन्तु दिल्ली जाकर प्रिंस के सम्मानार्थ उदयपुर के राणा का उपस्थित होना उनकी परम्परा के प्रतिकूल था। इसलिए कोटा के बारहठ केशरीसिंह ने ठाकुर भूरसिंह शेखावत तथा जोबनेर ठाकुर कर्णसिंह जैसे स्वतंत्रता-प्रेमी लोगों से प्रेरणा प्राप्त कर कुछ व्यंग्य-भरे ओजपूर्ण सोरठे लिखकर महाराणा तक पहुंचाए,[3] जिन्हें पढ़ते ही उन्होंने अपना विचार बदल दिया। ये सोरठे राजस्थानी साहित्य में चेतावणी रा "चूंगट्या" नाम से प्रसिद्ध हैं।[4]

---

(१) हमारा राजस्थान : पृथ्वीसिंह मेहता, पृ० २७६–२७९

(२) पूर्व-आधुनिक राजस्थान : डा० रघुबीरसिंह, पृ० ३०७

(३) वही पृ०, ३०८

(४) 'घण घलिया घमसांण, [तोइ] राणा सदा रहिया निडर।

पेखंता फुरमाण, हलचल किम फतमल हुवै ॥
नरियंद सह नजरांण, झुक करसी सिरसी जिका।
पसरे लो किम पांण, पांण छतां थारो फता ॥
देखे अंजस दीह, मुळकेलो, मन ही मनां।
दम्भी गढ़ दिल्लीह, सीस नमंता सीसवद ॥
मान मोद सीसोद ! राजनीत बळ राखणो।
ईं गवरमिंट री गोद, फळ मीठा दीठा फता ?

संवत् १९७१ में योरोप में विश्वयुद्ध की आग धधक उठी। अंग्रेजों के अधीनस्थ होने के कारण राजस्थान के राजाओं ने भी अपनी सेनाएं उनकी सहायतार्थ भेजीं और राजाओं के रिश्तेदारों तथा कई बड़े अफसरों ने भी युद्ध में भाग लिया। युद्ध–काल में ही यहां के कुछ क्रान्तिकारी नेताओं ने अंग्रेजों का विरोध प्रारम्भ कर दिया था। उनमें खर्वा के राव गोपालसिंह, अजुर्नलाल सेठी, केशरीसिंह बारहठ (कोटा) और विजयसिंह पथिक आदि प्रमुख थे।[1] अजमेर में 'वीर भारत सभा' की स्थापना की गई। केशरीसिंह का पुत्र प्रतापसिंह क्रान्तिकारी दल का सदस्य होने के नाते अंग्रेजों द्वारा जेल में डाल दिया गया, वहीं उसकी मृत्यु हो गई।[2]

महात्मा गांधी के प्रभाव के कारण यहां कुछ अहिंसावादी नेता भी आगे आये तथा 'राजपूताना मध्य भारत सभा' की स्थापना हुई, जिसके प्रमुख जमनालाल बजाज तथा चांदकरण शारदा आदि थे।[3]

समूचे देश में आजादी की आवाज बुलन्द होते देख अंग्रेजों ने जनता को कुछ अधिकार देना आवश्यक समझा, जिसके फलस्वरूप लन्दन में गोलमेज कान्फ्रेन्स बुलाई गई। इस कान्फ्रेन्स में भारतीय शासकों की ओर से बीकानेर के महाराजा सर गंगासिंह ने प्रतिनिधित्व किया था।[4]

स्वतन्त्रता की बढ़ती हुई लहर ने राजस्थान को अब और भी अधिक प्रभावित किया तथा प्रजामण्डल, परिषद्, लोक परिषद्, आदि नामों से राजनैतिक जन-संगठन पनपे।[5]

संवत् १९९६ में द्वितीय महासमर छिड़ गया, जिसमें भी यहां के राजाओं ने अपनी सेनाएं भेजकर तथा स्वयं सेनाओं के निरीक्षणार्थ युद्धस्थल में उपस्थित होकर अंग्रेजों का पूरा साथ दिया।[6] इस समय सुभाषचन्द्र बोस के नेतृत्व में क्रान्तिकारी लोगों ने खूब जोर पकड़ा, जिससे प्रभावित होकर बर्मा में गई हुई

---

(१) हमारा राजस्थान : पृथ्वीसिंह मेहता, ३२०
(२) पूर्व-आधुनिक राजस्थान : डा० रघुवीर सिंह, पृ० ३२०
(३) हमारा राजस्थान : पृथ्वीसिंह मेहता, पृ० ३४२
(४) कोटा राज्य का इतिहास: डा० मथुरालाल शर्मा, द्वितीय भाग पृ० ७४८
(५) पूर्व–आधुनिक राजस्थान : डा० रघुवीर सिंह, पृ० ३३०, ३३३, ३३९
(६) कोटा राज्य का इतिहास : डा० मथुरालाल शर्मा, द्वितीय भाग, पृ० ७४७

भारतीय सेना ने विद्रोह भी किया। इधर महात्मा गांधी ने अहिंसा के पथ पर अग्रसर होते हुए 'अंग्रेजो भारत छोड़ो' का नारा लगाया।

अब कंजरवेटिव पार्टी के स्थान पर इंगलैण्ड की राज्यसत्ता लेबर पार्टी के हाथों में आ गई, जिसकी दृष्टि में हिन्दुस्तान की आजादी की मांग उचित थी। सभी प्रकार की परिस्थितियां भारत के अनुकूल हो जाने से तथा देशवासियों के प्रयत्नों के फलस्वरूप सं० २००४ में भारत को आजादी मिल गई। राज्यसत्ता का भार कांग्रेस ने सम्हाला। स्वतन्त्रता प्रदान करने के साथ ही अंग्रेजों ने जाते-जाते अपनी कूटनीति से भारत को दो भागों में विभाजित करवा दिया और इस देश की शताब्दियों पुरानी इकाई हिन्दुस्तान तथा पाकिस्तान के नाम से विभाजित हो गई।

आजादी मिलने पर राजस्थान की रियासतें अंग्रेजों के विधान के अनुसार स्वतन्त्र हो गई थीं, परन्तु जनतान्त्रिक प्रणाली के बढ़ते हुए प्रभाव को समझकर यहां के शासकों ने अपनी रियासतों का राजनैतिक अधिकार जनता को सौंपना ही उचित समझा। अतः सरदार बल्लभभाई पटेल के प्रयत्नों के फलस्वरूप यहां की सभी रियासतों का विलीनीकरण वृहत् राजस्थान में हो गया। इस प्रकार शताब्दियों पुरानी शासन-प्रणाली एक सर्वथा नवीन सांचे में ढल गई।

समूचे भारतवर्ष में लोकतान्त्रिक शासन-प्रणाली के अन्तर्गत नए संविधान के अनुसार अनेक परिवर्तन हुए। जागीरदारी उन्मूलन का कदम राजस्थान में दूसरा कदम था, जिससे यहां के सामाजिक ढांचे में बहुत बड़ा परिवर्तन आया। कुछ समय पश्चात् पंचायत राज्य की स्थापना हो जाने से सत्ता के विकेन्द्रीकरण की दिशा में भी बहुत बड़ा कार्य हुआ है।

पंडित जवाहरलाल नेहरू के नेतृत्व में स्वतन्त्र भारत अब आर्थिक, सामाजिक सांस्कृतिक तथा शैक्षणिक क्षेत्रों में विकासोन्मुख हो रहा था तथा निश्चित योजनाओं के अनुसार देश को उन्नत करने का प्रयत्न किया जा रहा था कि सं० २०१९ में चीन ने भारत की सीमा पर आक्रमण कर दिया। आजादी के बाद इस तरह का यह पहला संकट भारत पर आया था जिसने भारत की राजनैतिक तथा सैनिक शक्ति को बहुत बड़ी क्षति पहुंचाई। राजस्थान के बहुत से वीर सिपाही और अफसर इस युद्ध में देश की रक्षार्थ काम आए, उनमें मेजर शैतानसिंह की असाधारण वीरता और प्राणोत्सर्ग की घटना राजस्थान की प्राचीन वीर-परम्परा की शृंखला में एक नई कड़ी थी।

विज्ञान के बढ़ते हुए चरण और नवीन शिक्षादीक्षा, हमारे प्राचीन सांस्कृतिक मूल्यों में आमूलचूल परिवर्तन ले आए हैं। अंग्रेजों के राज्यकाल में यहां की

संस्कृति को वहुत क्षति उठानी पड़ी थी। राजस्थान शासक वर्ग से शासित था और शासक वर्ग अंग्रेजी सभ्यता से वहुत अधिक प्रभावित था, ऐसी स्थिति में यहां की अपनी परम्पराओं का विकास होना सम्भव नहीं था । स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् इस दिशा में जो भी प्रयत्न हुए हैं वे अनेक दृष्टियों से सराहनीय हैं, परन्तु विज्ञान की चकाचौंध और आर्थिक व राजनैतिक कारणों से उत्पन्न होने वाली नवीन परिस्थितियों में यहां के सांस्कृतिक मूल्यों को उचित स्थान व महत्व प्राप्त करने में वड़ी भारी कठिनाई का सामना करना पड़ रहा है ।

आधुनिक काल में गीतों की स्थिति:—

ऐतिहासिक पृष्ठ-भूमि से यह भली-भांति ज्ञात हो जाता है कि इस काल में वहुत से वड़े सामाजिक एवं राजनैतिक परिवर्तन हुए हैं। अंग्रेजों के शासन–काल को शान्तिपूर्ण कहा जा सकता है, परन्तु वह हमारी संस्कृति के ह्रास का काल था । पूरा समाज शासक वर्ग, सामन्त वर्ग तथा जनता इन तीन भागों में विभक्त होकर अंग्रेजों की कानूनी व्यवस्था में अपने-अपने रास्ते चलने लगा था । उनका आपसी सम्पर्क टूट जाने से केवल सामाजिक रूढ़ियां ही जीवित रह गईं, समाज की जीवनी शक्ति और चेतना का अनजाने ह्रास होता ही गया । ऐसी स्थिति में राजस्थानी साहित्य की ओजस्विनी वाणी धीरे-धीरे मन्द ही नहीं, वरन् समाप्त-प्राय हो गई। अतः गीत-रचना का भी ह्रास होना स्वाभाविक ही था। गीतों के ह्रास के मुख्य कारणों पर संक्षेप में यहां विचार किया जा रहा है:—

गीतों के ह्रास के मुख्य कारण:—

(१) इस काल में संवत् १९१४ की क्रान्ति के अतिरिक्त ऐसी कोई महत्वपूर्ण घटना यहां की रियासतों में नहीं घटी, जिससे यहां का कवि-समाज प्रेरित होकर वीरगीतों की रचना करता। जो भी स्फुट घटनाएं घटी उन पर गीत-रचना अवश्य की गई परन्तु वह अत्यल्प है।

(२) अंग्रेजी व्यवस्था और पाश्चात्य शिक्षा प्रणाली के कारण यहां के रजवाड़ों में वहुत वड़ा परिवर्तन हो गया था, यह पहले ही कहा जा चुका है । ऐसी स्थिति में कवि और उसके आश्रयदाता का सम्बन्ध-विच्छेद हो गया । वदली हुई परिस्थितियों में डिंगल भाषा की परम्परावद्ध रचनाओं को वहुत कम शासक पसन्द करते थे । यही हाल वड़े-वड़े जागीरदारों और अमीर-उमरावों का था। उन्हें न तो चारण कवियों की प्राचीन शिक्षाप्रद वातों में ही आनन्द आता और न ही उन कवियों को प्रोत्साहन देने की आवश्यकता ही वे समझते थे। केवल व्यावहारिकता तथा रूढ़िवादिता के नाते अच्छे कवि का आदर-सत्कार अवश्य हो जाता था और 'सीख'

भी दे दी जाती थी। गीतों के मर्म को पहिचान कर रचयिता को सच्चे दिल से प्रेम कर सकें—ऐसे पात्रों के अभाव में कवियों ने दुःख प्रकट किया है।[1]

(३) जिन चारणों को पीढ़ियों से बहुत बड़ा सम्मान और जागीरें मिली हुई थीं, वे भी अंग्रेजों की कानूनी व्यवस्था में जागीर को अपना कानूनी अधिकार समझकर साहित्यिक दायित्व के प्रति सर्वथा उदासीन हो गये। जो चारण कवि शताब्दियों से कर्त्तव्यच्युत होने वाले राजा को अपना धर्म समझकर कर्तव्य की याद दिलाते थे वे स्वयं अपने कर्तव्य से बहुत दूर चले गये। पुराने कवियों में जो साहस, सत्यता दृढ़ता आदि विशिष्ट गुण थे उनका अब लोप हो गया था। पुरानी परम्परा को छोड़ अब वे निरुद्देश्य हो गए।

शासक वर्ग और बड़े चारणों (कविराजा) का मेल-जोल अब भी रहता था। इन्हें पदवियां, सोना आदि देकर सम्मानित भी किया जाता था, परन्तु यह सम्पर्क साहित्य के आधार पर न होकर प्रायः राजकीय आधार पर ही होता था। पहले जहां इस प्रकार की पहुंच वाले समर्थ चारणों के यहां कवियों और विद्वानों की मंडली जुड़ी रहती थी वहां अब उनकी सिफारिश से लाभ उठाने वाले लोगों का जमघट रहने लगा। अतः इस प्रकार के वातावरण में उच्च कोटि का काव्य-सृजन असंभव सा था। राजाओं तक पहुंच रखने वाले कवि लोग प्रायः उनके विवाहोत्सव, त्यौहार, राजा की सवारी, सालगिरह आदि का वर्णन कर उन्हें प्रसन्न कर देते थे और इसी में काव्य-कला की इति समझते थे।

(४) देहातों में भी राजस्थानी काव्य-निर्माण का रास्ता अवरुद्ध हो गया था। कुछ जागीरदार तथा चारण लोग मनोरंजन के तौर पर प्राचीन कविता का पठन-पाठन अवश्य कर लिया करते थे, परन्तु नवीन काव्य-रचना का स्रोत प्रायः सूख-सा गया था। यदि देहातों में थोड़ा-बहुत काव्य-सृजन हुआ भी तो दोहा, सोरठा आदि सरल छंदों को ही लोगों ने अपनाया, गीत-रचना को कोई प्रोत्साहन नहीं मिला, क्योंकि इसकी रचना अपेक्षाकृत क्लिष्ट थी।

(५) चारण जाति में त्याग लेने की प्रथा प्राचीन काल से रही है। जागीरदारों व राजाओं की लड़कियों की शादियों के अवसर पर जो दान उन्हें दिया जाता था वह त्याग कहलाता था। त्याग की प्रथा ने आधुनिक समय में बड़ा कुत्सित रूप धारण कर लिया। त्याग से संतुष्ट न होने पर बहुत बड़ी संख्या में चारण लोग धरना देकर जागीरदारों को तंग किया करते थे, जिससे उनके प्रति जो वास्तविक

---

(१) व्रवता जस कारण गीतां रा, थिर जीतां रा बोल थया।
पाछे रहया बिन प्रीतां रा, गीतां रा रिझवार गया॥

सम्मान तथा आदर-भाव था वह भी नष्ट हो गया और वे लोग उनसे कतराने लगे। उनके इस स्वभाव के कारण उनका कृतित्व भी लोगों को प्रभावित न कर सका। बारहठ किशोरसिंह जैसे कुछ सुधारवादी चारणों ने इस प्रथा को समाप्त करने के लिये बहुत प्रयत्न किया था। [1]

(६) अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त करने वाले नवीन पीढी के चारण लोग प्रायः सरकारी नौकरी में अधिक रुचि रखते थे और काव्य-सृजन को सारहीन तथा रूढ़िवादिता समझकर उससे विमुख हो गए, जिससे उन्हें प्राचीन साहित्य का भी कोई ज्ञान नहीं रहा। अतः इस वर्ग द्वारा गीत रचना किए जाने का प्रश्न ही नहीं था।

(७) स्वतन्त्रता के पश्चात् राष्ट्रभाषा हिन्दी का प्रचार-प्रसार राजस्थान में खूब हुआ। यहां लोग हिन्दी तथा अंग्रेजी साहित्य के सम्पर्क में भी आए। अनेक लेखकों ने राष्ट्रभाषा में साहित्य-सृजन भी किया। स्वतन्त्रता के साथ सांस्कृतिक जागरण की भी नवीन लहर आई, जिसके फलस्वरूप मातृ-भाषाओं के महत्व की ओर लोगों का ध्यान गया और उन्होंने प्राचीन राजस्थानी काव्य के अध्ययन और नवीन काव्य-रचना के प्रयास किए। नए कवियों ने नवीन परिस्थितियों और समस्याओं से प्रभावित होकर काव्य-सृजन किया है। अतः उन्होंने अभिव्यक्ति के लिए नवीन छंदों और जनप्रचलित भाषा को ही अपनाना श्रेयस्कर समझा, जिससे गीत, कवित्त, नीसांणी, मोतीदाम जैसे प्राचीन छंदों का प्रचलन अब संभव नहीं रहा। काव्य-सृजन और उसके रूप के सम्बन्ध में बदलती हुई धारणाओं ने भी इन कवियों को प्राचीन काव्य-विधाओं की ओर उन्मुख नहीं होने दिया।

गीतों के ह्रास के कारणों के विवेचन के बाद विशेष घटनाओं से सम्बन्धित कुछ गीतों का उल्लेख यहाँ कर रहे हैं जो गीत-रचना की परम्परा के द्योतक मात्र हैं।

विशिष्ट घटनाओं पर गीत-रचना—

इस काल की कुछ विशिष्ट घटनाओं को लेकर कवियों ने अच्छी गीत-रचना की है। उनके सम्बन्ध में संक्षिप्त जानकारी यहां प्रस्तुत की जा रही है।

(१) सम्वत् १९१४ की क्रान्ति में आउवा ठाकुर ने महत्वपूर्ण भाग लिया था। उनकी वीरता और स्वातन्त्र्य भावना से प्रभावित होकर सूर्यमल्ल मिश्रण जैसे कवि ने भी गीत-रचना की है। गीत इस प्रकार है:—

लोहां करंतो झाटका फणां कंवारी घड़ा री लाडी,
आडो जोधांण सूं खेंचियो वहे अंट।
जंगी साल हिंदवांण री आवगो जोंने,

---

(१) द्रष्टव्य-चारण पत्रिका : सं० किशोरसिंह बारहठ।

आउवो खायगो फिरंगांण रो अजंट ।।
रीठ तोपां बंदूकां जुञ्चवां नालां पैड रोपे,
बकै चंडी जय-जय रुद्र-पिया रा बखांण ।
मारवा काज सो वज्र हिया रा भूरियां माथै,
खुसलेस आयौ हाथां लियां रे केवांण ।।
गजां तूटै भ्रसुंडां गैढ़ाल फूटै सोर गंजां,
जुटे भडां हजारां तड़च्छां खावे जोह ।
भूरो वाघ चंपोराव भूरियां ऊपरा भुट्टे,
छूटै प्रांण कायरां न मावै हिये छोह ।।
भागे भींच गोरा सिंधां परां रा जिहांन भाळो,
दावों तेगां भाट दे उतालौ दसूं देस ।
तींसं नींद न आवे, कंपनी लगाड़े ताल.ा,
कालौ हिये न मावे अगंजी खुसलेस ।।[१]

(२) शेखावाटी से प्रसिद्ध वीर डूंगजी जवारजी ने अंग्रेजों का खूब मुकाबिला किया था तथा उनकी छावनियां भी लूटी थीं। उनकी प्रशंसा अनेक कवियों ने गीतों और दोहों में बड़ी सजीव शैली में की है। उदाहरणार्थ, कविराजा चंडीदांन का एक गीत प्रस्तुत है :-

खावै आतंक आगरो खांपां न भावै भमांवै खलां,
धावै थावै अजाण लगावैं चोड़ै धेस ।
ऊगां भांण नागवंसां माथै खगांराज आवै,
दाव लागो पजावे फरंगी वाला देस ।।
कंपू मार तेगां तीजी तालो सो कुरंगी कीधी,
जका बाघ नूं रंगी प्रजाली भुजां जोम ।
मांनूं जांणै तारखी विहंगी काली घड़ा माथ,
भूप डूंगौ वंधू फिरंगी वालां भोम ।।
पड़ै धोखा दल्ली वंसां कुरंमां चाढ़वा पांणी,
आप मतै सेस धू गाडवा जाम आठ ।
काकोंदरां माथे खगांधींस जूं काढ़वा केवा,
लागौ केड़े बाढ़वा हजारां जंगी लाठ ।।

---

(१) गोरा हटजा (परम्परा भाग २), पृ० ७१

तूटो व्योम वाट नरांतालका विछूटो तारो,
केतां छूटे प्रांण ग्रालवका ताके कोप कूप ।
कहूं रुद्र मालवका विहूंगां नाय झूठो कना,
रुठा गोरां माथे प्रलै कालवका सारुप ।।
भल्लो भाई सेखा राले विखेरे सारकी मीच,
सारां सटे मार छावणी सौज सौज ।
भल्ले थाट हजोला तारखी काली नाग माथे,
फेरे दोली मारकी भूरियां वाली फौज ।।
लोही खाल पूर पट्टां हजारां वैण ने लागा,
थट्टे रंभा गेण ने हजारां लागा थाट ।
रुकां झाट हजारां वैणने लागा काल रूपी,
लागा टूक व्हेणने हजारां जंगी लाट ।।
रेण डंडा-ग्रडंडां गवाने मीच वागराका,
खागराका भूर डंडां ग्ररिन्दां खाणास ।
पड़े धाका खंड खंडा फैण नागराका पीधाँ
वाही ग्रागरा का झंडा ऊपरे बाणास ।।[1]

(३) मारवाड़ के मुसाहिव ग्राला सर प्रताप ने नांणा ठिकाने के कुछ गांव वेड़ा ठिकाने में मिला दिये थे। उसका विरोध जब नांणा ठाकुर ने किया तो सर प्रताप ने राज्य की फौज भिजवा दी। ठाकुर ग्रौर कुंवर ने तो घबराकर किला छोड़ दिया परन्तु कुंवरानी ग्रगरकुंवरी ने फौज का मुकाबिला किया ग्रौर राज्य की फौज को वहां से हटना पड़ा। कुंवरानी की वीरता का तत्कालीन कवि लक्ष्मीदांन ने गीत में सुन्दर वर्णन किया है :-

हुवो कूच चिमनेस यूं ग्रदब राखै हुकम,
भड़ां काचां कितां प्रांण भागा ।
देख फौजां डंमर दुरंग छोड़े दिये,
जोधहर न छांडी दुरंग जागां ।
फौज निज ग्राव घर राड़ लेवण फबी,
छकाया गोळियां घाल छेटी ।
मात राखो फतै लड़ी चढ़ मोरचां,
बाप घर देखियो समर बेटी ।।
करण ग्रखियात कुळ चाल भूलै किसूं,

(१) प्राचीन राजस्थानी गीत, भाग १, पृ० २०८–२१०

येट सूं चौगाण विरद यावै ।
उभै पख ऊजली रांण घर उजालग,
जकी गढ़ छोड किण रीत जावै ।।
अघट दल देख भेचक भगा आदमी,
सुमर पिव भगा गा सुभट सगरी ।
जुध समै कायरां प्राण मुड़िया जठै,
उठै पग रोपिया कमध अगरी ।।

तोल तरवारियां कह्यो समरथ तणी,
घूं कलां करण जर सबर धारो ।
पालटै नोज भुरजाल ऊभां पगां,
मरुं पण न द्यूं भुरजाल म्हारो ।।
संक मन धरुं तो साख मिटे सूरमां,
खलां दल विभाडूं जोस खाथे ।
काट लागै मनै कोट खाली कियां,
मरे रण खेत रहूं कोट माथै ।।[1]

(४) चीनियों द्वारा भारतीय सीमा पर जब आक्रमण किया गया तो देश के विभिन्न भागों के सिपाहियों व अफसरों ने मातृभूमि की रक्षा के लिए लड़कर प्राणोत्सर्ग किया । राजस्थान के मेजर शैतानसिंह की वीरता और प्राणोत्सर्ग ने यहाँ के नवीन और प्राचीन कवियों को एक साथ प्रभावित किया था । जिसके फलस्वरूप गीत, दोहा, छप्पय आदि प्राचीन छंदों में भी काव्य-रचना हुई । उदाहरणार्थ, सांवलदांन आशिया का एक गीत प्रस्तुत है :—

हिंदुस्थांन माथै भारी सत्रू चीण रौ हमलौ होतां,
लेतां तेण वारा चाऊ चौकड़ी लद्दाक ।
तठे राजस्थांनी सेना अडंते सामूहे तोपां,
खपे वीर केतां गोलां सांमा थया खाक ।।
तेण वेलां भाटी मारु देस रौ ऊजालौ तानो,
सेना तणो मेजुरी ऊठियो सैतांन ।
लांघी वीर धायौ जांणै करेवा विधूंस लंका,
महाक्रोध धारे जूटो काल रे समांन ।।

---

(१) सीताराम लालस, जोधपुर संग्रह

लाखां चीणी हेमा तणी टूकड़ा करेवा लागो,
जांणै गदा भीम लागो डोहणे द्रजोध ।
लंकाधींस वाळा सीस जांणै रांम लेवा लागो,
ज्वाग दक्खी लागो जांणे खंडेवा भद्री जोध ।।
गंगाधार जांणे नास त्रिपुरा करेवा लागो,
हरी जरासंध लागो करेवा नास हूंत ।
लोकपाल जांणे सूर व्रत्रा खपावा लागो,
प्रांणां जैद्रथी लागो लेणै पंडू पूत।।
दीठो रीतां पुरांणी रातम्बेर काटतो दोयणां,
रोके वोम बाजी लागो देखवा आरांण ।
चंडी च्यार सठां प्यासी रगतां पीवणे चाली,
घणे गूद खावां झुंड चालिया ग्रीधांण।।
कोमनस्टी वाळा सीस लेणो हालिया कमाळी,
हाली वैठे विमाणां हंसां वरेवा हूर ।
वीर वंकौ जणायौ जेहांन ने विनासू वासी,
चौघे वीर चाळौ चौकी अंजसै चुसूर ।।
आगे हेमी गोरां जुध जरमनी जीत आयौ,
माल्हनाथ व्रटेन हूं पावियौ संमान ।
कली मेर जेसले न वेटे वाप होण दी काची,
खत्री वंसां ऊंचो सदा जादू खांन ।।
हजारां चीण सत्रां पौढ़ावै गालिया हेमाळै,
सैतांनी चीन माथे करेगौ सैतान ।
नरांलोक समान रौ देणहार दीठो नहीं,
सुरां लोक पूगो पावा दूदा सूं संमान ।।१

निष्कर्ष :-

१६वीं शताब्दी के पश्चात् तीव्रता के साथ बदलती हुई राजनैतिक तथा सामाजिक परिस्थितियों और विदेशी संस्कृति के प्रभाव के कारण न केवल गीत साहित्य अपितु समस्त राजस्थानी साहित्य का ह्रास होता चला गया, अतः गीतों का भी ह्रास होना स्वाभाविक ही था । कुछ घटनाओं को लेकर जो थोड़े से गीत रचे गए वे सूर्यमल्ल मिश्रण जैसे कवियों की रचनाओं को छोड़ साधारण कोटि के हैं ।

(१) संघ शक्ति मासिक,जयपुर, वर्ष ४,अंक २, पृ० ३६

चतुर्थ अध्याय

गीतों का वर्गीकरण

गीतों का वर्गीकरण | ४

डिंगल गीतों में वर्णित विषय तथा उनकी रूप-गत विशेषताओं के अध्ययन के लिए उनका वर्गीकरण दो प्रकार से किया जा सकता है:—

(क) वर्ण्य-विषय की दृष्टि से।

(ख) छंदशास्त्र की दृष्टि से ।

डिंगल गीतों में वर्णित प्रमुख विषयों पर पांचवें अध्याय में विस्तार के साथ विचार किया जायेगा । अतः संक्षेप में ही यहां प्रकाश डाला जा रहा है । वर्ण्य-विषय की दृष्टि से गीतों का वर्गीकरण युद्ध, कीर्ति, प्रकृति, स्थापत्य, मनोरंजन, शृंगार, अपयश, दानशीलता, भक्ति, करुणा तथा स्फुट आदि विषयों को लेकर ग्यारह भागों में किया जा सकता है ।

युद्ध-वर्णन सम्बन्धी गीतों में प्रायः कीर्ति का स्वर भी मिला रहता है । और कहीं कहीं युद्ध के क्रिया-कलापों को शृंगारिक उपमाओं तथा अनेक प्रकार के रूपकों के द्वारा भी व्यक्त किया गया है । इस प्रकार मुख्य विषय के साथ अन्य विषयों का भी आंशिक मिश्रण कई रचनाओं में देखने को मिलता है । अतः वर्ण्य-विषय की प्रमुखता के आधार पर ही किसी गीत को उपर्युक्त भागों में से किसी एक भाग में रखा जा सकता है ।

(१) युद्ध विषयक गीत—

युद्ध-वर्णन डिंगल गीतों का प्रमुख विषय रहा है । सैंकड़ों कवियों ने इस विषय पर गीत-रचना की है । शायद ही ऐसा कोई गीतकार हुआ होगा जिसके गीतों में युद्ध-वर्णन न मिले । युद्ध-विषयक गीतों का निर्माण करने वाले प्रसिद्ध कवियों में हरिसूर बारहठ, दुरसा आढ़ा, दूदा विसराल, पृथ्वीराज राठौड़, करणीदांन कविया, हुकमीचंद खिड़िया, चतरा मोतीसर, महादांन मेहडू, नवलदांन लालस, बांकीदास-आसिया, सूर्यमल्ल मिश्रण और गिरवरदांन कविया आदि उल्लेखनीय हैं । इन कवियों के गीतों में चित्रोपमता, नाद-सौन्दर्य अनुभूति की गहनता और ओजगुण की प्रधानता है । उदाहरणार्थ, महाकवि सूर्यमल्ल मिश्रण का एक गीत उद्धृत किया जा रहा है-

गीत आउवा ठाकुर खुशालसिंह रो—

लोहां करतां झाटका फणां कंवारी घड़ा री लाडो,
आडो जोवांण सूं खेंचियो वहै अंट ।

जंगी साल हिंदवांण रो आवगो जीने,
आउवो खायगो फिरंगोण रो अजंट ।।
रीठ तोपां वन्दूकां जुन्त्रवां नालां पेड़ रोपै.
वकै चंडी जय-जय रुद्र पिया रा वखांण ।
मारवा काज सो वज्र हियारा भूरियां माथे,
खुसलेस आयो हाथां लियां रे केवांण ।।
गजां तूटे भ्रुसंडां गैढाल फूटे सोर गंजां.
जूटै भड़ां हजारां तडच्छां खावे जोह ।
भूरो वाघ चंपो राव भूरियां ऊपरा भुट्टे,
छट्टे प्रांण कायरां न मावे हिये छोह ।।
भागे मींच गोरा सिघां परां रा जिहांन भाळी,
दावो तेगां भाट दे उताळों दसूं देस ।
तोंसूं नींद न आवे, कंपनी लगाड़े ताळा,
काळो हिये न मावै अगंजी खुसलेस ।। [1]

(२) कीर्ति विषयक गीत-

गीत वीरों, जूझारों, सत्पुरूपों और सतियों की कीर्ति को अमर करने वाले हैं । चारण कवियों ने अपने काव्य नायकों के सत्कार्यों और वलिदानों का वर्णन करते समय उन्हें कीर्ति का वरण करने वाले तथा चन्द्रलोक तक में यश फैलाने वाले पात्रों के रूप में चित्रित किया है । इस प्रकार के वर्णनों को प्राय: अतिशयोक्ति के सहारे चमत्कारिक रूप दे दिया गया है । उदाहरणार्थ, महाराणा जगतसिंह मेवाड़ का एक गीत प्रस्तुत है-

गहतां सत डोर जगा खत्रियां गुर, वळ मोजां वद अनल वळ ।
ऊड़े जग ऊपरे आहाड़ा, करती गुडी तणी कळ ।।
कव-कव मुख करंता, अलहूंता वद गयण अड़ी ।
मेर सिखर ऊपर मेवाड़ा चंग जुहीं गुण वांण चडी ।।
करण सुजाव वदी सौ करगां. कळ हूंता गम अगन किया ।
चाडी धू मंडळ चीत्तौड़ा, धूंदाहण जू ब्रहम-धिया ।।
वयण वाखाण राग पग वाजे, अकल भुयण घण सुणे अम
राणा आ घणा दिन रहसी, जग जग पंगी चंग जम ।। [2]

---

(१) गोरा हटजा (परम्परा), भाग २, पृ० ७१

(२) प्राचीन राजस्थानी गीत : सं० कविराय मोहनसिंह, भाग ३, पृ० ४८-४६

[३] प्रकृति विषयक गीतः—

प्रकृति आदिकाल से ही कवियों का प्रिय विषय रहा है। यहां के कवियों ने प्रकृति के स्थानीय सौन्दर्य को गीतों में सुन्दर अभिव्यक्ति दी है। राठौड़ पृथ्वीराज ने अपनी कृति 'क्रिसन रुकमणी री वेलि' में षट् ऋतुओं का अनूठा वर्णन किया है। शिवबक्स पाल्हावत ने अलवर की झमाल[1] में छहों ऋतुओं में अलवर की सुषमा, प्राकृतिक छटा और पशु-पक्षियों का बड़ा अच्छा चित्रण किया है। महादान मेहडू रचित महाराणा भीमसिंह की झमाल[2] में पीछोला झील, उदयपुर नगर आदि का वर्णन भी बड़ा विलक्षण है। इनके अतिरिक्त बारहमासों की झमाल[3] और अनेक स्फुट विषयक गीत भी मिलते हैं। उल्लिखित झमालों में प्रकृति की पृष्ठ-भूमि में मानव भावनाओं तथा उसके क्रिया-कलापों का वर्णन किया गया है। अतः अधिकांश प्रकृति वर्णन उद्दीपन रूप में ही हुआ है। उदाहरणार्थ, बारहठ लच्छीदान कृत वसंत वर्णन का एक गीत पढ़िये-

दिया कोयलां साद अंब थया मोरां लदन, सदन दंपत थया दुत सवाई।
ताम विरही जनां वदन आतप पड़ी, आगमण मदन रत वसंत आई ॥
पेल जन पोखता अगन झालां पड़े, छंछालां सीत मद सुगंध छूटे :
कंपे नवजोवना इसक चालां करे, फूलवालां विसक पार फूटे ॥
गड़ागड़ साज लहताजरंग गूलावां, रत अतर गुलावां सद्क रहणा।
गृहां छवघ रां छड़काव रंग गुलावां, गुलावां पोहप गरकाव गहणा ॥
कुमकुमां हौद भरिया सुजल कमोदन, फुहारां मोद अदभुत फावै।
इसो लख उदीपन सेणियां उचारे, तुरत अगनेणियां मिजाज लावै ॥
भणं नर ससीरत वसंत आई भलां, कुवी उमणे खिलां बाग गुलाब ॥
संजोगी भामणी सहत क्रीड़ा सजे, विजोगी कांमणी बिनां बिलाप ॥[4]

(४) स्थापत्य विषयक गीत-

स्थापत्य कला की दृष्टि से राजस्थान के प्राचीन दुर्ग, राजप्रासाद, देवालय, तालाब आदि प्रसिद्ध हैं। डिंगल साहित्य में उनका वर्णन प्रसंगानुसार तो मिलता ही है परन्तु कुछ गीत स्वतंत्र रूप से भी इन पर लिखे गए हैं। महाराणा राजसिंह द्वारा निर्मित राजसमुद्र झील [illegible] [illegible] जोधपुर द्वारा बनाया गया अखोलाव तालाब और महाराणा अमरसिंह के अमर महल पर रचे हुए, कुछ गीत उल्लेखनीय हैं। यहां महाराजा बहादुरसिंह द्वारा निर्मित किशनगढ़ के दुर्ग का एक गीत द्रष्टव्य है—

---

(१) रा० शो० सं०, जोधपुर का संग्रह।
(२) वही।
(३) सौभाग्यसिंह शेखावत का संग्रह।
(४) वही।

थंभे पाथोध परखां सीम नीम थंडे,
भुमंडे भुरज्जां जाल़ पब्बेमाल़ भाव ।
छत्रवाहां ताव तेज जलों जे देखता छंडे,
राहां विहूं वीच मंडे किलो मारू राव ।।
उतंगां सफीलां घेर आसेर पे अवाल़ सो,
उदे चन्द्रभाल सो कल़ा सुमेर अंग .
विखंमी सतारानाथ साल़ सो वाणयो वंको,
दल़ांनाथ दिली आडो ढाल सो दुदुग ।।
कांवी चोल़ भाल़ तोपां रंग दीपमाल़का सी,
ध्यालरा ले कराल काल़का सी श्रौण पीध ।
घनंजै ज्यूं सरज्जाल कुरज्जाल घड़े धूरे,
क्रोधंगी लाकाल़ भूरे भुरज्जाल कीध ।।
लोह लाठ जेतखंम गिरंदा गढ़ा चौ लाडौ,
दलां लाखा माण गाडो वोले धोले दीह ।
जाजुली वीराण मडो विसम्मो पडन्तां छाडो,
जाडो नवांकोटां कोट दसम्मो जवीह ।।
रुद्र भेस राजा वीर-वेछाड़ वहादरेस,
फेट हूं जिहाज फोजां नेजां गजां फाडूं ।
पालियौ नरिन्दां निजे सालियो सीमाड़ पहां,
पारंमियो किलो के जलालिया पहाड़ ।।
जंगी हावा होतां दगे अरावां हजारां जेण,
तेण हुं हजारां लगे हैजम्मां कुसम्म ।
नोखा तीरखारां हुं हजारां मार वंचे नथी,
कदम्मां हजारां हूंता हजारां कुसम्म ।।
कोस ऊभे घरे श्रोप अन्द्रां-धू आटोप कीधो,
जंत्रां चोप चढ़ी मढ़ी कोप जंग ।
साहंसीक वीर नरे कठां दीठ फेर सके,
नको वीर घेर सके छिवन्तो निहंग ।।
है थटां हमल्लां वाज वीर डाक हल्ला होत,
हत्थां तेग भाला व्हे दूसरां सल्लाहीक ।
नरां जोध पविसखा आवे जीवरखां नेड़ा,
नावे जीवरखा जीवरखां हूं नजीक ।।

अंको धाट धैराट सो देखतां सजारो बीधो,
रीधो दिलीनाथ दीधौ हिन्दुस्तान रंग ।
बीजे राजवंसी मंड बेहरीन कीधो बीजो,
देवअंसी कीधो भूप केहरी दुरंग ।।१

(५) मनोरंजन-विषयक गीत—

सिंह, चीता, व्याघ्र, सूअर और मृग आदि वन्य जीवों की शिकार का यहाँ के शासक-वर्ग को विशेष शौक रहा है। इसके अतिरिक्त आमोद-प्रमोद के लिए सिंह की सिंह से, सूअर की सूअर से, हाथी की हाथी से, भैंसे की भैंसे से, गैंडे की गैंडे से और सिंह की सूअर से भी लड़ाई करवाई जाती थी। राज्याश्रित कवियों ने इनका बड़ा ही रोचक वर्णन अपने गीतों में किया है। ऐसे गीत प्रायः १८वीं तथा १९वीं शताब्दी में अधिक रचे गये हैं। उदाहरणार्थ, सूर्यमल रचित महाराणा स्वरूपसिंह की सिंह-आखेट पर कहा हुआ गीत यहां दिया जा रहा है-

आयौ मालवी गिरंदाँ ढाल आखतो हजूर आगे,
इसा वोल ताता सुणे हाकिया उठौर ।
हल्ला में चलायौ साथ झल्लके वंदूकां हाथां,
किलक्के ऊठियो तठै ललक्के कंठीर ।।
होफारां हाकरां डढ्ढां लंकाळ चाटतो हाथां,
आयौ सूधो भडां थाटां वक्काले आटेत ।
घधक्के मामड़ां भूत हक्काले सामुहों धायो,
प्रथीनाथ तेण वेळा दक्काले पटेत ।।
उरां चाढ़ हेड़ताळी नागणी बताई उठै,
छटी वज्रागणी वाघ कपाळी चंदूक ।
काळी घटा जड़क्की बीजळा असमान केही,
बीजाई जवान वाळी कडंकी वंदूक ।।
मूंछारां फरक्के लाल चसम्मा झाटके मार्थो,
करे गाज रगतां गुलालां रंग कीध ।
घायलो सींधली धरा लोटेबो जवाळा घूमे,
प्याला जांण ऐराक जलाल जांण पीघ ।।
उजाड़ा गिरंदां घेरे सादाणी सरूप ऊभौ,
सोमाड़ां दहल्ले दक्खे अखाड़ां सुरिंद ।
बीकानेर मारवाड़ा ढूंढ़ाड़ा प्रवाड़ा वधै,

(१) राजस्थानी साहित्य का मध्यकाल (परम्परा), भाग १५-१६, पृ० ३३६

नाहरों पछाडां धाड़ा मेवाड़ा नरिन्द ।।
कैलास आसणां हल्ला नया साज-वाज करे,
हुवा राजी सिद्धां जला आखाडा हूंतेस ।
अगां छाला सुच्छा भेंट कीधी तें उपासी मेरां,
भल्ला आछा तेरा होगा यूं हयौ भूतेस ।।[1]

राजस्थान में तीज, गणगोर, दशहरा आदि त्यौहारों का विशेष महत्व रहा है। अत्यन्त उल्लास और सजधज के साथ ये त्यौहार मनाए जाते थे, जिनमें शासक-वर्ग पूरी दिलचस्पी के साथ भाग लेता था। इन त्यौहारों का वर्णन भी अत्यन्त सुन्दर ढंग से किया गया है। उदाहरणार्थ, श्रावणी तीज के उत्सव का एक गीत पठनीय है-

वहुत वधै मन मोज हींडा घले वाग में, गहर सुर राग में मल्लार गावै ।
सघन वन कुंज सरसात हरिया सरब, असी वरसाद छब नजर आवै ।
दमकती देख विडरावणी दामणी कांमणी कन्त ने वसी कीनो ।
प्रीत निज वधावणी अरज कर पियाले, दुवारो पियाने छलत दीनो ।।
भींजिया वसन सह देख मन भावणी, छावणी मोद हद दुति छाई ।
लियां गुण अलोकिक मनां ललचावणी, आज भल सांवणी तीज आई ।।
घूम घणघोर नभ मेंघ उमगी घड़ो, प्रेम रस भूम री छटा परगी ।
चूम मुख पीव रो नेह छाकी चतुर, लूम झूमां हुई कंठ लागी ।।[2]

(६) शृंगार विषयक गीत—

शृंगार राजस्थानी कवियों का प्रिय विषय रहा है। दोहों, सोरठों और छप्पयों में अनेकानेक नायिकाओं की प्रेम-भावनाओं का प्रभावोत्पादक वर्णन प्राचीन ग्रंथों में मिलता है। गीतकारों ने भी नारी-सौन्दर्य तथा उसके शृंगारिक उपकरणों के अतिरिक्त विरह तथा मिलन की घड़ियों का सुन्दर चित्रण किया है। वियोग तथा संयोग की दशाओं में अद्भूत भावनाओं का चित्रण प्रायः यहां की प्रकृति की रम्य पृष्ठभूमि में किया गया है। इस विषय के गीतों में सजना नायिका रा गीत,[1] रतना नायिका रा गीत[2] आदि उल्लेखनीय हैं। उदाहरणार्थ, उदयपुर के कविराव गुमान रचित एक गीत प्रस्तुत किया जा रहा है—

---

(१) सौभाग्यसिंह शेखावत का संग्रह।
(२) शोध-पत्रिका, उदयपुर, वर्ष १२, अंक ३, पृ०७६
(३) कविराज मोहनसिंह (उदयपुर) का संग्रह।

आतां रात रे सुपन्ने हुंजो हकीछी तीसरे आरे,
साज साजां जकी ऊभकी छी सुभाग ।
मोसमां जोवन्ना छका छकी छी मिजाज मेल,
मेभ धका धकी छी जोंसूं धकी छी आडे माग ।।
दासियां सखी छी जिका रखी छी औवलां दौलां,
उरोलां नखी छी सरां चौसरा उतंस ।
घूंवट ढकी छी टेढ़े सालुवे ढकी छी गात,
हाथां हाथ भालियां थकी छी राजहंस ।।
कांम री न जकी छी मीड मकी छी दहुंवां कांनी,
चखी छी नांचखी छी आसवी हकेल ।
बूझतां तकी छी नां तकी छी व्हे दूलरा बाजू,
वंकी छी कटाछ नैणां फंकी छिब केल ।।
घून दे रुकी छी लहंजे लुकी छी झुकी छी गातां,
उकाण आसकी छी थकी छी अराम ।
चखी छी उतां में नींद कणी सूं अवांणजरली,
वाला वा लखी चौ न लखी छी फेर वाम ।।[1]

(७) अपयश-विषयक गीत–

डिंगल कवियों ने जहाँ वीरता, कर्तव्यपरायणता, स्वामिभक्ति और दानशीलता आदि गुणों की खुलकर प्रशंसा की है, वहां कायरता, कर्तव्य विमुखता, स्वामिद्रोह, छलाघात, मित्र-घात तथा कृपणता की बड़ी कटु आलोचना की है और इन अवगुणों से ग्रसित लोगों को अपयश का भागी बताया है। इस प्रकार का काव्य डिंगल में विसहर के नाम से सुज्ञात है। आधुनिक काल में त्याग अथवा पुरस्कार व सम्मान आदि न मिलने पर भी कई कवियों ने अनेक लोगों की अपकीर्ति अपनी कविता में की है, जिसे "भूंडा" कहना कहा गया है। इस प्रकार के गीतों ने यहां के वीरों को कर्तव्य-पथ से च्युत नहीं होने दिया, यही उनकी बहुत बड़ी देन है। उदाहरण के लिए सलेमाबाद (किशनगढ़) की गद्दी के निम्बार्काचार्य महन्त के प्रति कहा गया कविराज बांकीदास का गीत प्रस्तुत है–

हुवो कपाटां रो खोल वोहते फिरंगी थाटां रौ हलौ,
मंत्र खोटा घाटां रो उपायौ पाय भाग ।
भायां भड़ां फाटां रौ हरीफां हाथे दीधो भेद,
ऊभा टीकां वालां कीनो जाटां रौ अभाग ।।
माल खायो ज्यांरो रत्ती हीये नायों मोह,

(१) कवि राव मोहनसिंह (उदयपुर) का संग्रह ।

कुवदी सूं छायो भायो नहीं रमाकंत ।
वेसासघात सूं कांम कमायो बुराई वाळो,
माजनो गंवायो नींबावतां रे महंत ।।
भूप वियां च्यारूं संप्रदायां रो भरोसो भागो,
लागो काळो सलेमावाद सूं गाडा लाख ।
नागां मिले साहवां सूं मिलायो भरत्थानेर,
राज कंठी-वंधां रों मिलयो धूड़ राख ।।
आगरा सूं लूट सूजे अेकठो कियो सो आंणे,
खजानूं अटूट तालालूटीजियो खास ।
कंपणी सूं वेध मोटे जागियां पालटै किलो,
वैरागियां हूंतां हुवौ जाटां रौ विगास ।।

(८) दानशीलता विषयक गीत—

यहां के शासक-वर्ग ने चारण कवियों का वहुत वड़ा सम्मान किया है। राजकीय सम्मान के अतिरिक्त लाख पसाव, करोड़ पसाव, हाथी, घोड़े तथा सदा के लिए जागीरें तक उन्हें दी गई हैं। इस सम्मान के प्रति अपनी कृतज्ञता कवियों ने गीतों में व्यक्त की है। राजा भूपालसिंह शेखावत की दानशीलता की प्रशंसा हुकमीचंद खिड़िया ने अपने गीत में इस प्रकार प्रकट की है—

सियां अपारां नागेसहारां पारावारां खीर संध,
धीरे तेज धारां धांम उधारा धूपाल ।
तारकी आकास चारां मौड़ ज्यूं राकेस तारां,
भूगोल दतारां सारां सेखांणी भूपाल ।।
जटी जोग पारावारां धावा मुत्रतनटी जांण,
गेणवटी तावां ऊंच सुभाव। गोविंद ।
चिलार सुरिन्द्र धावां चंद्र ज्यूं नखत्रां चावां,
नरां लोक दावा रूप किसंनेस नंद ।।
ईस धूरती रा धांम नीरा तांत रमां ओप,
सूर तेजगीरां संत मीरां देत साल ।
धलोगल खगां सुधां-सीरां ज्यूं मुनिन्द्र धीरां,
महा आसतीक वीरां दूजो रायामाल ।।
चंद्रभाल ये उलाल वरसाल तेज चंद्र,
गोपाल नागेंद्र झाल सुधां गंज मेर .

प्रथीपाळ पंचमक दाता ज्यूं उजाळा प्रयो,
सोहिग्रो भूपाळ माळ दातारां सुमेर ॥[1]

(६) भक्ति विषयक गीत—

निगुर्ण एवं सगुण भक्त कवियों ने इस संसार की क्षणभंगुरता तथा ईश्वर प्रेम को व्यक्त करने के लिए गीतों को भी माध्यम बनाया है। कृष्णभक्ति काव्य की प्रसिद्ध रचना 'वेलि किसन रुकमणी री' तो सम्पूर्ण रूप से वेलियो गीत में हो लिखी गई है। इसके अतिरिक्त ईश्वरदास, पीथा सांदू, सांइया झूला, कान्हा बारहठ, ओपा आढ़ा, पीरदांन, महाराजा मानसिंह आदि के सुन्दर भक्ति विषयक गीत उपलब्ध होते हैं। कृष्ण-भक्ति सम्बन्धी एक गीत शिवदांन बारहठ कृत प्रस्तुत है—

अरजण हारीयो होय अबळ उदासी, दरजोधन करसी मोहि दास।
जण द्रोपदी तणां पण जासी, विहडो आव द्वारका बासी ॥
मीच सभा हुय बैंठा भेळा, खळ सादळीया करे व खेळा।
ए जोय पांडव थया अमेळा, विठळ धाव जसी तौ वेळा ॥
साहीयो पलो सुकर दुसासण, ऊपर नहवे भीम अरुजण।
किसन पुकार करूं दिये किण, संत द्रोपदी तणों साद सुण ॥
उड़ते चीर सुयोधन आखे, दूसासन बांही बळ दाखे।
राव जाखों सतीपण राखे, पड़दौ केम हुवो तो पाखे ॥
पूघरणां कोई पार न पावे, हारीया असुर हुआ सुर हावे।
वनौ द्रोपदी तणों बधावे, गुण जेरा नारायण गावे ॥[2]

(१०) करूणा विषयक (मरसिया) गीत—

गुणवांन एवं प्रिय व्यक्ति की मृत्यु पर लिखे गए शोक-काव्य को राजस्थानी में 'विसूरण,' 'मरसिया' अथवा 'पीछोळा' कहा गया है। ये मरसिये प्रायः दोहों में अधिक मिलते हैं, पर गीतों में भी इस प्रकार की रचनाओं का अभाव नहीं है। दिवंगत व्यक्ति के गुण स्मरण तथा उसके अभाव से उत्पन्न शोक को व्यक्त करने वाले स्वर बड़े ही प्रभावोत्पादक हैं। यहां ईश्वरदास बारहठ रचित रावळ जाम लाखावत का शोक-गीत दिया जा रहा है। कवि ने रावळ जाम के निधन पर जिस अभाव और सूनेपन का अनुभव किया है, वह मेघ के साथ स्वर्गस्थ रावळ जाम के पास सन्देश भेजता हुआ व्यक्त करता है।

---

(१) राजस्थानी साहित्य का मध्यकाल (परम्परा), भाग १५-१६, पृ० ३३७
(२) सीताराम लाळस का संग्रह।

गीत निम्न प्रकार है—

जुग भल श्रीराम सुणाये जाये, माहूरो जेक संदेसो मेह ।
दुख तू तणो भांजिसे तिण दिन, दिन जिण राख थाइसे देह ।।
कहे संदेसो जलहर काला, जाये आगे रावल जाम ।।
रहिस्ये नहीं अम्हीणो रोवत, राख थियां विण आतम राम ।।
राउल रा वाल्हा, राउल नूं सधण कहे जाये लग लोइ ।।
तुझ वियोग टले ते तांवण, कुढ़ि होमि विण अछे व कोई ।।
वचन जेइ प्रभणों राजावर, जाये जलहर ओथ जई ।
जले भसम पिंड होइस्ये जइयां, त्हांरो दुख भांजिस्ये तई ।।
सधण, अहे वायक म सुणावी, लाखाउत आगली लहेइ ।
तू विसरिस तइयां जइयां तिण, ढिग हुइसै रज ताणो विहोइ ।।[1]

(११) स्फुट विषयक गीत-

उपर्युक्त प्रमुख विषयों के अतिरिक्त अनेकानेक स्फुट विषयों पर भी गीत-रचना हुई है। यहां तक कि अफीम, मदिरा, भांग भूख, आलस्य, नीम, महुआ आदि पर भी गीत रचे गए हैं। यहां अफीम की प्रशंसा का एक गीत उद्धृत किया जाता है—

रंजे हगामों होकवा हुवे रंग राग रा,
विकट सिंधू जगां आग वरजाग रा ।
अजव चंदा वदन मंत्र अनुराग रा,
कठा लग करां वखांण किसनागरा ।
नेह म्रिगनेणियां वधै नित नवानी,
हाम पूरण सदा कांम ची हवानी
जकै कर दवानी फैल हद जवानी,
खांत कर लियण कासो भंवर खवानी ।।[2]

जहां अफीम की प्रशंसा की गई है, वहां उसकी निन्दा पर भी गीत रचे गए है। अफीम का लगातार सेवन करने के पश्चात् उससे छुटकारा पाना सहज नहीं है। इसलिए अफीम को बुरा भी बताया है।

कियो आप सों हेत जकां वड़ी भेलप करी,
आपरा लखण अब गजर आया ।
अरज सुण मांहरी वड़ा ढाकर अमल,

(१) राजस्थानी वीरगीत: सं० नरोत्तमदास स्वामी, पृ० ५५
(२) डिंगल गीत: सं० रावत सारस्वत, चंडीदांन सांदू, पृ० १०३

कलंक मत लगाड़े मूझ काया ।।[1]

अफीम की भांति ही मदिरा और भंग पर भी गीत रचे गए हैं । यहां भंग के एक गीत की कुछ पंक्तियां द्रष्टव्य हैं—

भली सोझावो तिरावो कूंडे, घोटावो धुपावौ भांग,
छंणावों मीठे नीर छकावो छयल्ल ।
आवो आवो पीयो यारों रंग रा खीयालां अमी,
सुख पावो मांणगरां करावौ सयल्ल ।।[2]

गीतकारों ने भूख की सबलता भी अपने गीतों में प्रकट की है । बड़े-बड़े प्रबल गजराज और मस्त ऊंटों तक के जोम को भूख विगलित कर देती है । भूख के पराक्रम को एक गीत में इस प्रकार व्यक्त किया है—

भड़ां मारकां भूख भाखे भुअणि,
गढ़ा कोटां नरां भूख गांजे ।
भूख हाथी तणा हाड भूखा करे,
भूख ऊंटां तणा कंध भांजे ।।[3]

यद्यपि प्रमाद और आलस्य कार्य-सिद्धि में नितान्त बाधक होते हैं, पर यहां कवि ने आसोप के स्वामी कूंपावत महेसदास राठौड़ के आलस्य की अलंकारिक रूप में सराहना की है ।
नमूने के लिए गीत के दो छंद देखिये—

आलस अखियात सांभलो अवरां, लड़ण सीख विध लीजो ।
कीनों कांनहरे ज्यों कमधां, कोयक आलस कीजो ।।
गलियारां ढीलों गजगाहां, अवखांणो उजवाले ।
वाजे हाक महेस वीर वर, आलस भलो उडाडे ।।[4]

युद्धों की क्रीड़ास्थली राजस्थान में नीम के वृक्ष की बड़ी महत्ता रही है । आधुनिक शल्य-चिकित्सा के साधनों एवं आविष्कारों के अभाव में नीम ही एक ऐसा पेड़ था जिसकी छाल-पत्तियों से घायलों की चिकित्सा की जाति थी । जलाभाव होने पर भी स्त्रियां जल से सींचकर उसका पोषण किया करती थीं । इसी भाव का निम्नलिखित पंक्तियों में वर्णन है—

---

(१) सौभाग्यसिंह शेखावत का संग्रह ।
(२) अभय जैन ग्रंथालय, बीकानेर का संग्रह ।
(३) सौभाग्यसिंह शेखावत का संग्रह ।
(४) सीतारांम लालस का संग्रह ।

दाइये तिको घायलां वेली, चित्त नित कर राखीजे वैली ।
सूदो सोरो काज सहेली, हालो नींव सींचवा हेली ।।
रासातणी पयंपे राणी, रण रीझल मांझी रतनांणी ।
सूंदो सोरो काज सयाणी, निवड़ो जीव तणी नीसाणी ।।[1]

राजस्थान के कुछ भागों में महुए के पेड़ बहुत होते हैं । महुए के फल खाए जाते हैं और फूलों की मदिरा बनाई जाती है । महुए के नाम पर एक किस्म विशेष की शराब को 'महुड़ो' भी कहा जाता है । यहां शराब का अधिक प्रचलन रहा है, इसलिए उसकी भी प्रशंसा की गई है । उदाहरण इस प्रकार हैं ।—

दाखे राह दहुवे वंसी महूड़ा अमांनी दाद,
करे कूड़ा दामी जोड़ा वाहरे कमेस ।
नेह प्यारी नाहरे योगणा वधै रूड़ा नामी,
हंगामी रूंखड़ा दारू वाहरे हमेस ।।[2]

डिंगल गीतों में कायरों एवं कृपणों की दिल खोलकर निन्दा की गई है । सपूत, कपूत, सुयाकर कुयाकर पर भी गीत लिखे गए हैं । कविया हींगळाजदांन कृत सपूत के गीत का उदाहरण प्रस्तुत है—

सरवण री रीत प्रीत सरसावे, चावे कुसड ऊजळे चीत ।
जाया भलां धिनोधिन जांनें, मानें कर तीरथ माईत ।।
हीड़ा करे हुकम में हाले, साम सपूती तणो लहै ।
माईतां राखै सिर माथै, रज पायां री आप रहै ।।[3]

१९वीं शताब्दी में आते-आते तो कवियों ने अपने आश्रयदाता के सन्मुख अपनी विनती भी गीत के माध्यम से प्रस्तुत की है । इस कोटि के गीतों में महाराजा अजीतसिंह जोधपुर, महाराजा बलवंतसिंह रतलाम, महाराजा मानसिंह जोधपुर आदि को सम्बोधित कर लिखे गए गीत उपलब्ध होते हैं । घोड़े-घोड़ियों की प्रशंसा अलंकार-युक्त गीतों में की गई है । अनेक अस्त्र-शस्त्रों का वर्णन भी स्वतंत्र रूप से किया गया है । महाराणा भीमसिंह के बर्छे महारावराजा उम्मेदसिंह की तलवार, महाराणा भीमसिंह के भाले पर कवियों ने सुन्दर गीत लिखे हैं, जिन पर आगे यथास्थान विस्तार से प्रकाश डाला जाएगा । यहां उदाहरण के

(१) डिंगल गीत: सं० रावत सारस्वत, चंडीदान सांदू, पृ० ७७
(२) सौभाग्यसिंह शेखावत का संग्रह ।
(३) डिंगल गीत: सं० रावत सारस्वत, चंडीदान सांदू, पृ० ११७,

लिए कवि हुकमीचंद खिड़िया रचित राव बावसिंह मजूदा के माले की प्रसंशा के गीत की चार पंक्तियां पर्याप्त होंगी—

इखू माथ रौ क वज्र सुरांनाथ रौ भलूल. ओग,
सूल. रूद्र हाथ रौ क वज्र मूल सार।
घूरन्बी है पाथ रौ क कौलं.छी दाय रौ घाव,
चूरन्बी भाराथ रौ क बाघरोचौधार ।।[१]

उपर्युक्त वर्गीकरण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि वर्ण्य-विषय की दृष्टि से गीतों का क्षेत्र बहुत विस्तृत है। गीत केवल युद्ध—वर्णन एवं आश्रयदाताओं की प्रशंसा तक ही सीमित नहीं रहे, यह विषय-वैविध्य इसका ठोस प्रमाण है। वास्तव में गीतों ने यहां के समाज और जीवन ने बहुत बड़े पक्ष को अपने में समाहित किया है। लगभग एक हजार वर्षों की सामाजिक, राजनैतिक तथा धार्मिक परिस्थितियों व अनेकानेक मान्यताओं तथा जीवन-आदर्शों का प्रतिबिम्ब गीत-साहित्य में मिलता है।

(ख) छंदशास्त्र की दृष्टि से वर्गीकरण

डिंगल के छंदशास्त्रों में मात्रिक एवं वर्णिक तथा सम, अर्द्ध-सम विषम आदि सभी प्रकार के गीतों का विवेचन मिलता है, परन्तु उन्हें किसी वैज्ञानिक क्रम से प्रस्तुत नहीं किया गया है। गीतों की संख्या तथा लक्षणों के सम्बन्ध में सभी छंदशास्त्र एक-मत नहीं हैं। अतः वर्गीकरण प्रस्तुत करने के पहले यहां गीतों की संख्या आदि पर संक्षेप में विचार कर लेना अप्रासंगिक न होगा।

उपलब्ध छंदशास्त्रों में गीतों की संख्या निम्न प्रकार पाई जाती है—

ग्रंथ का नाम	लेखक	गीत संख्या
(१) पिंगल सिरोमणी[२]	हरराज	४०
(२) रघुनाथ रूपक[३]	मंछाराम सेवग	७२
(३) कविक लबोध[४]	उम्मेदराम बारहठ	८४
(४) छंद रत्नावली[५]	हरिराम निरंजनी	८४
(५) रघुवर जस प्रकास[६]	किसना आढा	९१

(१) राजस्थानी साहित्य का मध्यकाल (परम्परा, भाग १५-१६) पृ० ३३७
(२) पिंगल सिरोमणी (परम्परा भाग १३).—सं० नारायणसिंह भाटी
(३) संपादक महतावचंद खारेड़, प्रकाशक: ना० प्र० स०, काशी।
(४) रा० शो० सं०, जोधपुर का संग्रह।
(५) सीतारांम लालस का संग्रह।
(६) रा० प्रा० वि० प्र० जोधपुर।

(१) अभय जैन ग्रंथालय की प्रति[1]	अज्ञात	४८
(२) गुण पिंगल प्रकास[2]	हमीरदांन	३०
(३) रण पिंगल[3]	दिवान रण छोड़जी	३०
(४) लखपत पिंगल[4]	हमीदांन	२४
(५) हरि पिंगल[5]	जोगीदास	२२
(६) डिंगल कोश[6]	मुरारीदांन	१६

(इन लक्षण ग्रंथों के अलावा रूपदिप पिंगल) (हरिकिशन),[7] छंद दिवाकर (हरदांन सिढ़ायच)[8] प्रत्यय पयोधर (हिंगलाजदांन कविया,)[9] क्रस्न जस प्रकाश (किसना आढ़ा दुरसावत),[10] नागराज पिंगल[11] डिंगल महाभारत (सांवलदांन आशिया)[12] आदि के उल्लेख भी मिलते हैं, पर ये ग्रंथ अद्यावधि अनुपलब्ध हैं। संभव है इनमें भी गीतों पर प्रकाश डाला गया हो।

गीतों की संख्या के सम्बन्ध में ऐसी किवदंती भी प्रचलित है कि चारण जाति की १२० शाखाएं हैं और उतने ही प्रकार के गीत भी रचे गए हैं, परन्तु उपलब्ध सामग्री के आधार पर चारणों की शाखाओं और गीतों के भेदों में कोई सामंजस्य हो,ऐसा नहीं लगता। यद्यपि यह सही है कि 'रघुवर जस प्रकास' में बताए गए ९१ गीतों से अधिक गीत भी खोज निकाले जा सकते हैं, तथापि चारणों की शाखाओं की संख्या के साथ गीतों की संख्या का मिलान बैठाना केवल कल्पना ही है, इसमें वैज्ञानिकता का तो सर्वथा अभाव है ही।

---

(१) अभय जैन ग्रंथालय, बीकानेर का संग्रह।
(२) रा० शो० सं०, जोधपुर का संग्रह।
(३) सीतारांम लालस का संग्रह।
(४) सा० सं० उदयपुर का संग्रह।
(५) सरस्वती भंडार, उदयपुर,।
(६) डिंगल कोश: संपादक नारायण सिंह भाटी, रा० शो० सं, जोधपुर।
(७) पिंगल सिरोमणी (परम्परा), भाग १३, पृ० १९६
(८) रावत सारस्वत के कवि-परिचय संग्रह से।
(९) वही।
(१०) बं० हिं० मं०, कलकत्ता का संग्रह।
(११) रा० शो० सं०, जोधपुर का स्फुट संग्रह।
(१२) सांवलदांन आशिया उदयपुर का पत्र दिनांक ५-११-६३

छंदशास्त्र की दृष्टि से मेरू, मरकटी, पताका आदि प्रत्ययों को गीतों में स्थान नहीं दिया गया है। अतः मात्रा-प्रस्तार के आधार पर उनके भेदोपभेद की व्यवस्था भी नहीं है। हमीरदांन का 'गुण पिंगल प्रकास' इसका अपवाद अवश्य है, जिसमें छोटे सांणोर के ३१ भेद मात्रा-प्रस्तार के आधार पर किए गए हैं। इन उपलब्ध छंदशास्त्रों में से महत्वपूर्ण ग्रंथों पर ७वें अध्याय में कवि-परिचय देते समय प्रकाश डाला जाएगा।

उक्त लक्षण-ग्रंथों में गीतों के लक्षणों को लेकर पर्याप्त मतभेद पाया जाता है, यह प्रारंभ में ही कहा जा चुका है। कुछ गीत ऐसे भी हैं जिनके लक्षण प्रत्येक छंदशास्त्र में भिन्न है। एक आचार्य जहां एक गीत को मात्रिक मानता है, वहां दूसरा उसे वर्णिक गीतों की श्रेणी में रखता है। अभय जैन ग्रंथालय, बीकानेर से प्राप्त छंदशास्त्र की एक हस्तलिखित प्रति में लगभग चालीस गीत हैं और सभी गीत वर्णिक बताए गये हैं। कहीं-कहीं एक ही छंदशास्त्र में एक ही गीत के दो लक्षण तक दिए हुए हैं। ऐसी स्थिति में जब वर्णिक तथा मात्रिक सम अर्द्ध-सम और विषम आदि श्रेणियों में इन गीतों को विभाजित करते हैं, तो लगभग एक दर्जन छंदशास्त्रों के गीतों का मिलान करने पर बड़ी उलझन खड़ी हो जाती है।

वास्तव में गीतों का छंद-शास्त्रीय पक्ष इतना विस्तृत तथा गहन है कि वह स्वतंत्र रूप से अध्ययन, मनन तथा विश्लेषण की अपेक्षा रखता है। अतः छंदशास्त्र की दृष्टि से गीत-रचना की सामान्य परिपाटी तथा छंदों के गठन आदि का परिचय देने के उद्देश्य से 'रघुवर जस प्रकास' में वर्णित छंदों के आधार पर ही यहां वर्गीकरण प्रस्तुत किया जा रहा है, क्योंकि अद्यावधि उपलब्ध छंदशास्त्रों में गीतों की सर्वाधिक संख्या हमें इसी में उपलब्ध होती है। मतभेद का कुछ अनुमान लग सके इस आशय से डिंगल के प्रकाशित अन्य तीन छंदशास्त्र, 'रघुनाथ रूपक' 'पिंगल सिरोमणी' तथा 'डिंगल कोश' में जिन-जिन गीतों के लक्षण भिन्न हैं, केवल उनका उल्लेख यथा-स्थान किया जा रहा है।

विस्तार-भय के कारण प्रत्येक गीत का यहां उदाहरण न देकर सम्बन्धित ग्रंथों के संदर्भ के रूप में पृष्ठ-संख्या ही दी गई है।

गीतों का वर्गीकरण

[१] मात्रिक-सम–

रघुवर जस प्रकास	पृष्ठ	अन्य छंद-शास्त्रों में भिन्नता
(१) वसंतरमणी	१८८	
(२) मुणाल	१८९	
(३) जयवंत सावझड़ो	१९१	

रघुवर जस प्रकास	पृष्ठ	अन्य छंद-शास्त्रों में विभिन्नता
(४) अर्धंकडी	२११	
(५) गोख सावझड़ो	२१६	
(६) पालवणी	२१९	
(७) सावज अड़ियल	२११	
(८) दुमेल सावझड़ो	२१९	
(९) घड़ उथल	२२२	
(१०) घोड़ा दमो	२२७	
(११) गोखो	२४५	
(१२) विडकंठ (अथवा वीरकंठ)	२५९	रघुनाथ रूपक में यह वर्णिक-विषम है।[1]
(१३) मुड़ियल सावझड़ो	२७२	
(१४) अठताळो	२७७	रघुनाथ रूपक में यह मात्रिक-विषम है।[2]
(१५) धमाळ	२८३	
(१६) उमंग सावझड़ो	२८७	
(१७) यकखरो	२८८	
(१८) झड़ लुपत सावझड़ो	२९५	
(१९) वडो सावझड़ो	२९८	
(२०) अरध सावझड़ो	२९९	
(२१) द्वितीय सेलार	३०१	
(२२) भाख	३१२	
(२३) अरध भाख	३१२	

[२] मात्रिक-अर्द्ध-सम

रघुवर जस प्रकास	पृष्ठ	अन्य छंद-शास्त्रों में भिन्नता
(१) वडा साणोर	१९२	डिंगल कोश में यह मात्रिक-सम है।[3]
(२) शुद्ध साणोर	१९३	

(१) रघुनाथ रूपक: सं० महताबचंद खारेड़, पृ० १९५
(२) वही, पृ० २०६
(३) डिंगल कोश: सं० नारायण सिंह भाटी, पृ० १७६

रघुवर जस प्रकास	पृष्ठ	अन्य छंद–शास्त्रों में भिन्नता
(३) प्रहास साणोर	१६६	
(४) वेलियो साणोर	२००	
(५) सुहणो साणोर	२०१	
(६) जांगड़ो साणोर		
(अथवा पूणिया साणोर)	२०२	
(७) सोरठिया साणोर		
(अथवा प्रौढ़ साणोर)	२०३	
(८) खुड़द साणोर		
(अथवा हंसमग)	२०५	
(९) पाड़गत	२०६	
(१०) लहचाल़	२१४	
(११) सिहचलो	२२३	
(१२) अरटियौ	२२८	
(१३) सेलार	२२९	पिंगल सिरोमणी[1] तथा रघुनाथ रूपक[2] में यह मात्रिक-सम है।
(१४) हंसावल़ो	२३९	
(१५) वडो साणोर		
(अथवा अहरण खेड़ी)	२५७	
(१६) दुमेल़	२६४	
(१७) त्रिभंगी	२६९	
(१८) सिहलोर	२७०	
(१९) सार संगीत	२७०	
(२०) सिहवग साणोर	२७१	
(२१) अहिगन साणोर	२७१	
(२२) रेंण खरो	२७२	
(२३) अरट		
(अथवा उमंख या ञाटको)	२७६	
(२४) झड़ मुकट	३००	

---

(१) पिंगल सिरोमणी (परम्परा), पृ० १७०

(२) रघुनाथ रूपक, पृ० १३५

(२५)	मुकताग्रह	३०८	
(२६)	पंखाळो	३१०	पिंगल सिरोमणी में यह मात्रिक-सम है ।[1]
(२७)	जाळीबंध वेलियो साणोर	३१३	

[३] मात्रिक-विषम—

	रघुवर जस प्रकास	पृष्ठ	अन्य छंद-शास्त्रों में भिन्नता
(१)	मिश्र वेलियो	१९६	
(२)	त्रिवड़ (अथवा हेलो)	२०८	
(३)	चोटियाळ	२१३	
(४)	चितइलोळ	२१७	
(५)	व्रध चित विलास	२२४	
(६)	लघु चित विलास	२२६	
(७)	झमाळ	२३०	
(८)	मुड़ेल अठताळो	२३२	
(९)	हिरण झंप	२३४	
(१०)	केवार	२३६	रघुनाथ रूपक में यह मात्रिक-अर्द्ध-सम हैं ।[2]
(११)	दोढ़ा	२३७	पिंगल सिरोमणी में यह मात्रिक-अर्द्ध-सम है ।[3]
(१२)	रसखरो	२४०	
(१३)	भाखड़ी	२४२	पिंगल सिरोमणी में यह-मात्रिक अर्द्ध-सम है ।[4]
(१४)	अरध भाखड़ी	२४४	रघुनाथ रूपक में यह मात्रिक अर्द्ध-सम है ।[5]

---

(१) पिंगल सिरोमणी (परम्परा), पृ० १५४
(२) रघुनाथ रूपक सं० महतावचन्द खारेड़, पृ० १६१
(३) पिंगल सिरोमणी (परम्परा), पृ० १६३
(४) वही, पृ० १६२
(५) रघुनाथ रूपक सं० महतावचन्द खारेड़, पृ० ८०

रघुवर जस प्रकास	पृष्ठ	अन्य छंद शास्त्रों में भिन्नता
(१५) गोखो द्वितीय	२४६	
(१६) ढोल चालो (या ढोल हरो)	२४७	
(१७) त्रकुट बंध	२४९	
(१८) द्वितीय त्रकुट बंध	२५२	
(१९) भाण	२६३	
(२०) धमल	२६८	
(२१) दीपक वेलियो साणोर	२७३	
(२२) काछो	२७८	
(२३) अवंक	२८२	
(२४) रसावली	२८४	
(२५) सतखणो	२८६	
(२६) अमेल	२८९	रघुनाथ रूपक में यह मात्रिक-अर्द्ध-सम है।[1]
(२७) भंवर गुंजार	२९०	पिंगल सिरोमणी में यह मात्रिक-सम है।[2]
(२८) बीजो भंवर गुंजार	२९१	
(२९) चोटियो	२९२	
(३०) मंदार	२९४	
(३१) त्रिपंखो	२९६	
(३२) आटको	३०२	
(३३) मनमोहन	३०४	
(३४) ललित मुगट	३०७	
(३५) महाणी वेलियो	३१६	
(३६) रूपग (अथवा द्वितीय गजगत)	३२२	

---

(१) रघुनाथ रूपक, पृ० १४१

(२) पिंगल सिरोमणी (परम्परा), पृ० १७२

[४] वर्णिक-सम —

रघुवर जस प्रकास	पृष्ठ	अन्य छंद शास्त्रों में भिन्नता
(१) वंक गीत	२१०	
(२) भुजंगी	२५६	
(३) अट्ठा	२६०	
(४) दूणो अट्ठा	२६१	

[५] वर्णिक-अर्द्ध-सम

रघुवर जस प्रकास	पृष्ठ	अन्य छंद शास्त्रों में भिन्नता
(१) सुपंखरो	२५३	
(२) हैकलवयण	२५५	पिंगल सिरोमणी में यह मात्रिक-अर्द्ध-सम है।[1]
(३) सालूर	३११	डिंगल कोश में यह मात्रिक-अर्द्ध-सम है।[2]
(४) घणकंठ सुपंखरो	३१७	

[६] वर्णिक-विषम

रघुवर जस प्रकास	पृष्ठ	अन्य छंद शास्त्रों में भिन्नता
(१) अरघ गोखौ सावझड़ो	२६६	
(२) अहिवंध	२७४	
(3) सवैयो	२८०	

उपरोक्त वर्गीकरण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि मात्रिक गीतों की संख्या वर्णिक गीतों की अपेक्षा अधिक है। मात्रिक गीतों में भी विषम गीतों की संख्या सबसे अधिक, अर्द्ध-सम की उनसे कम और सम की सबसे कम है। हिन्दी के छंद शास्त्रों में सम तथा अर्द्ध-सम छंदों व पदों की संख्या अधिक पाई जाती है। अतः विषम गीतों की अधिकता डिंगल की एक विशेषता है।

---

(१) पिंगल सिरोमणी (परम्परा), पृ० १७६

(२) डिंगल कोश : सं० नारायणसिंह भाटी, पृ० १७९

यद्यपि मात्रिक गीतों में भी कहीं-कहीं कुछ वर्णों का प्रयोग छंद के अन्त में किया जाता है परन्तु स्वतन्त्र रूप से शुद्ध वर्णिक गीतों की संख्या कम है। मात्रिक गीतों की अपेक्षा वर्णिक गीतों की रचना क्लिष्ट है और फिर जिस वातावरण तथा परिस्थितियों में चारण गीत रचना किया करते थे वहाँ मात्रिक छंद—रचना ही अधिक सुविधा-जनक रही होगी। यह भी मात्रिक गीतों की अधिकता का एक कारण कहा जा सकता है।

मात्रिक छंदों में लक्षणों के सम्बन्ध मे यहाँ एक बात स्पष्ट कर देना आवश्यक है। कई गीतों के प्रारम्भ की पंक्ति में दो या तीन मात्राएँ अधिक होती हैं जैसे वेलियो गीत की प्रथम पंक्ति में १८ मात्राएं होती हैं, फिर १५, १६, १५ का क्रम होता है। आगे के द्वालों में १६, १५, १६, १५ का ही क्रम चलता है।[1] प्रारम्भ में की गई इस मात्रा-वृद्धि कर कारण गीत का प्रारम्भ ललकार के साथ ओजपूर्ण ढङ्ग से करना प्रतीत होता है।[2] अतः ऐसे गीतों को सम, अर्द्ध—सम आदि श्रेणियों में रखते समय पूरे गीत की पंक्तियों के लक्षणों को ही ध्यान में रखा गया है।

---

(१) रघुवर जस प्रकाश, पृ० २००

(२) वृहत् पिंगल : रामनारायण विश्वनाथ पाठक, पृ० ४७८

पंचम अध्याय

●

गीतों में काव्य-सौष्ठव

गीतों में काव्य-सौष्ठव | ५

गीत केवल ऐतिहासिक घटनाओं का विवरण मात्र प्रस्तुत करने अथवा वीरों की विरुदावली को पद्य-बद्ध करने की दृष्टि से ही नहीं लिखे गए, यह आरम्भ में ही कहा जा चुका है। अतः यह काव्य कवियों की स्वाभाविक भावनाओं से ओत-प्रोत है। अनेक गीतों में भावों की गहनता और शैलीगत विलक्षणता देखने को मिलती है। रस, अलंकार, वर्णन-वैशिष्ट्य तथा शली आदि सभी दृष्टियों से इनकी डिंगल-काव्य को महत्वपूर्ण देन है।

गीतों के काव्य-सौष्ठव पर प्रकाश डालने की दृष्टि से यहां उनके भावपक्ष तथा अभिव्यक्ति पक्ष पर विस्तार के साथ विचार किया जा रहा है।

[अ] भावपक्ष

आदि से अन्त तक गीत-साहित्य वीर रस प्रधान है, परन्तु मध्यकाल के गीतों में इतना विषय-वैविध्य रहा है कि प्रायः सभी रसों को उनमें स्थान मिल गया है। गीतों के भाव-सौन्दर्य को प्रकट करने के उद्देश्य से विभिन्न रसों के उदाहरण यहां प्रस्तुत किये जा रहे हैं।

शृंगार रस—

शृंगार रस को रसराज कहा गया है। संयोग तथा वियोग इसके दो भेद हैं इन दोनों भेदों में लगभग सभी संचारी भावों का समावेश हो जाता है। अन्य किसी भी रस में इतने संचारी भावों का समावेश संभव नहीं है। डिंगल गीतों में इन दोनों पक्षों की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है।

वीर-भावना और निरन्तर संघर्ष के साथ-साथ यहां भू और भामिनी का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। संघर्ष की क्लान्ति को शान्त करने और जीवन को

सरस बनाए रखने के लिए राजस्थान के कवियों ने वीर रस के साथ शृंगार रस का गठबंधन निरन्तर बनाए रखा है। यहां तक कि विशुद्ध वीर-रसात्मक काव्यों में भी उन्होंने बड़ी सफलता के साथ शृंगार का पुट दिया है और कहीं-कहीं योद्धा की समस्त वीरता तथा उसके क्रिया-कलापों तक को शृंगारिक रूपक के द्वारा व्यक्त किया है।[1] इस प्रकार की रस-योजना की बात जब हम करते हैं तो वह बड़ी आश्चर्यपूर्ण एवं अटपटी-सी लगती है। परन्तु इन डिंगल गीतकारों में ऐसी अनूठी प्रतिभा अवश्य थी, जिसने वीर और शृंगार जैसे विरोधी रसों में भी अद्भुत सामन्जस्य स्थापित कर दिया है।

इस तथ्य के मूल में मुख्य बात यही जान पड़ती है कि मरण को सदैव महापर्व मानने वाले कवियों ने कामिनी और कृपाण को समान महत्व दिया है। शैय्या पर कामिनी जितनी प्रिय थी उतनी ही प्रिय थी रणस्थल में तलवार।[2] जीवित रह कर वे जहां वसुधा को भोगते थे, वहां रणभूमि में प्राणोत्सर्ग कर स्वर्गिक अप्सराओं का उपभोग करते थे। इस प्रकार के दृष्टिकोण के फलस्वरूप ही इन गीतकारों ने शृंगार और वीर रसों में सफल सामन्जस्य स्थापित किया है। कहने का तात्पर्य यह है कि शुद्ध शृंगारिक गीतों के साथ-साथ वीर रस प्रधान गीतों में भी शृंगार का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। शायद अन्य प्रान्तीय भाषाओं के काव्य में इस प्रकार का समन्वय कठिनता से देखने को मिलेगा।

शृंगार रसात्मक गीत-रचयिताओं में राठोड़ पृथ्वीराज, शिवबक्स पाल्हावत, महाराजा मानसिंह, कविराव बख्तावर, माहदांन मेहडू आदि प्रमुख हैं। राठोड़ पृथ्वीराज रचित 'किसन रुक्मणी री वेलि' में से संयोग-शृंगार के निम्नांकित उदाहरणार्थ उद्धृत किये जा रहे हैं। इनमें श्रीकृष्ण (नायक) आश्रय, रुक्मणी (नायिका) आलम्बन, एकान्त स्थान आदि उद्दीपन, हंसना और नेत्र-भंगिमा अनुभाव, चपलता और आवेग आदि संचारी तथा रति स्थायी भाव हैं।

(क) संयोग शृंगार

वर नारी नेत्र निज वदन विलासा, जाणियो अन्तहकरण जई।
हसि हंसि भ्रूहें हेक हेक हुई, ग्रह बाहरि सहचरी गई॥
एकान्त उचित क्रीड़ा चो आरंभ, दीठो सु न किहि देव दुजि।

---

(१) द्रष्टव्य- राठोड़ रतनसिंह री वेलि (परम्परा), भाग १४
(२) सेजां मीठी कांमणी रण मीठी तलवार।

अदिठ अश्रुत किम कहणो आवै, सुख ते जाणणहार सुजि ।।
पति पावन प्रारथित त्री तत्र निपतित, सुरत अंत केहवी श्री ।
गजेन्द्र क्रीड़ता सु विगलित गति, नींरासई परि कमलिनी ।।[1]

(ख) वियोग श्रृंगार

बधत मयूरां सोर दादुर घणा बोलिया,
डरे सुण कायर हिया डोलिया ।
हरित परबत सघन घन होलिया,
छली समर विरह रा व्रथा तन छोलिया ।।
झुके बादला जठे लगी,बरसण झड़ी,
चहूं दिसी चमकती बीज ऊंची चढ़ी ।
घणो सुख सैण मिल हुए सुभ घड़ी,
सुखी आगमण वाट जोऊं खडी ।।
क्रांत लीधा सरे रूह मकरकेत रा,
देण मनुहार मद-रीठ नित देत रा ।
वधावण मौज निज वंस सर वैत रा,
हमें आवो पिया वधावण हेत रा ।।
सरब गुण जांण सह त्रिया हिय सुधारो,
विलाला सजन नित नेह हिय वधारो ।
निरख काम व्रथा विलम चित न धारौ,
पति मदछाकिया गेह अब पधारौ ।।[2]

इस गीत में पति आलंबन, प्रकृति के क्रिया-कलाप उद्दीपन विभाव, नायिका का खड़ी होकर नायक की प्रतीक्षा करना अनुभाव तथा रति स्थायी भाव हैं ।

वीर रस

वीर चार प्रकार के माने गए हैं—(१) युद्धवीर, (२) दानवीर, (३) दयावीर, और (४) धर्मवीर । उत्साह इस रस का स्थायी भाव है और आलम्बन

---

(१) क्रिसन रुक्मणी री वेलि: पृथ्वीराज राठौड़ ।
(२) श्रृंगार रस के कुछ अप्रकाशित डिंगल गीत: शोधपत्रिका, भाग १२, अंक ३, पृ० ७५-७६

क्रमशः शत्रु, याचक, दया के पात्र तथा धर्म-ग्रन्थ के वचन आदि हैं। इन चारों श्रेणियों के वीरों में सबसे अधिक गीत-रचना युद्धवीर सम्बन्धी है। वीर रस सम्बन्धी सहस्रों गीतों की रचना अनेक कवियों ने की है, जिनमें हरिसूर बारहठ, दुरसा आढ़ा, नांदण बारहठ, कर्मसी आसिया, हुकमीचन्द खिड़िया, फतहसिंह बारहठ, माला सांदू, शंकर बारहठ, बांकीदास आसिया, सूर्यमल मिश्रण, गिरवरदांन आदि प्रमुख हैं। उपर्युक्त चार प्रकार के वीरों के अतिरिक्त सतियों का सोत्साह अग्नि-प्रवेश भी वीरता की श्रेणी में लिया जा सकता है, क्योंकि उनमें भी स्थायी भाव उत्साह ही परिलक्षित होता है। पति के प्रति रति का आविर्भाव उस समय नहीं होता। नारी में इस प्रकार सोत्साह आत्मोत्सर्ग-भावना के उद्रेक का दर्शन अन्यत्र दुर्लभ है। इसका सविस्तार विवेचन आगे यथा-स्थान किया गया है।

(क) युद्धवीर—

निम्नलिखित गीत में गीतनायक ठाकुर शेरसिंह मेड़तिया का प्रतिद्वन्द्वी ठाकुर कुशलसिंह चांपावत आलम्बन है, कटूक्ति उद्दीपन है तथा ललकारना और 'वीर लड़ने के लिए उद्यत हो' आदि कथन अनुभाव हैं।

वड़ा बोलतो बोल वातां घणी वणातो, जोम छक जगातो ठसक जाझी।
सदा री अग्राजे सेर ऊभो समर, मुदायत हरा रा आव मांझी॥

वराछक मुंह फाटो घणो बोलतो, तोलतो गयण हाथां अयाघो।
खड़े अस छद्योहां सेर दाखै खड़ो, उदर द्रोहा हिवे आव आघो॥

रोज तूं मेलतो लिखे कागद रुका, सहर नाह तेण आंटे समायो।
अरावो छांड तूं आवरे अठीने, अबै हूं सामुहो खड़े आयो॥

डरर उफर अति कहर करतो डकर, अति डकर कहतो वयण अजूंझा।
पाट रिड़पाल जैमालहर पचारे, दाख खित्रवाट रिणमाल दूजा॥

किरारा वयण खरा जब काढ़तो, वरारा कोट भरतो गयण वाथ।
धुरा तैं किया चाला विग्रह धरा रा, हगारा जोग्र हिव मांहरा हाथ॥

घणी मो रांम ने तूझ वखतो घणी, उभै घर बराबर समर आड़ी।
कुसलसी एक तैं तेजसी तणे कुल, पलटतां खूंद सूं खता पाड़ी॥

काज खोटा करे आज सोचे किसूं, धार भुज लाज कर गाज घेठी।
सिरे वामो मिसल वकारे सेरसी, जीमणी मिसल रा आव जेठी॥

कटक विहूं देखने सोच कांसूं करे, जनम लग इत्तो नह परव जुड़सी।
खरा खोटां तणी विछूटा सात सूं पछै सौह आपसूं खबर पड़सी॥

विढ़ण संग्राम री हांम वाकारतां, महा दोय जाम हुय गया मोनूं ।
जोधपुर जहर रा बीज वाया जिके, तिके फल चखाऊं आव तोनूं ॥
सेर रा करारा वैण कुसले सुणै, अभनमै पाल विरदाँ उजालौ ।
वादलां दलां नागौर रै विचा सूं, अरक जिम भलकियौ हरा वालो ॥
पंच गंज सैल फिर दोय लागां पछे, सदा रौ सेर पौरस सवायौ ।
मसलतौ हाथियां धसल भरतौ मरद, अचलहर पाधरौ कुसल आयौ ॥[1]

(ख) दानवीर—

युद्धपरक गीतों की तरह दान और दातार विषयक गीतों का भी अच्छी संख्या में निर्माण हुआ है । लाखप साव,करोड़ पसाव जैसी वड़ी राशियाँ तथा हजारों की जागीरें हँसते-खेलते दे देना यहां के वीरों के लिए सामान्य-सी बात रही है । हेम हेड़ाउ, लाखा फूलाणी, सादाणी किसनेस और भैर भाटी तो अति प्रसिद्ध और प्रातः स्मरणीय दातार हो चुके हैं । दानवीरों पर ज्ञात-अज्ञात अनेक कवियों के गीत मिलते हैं । इस प्रकार के गीतकारों में बारू सौदा, ईसरदास मिश्रण, माला सांदू, दुर्गादत्त बारहठ, किसना आढ़ा, पहाड़खांन आढ़ा, महादांन मेहडू चैनकरण सांदू, रिवदांन, गिरवरदांन आदि प्रसिद्ध है । उदाहरण के लिए बारूजी सौदा कृत महाराणा हम्मीर का गीत उद्‌धृत है, जिसमें आलंवन याचक (बारूजी सौदा), उद्दीपन दान-पात्र की प्रशंसा, अनुभाव याचक को वैठक, ताजीम आदि आदर-सत्कार तथा संचारी हर्ष, गर्व आदि हैं और उत्साह स्थायी भाव है ।

वैठक ताजीम गांम गज वगसे, किव रो मोटों तोल कियौ ।
वड दातार हमें बारू ने, दे इतरों बारोठ दियों ॥
प्रवाह करे पग पूजन, वड आवास छौल द्रव वेग ।
सिंधुर सात दोय दस सांसण, नागद्रहे दीधा इम नेग ॥
सहंस दोय महिसी अन सुरभी, कंचन करहां भरी कतार ।
रीझ दिया पांचसै रेवत, दससंहसा झोंका दातार ॥
पसाव देख जग कहियौ, अधपत यों दाखे इण ओद ।
सनमुख सपथ करे अड़सी-सुत, सौदां नह विरचै सीसोद ॥[2]

---

(१) वं० हि० मं०, कलकत्ता का संग्रह ।
(२) महाराणा यश प्रकाश : सं० भूरसिंह शेखावत ।

(ग) दयावीर—

दयावीरों के उदात्त कार्यों एवं विरुदों को लेकर अनेक गीतों का सृजन हुआ है। इस प्रकार के गीत-लेखक अधिकतर भक्त कवि कहे जा सकते हैं। चरण कवि ब्रह्मदास, रायसिंह साँदू, हरिदास मिश्रण, नृसिंहदास खिड़िया, राघवदास, कुं० रतनसिंह प्रभृति कवियों के इस प्रसंग पर कहे गये बड़े अनूठे और भावपूर्ण गीत उपलब्ध होते हैं। यहां पौराणिक आख्यान 'गज और ग्राह' की कथा पर आधारित गीत प्रस्तुत किया जा रहा है। इसमें गजराज आलंबन, उसकी दयनीय दशा उद्दीपन तथा आवेग, हर्ष आदि संचारी भाव हैं।

पकड़ खांचियो ग्राह पंड सकल डूबो परो, साकलां जुवल नांह कोई साथी।
प्रघल दाघ मांहे खल दाव लागो पको, हुवो जल मांह बलहीण हाथी॥
संत काज साधार अणवार सांपरत, सुणो दीन आधीन सोई।
निरखियो गयंद इण बार दूजो नहीं किसन विण उवारण हार कोई॥
वणी अधियांमणी ररो कहियो वयंड,, धाह कांनां सुणे ऊठि धायो।
वचाली धणी अरसूंड आधी बसत, अणी सम डूबतां धणी आयो॥
काढ़ वड़ फंद भाराथ जन मोकले, कहे ब्रमदास चक्र हाथ कीधां।
इला रख तांत वैकूंठ पर आवियो, लाछवर साथ गज-ग्राह लीधां॥[१]

(घ) धर्मवीर—

राजस्थान के धर्मवीरों में पाबू राठौड़, गोगा चौहान, ईसरदास मोहिल, सुजानसिंह शेखावत, राजसिंह मेड़तिया और जूंझार, रतनसिंह आदि के नाम प्रसिद्ध हैं। ये गोधन की रक्षा तथा मंदिरों की प्रतिष्ठा आदि के लिए वलि हुए थे। इस प्रकार के धर्मवीरों पर चतरा मोतीसर, बाँकीदास आसिया, भारतदांन, बुधा आसिया, जयमल बारहठ, माधवदास दधवाड़िया आदि के गीत बड़े सरस और प्रसाद गुण सम्पन्न है। उदाहरणार्थ सुजानसिंह शेखावत और राजसिंह राठौड़ जो कि क्रमशः खण्डेला और पुष्कर के मन्दिरों की रक्षा के लिए औरङ्गजेब की सेना का सामना कर काम आए थे, के सम्बन्ध में लिखा निम्न गीत पठनीय है। इसमें गीत नायक सुजाणसिंह और राजसिंह आलम्बन, मन्दिरों की रक्षा का भाव उद्दीपन, युद्धार्थ तत्पर होना व युद्ध करना आदि अनुभाव, और चपलता, आवेग, गर्व आदि संचारी भाव हैं।

---

(१) गज उद्धार ग्रन्थ (परम्परा, भाग १७) पृ० १०७

आया दल् असुर देवरां ऊपर, कूरम कमधज एम कहै ।
ढहियां सीस देवालो ढहसी, ढह्यां देवालो सीस ढहै ।।
मालहरौ, गोपालहरौ मंढ़, अड़िया दुह खागां अणभंग ।
उतवंग साथ उतरसी अंडो, अंडा साथ पड़ै उतवंग ।।
स्याम सुतन पातल् सुत सजिया, निज भगतां बांध्यो हर नेह ।
देही साथ समाया देवल्, देवल् साथ समाया देह ।।
कुरम खंडेले कमध मेड़ते, मरण तणो बांध्यो सिर मोड़ ।
सूजा जिसो नहीं कोई सेखौ, राजड़ जिसौ नहीं राठौड़ ।।[1]

रौद्र रस—

वीर और रौद्र रसों में परस्पर मैत्री है, इसलिए रौद्र का वीर रस में अन्तर्भाव भी देखा जाता है । अत: वीर-रसात्मक गीतों की तरह इनका भी बाहुल्य पाया जाता है । रौद्र रस का चित्रण करने में कल्याणदास मेहडू, महाराजा बहादुर सिंह, बखता खिड़िया, कान्हा कविया, कुसला गाडण, रुघा मुहता, वीरभांण रतनूं तथा संग्राम सांदू आदि बड़े कुशल कवि हुए हैं । इनके गीत वस्तु स्थिति का सजीव चित्रण उपस्थित करने वाले हैं । राठौड वीर बलू गोपालदासोत ने नागोर के राव अमरसिंह के शव को आगरे में लड़कर प्राप्त किया था । तत्सम्बन्धी एक गीत यहां प्रस्तुत है, जिसमें बादशाह आलम्बन, राव अमरसिंह का मारा जाना उद्दीपन, बादशाह को ललकारना, केशरिया वस्त्र धारण करना, युद्धार्थ तत्पर होना आदि अनुभाव तथा उग्रता, चँचलता, उद्वेग आदि संचारी भाव हैं । क्रोध स्थायी भाव है ।

विजड़ ऊठियो गिरमेर रो बहादुर, इसो अवसांण म्हें कदी पावां ।।
अम मेलां नहीं जावतो, एकलौ, आगरा लड़ण म्हें कदी आवां ।।
अमे राठौड़ राजां तणां ऊमरा, जुड़ेवा पारकी छटी जागां ।
बलू पातसाह सूं बोलियो बराबर, मारवा राव रो बैर मांगां ।।
केसरां मांहे गरकाव बागा करै, सेहरा बांध हलकारां साथे ।
अमर रौ वैर चोथै पर उछल्यो, बलू नै आगरो हुआ बाथे ।
पटो नांखे परो सह सूं चटा पड़ी, कौम रे कैंट सचे कुमायो ।
वालियो वैर वैरां तणे बहारू, अमर मुंहडे हुए सुरग आयौ ।।[2]

---

(१) रा० शो० सं०, जोधपुर का संग्रह ।
(२) राजस्थानी-वात-संग्रह: सं० नारायण सिह भाटी ।

भयानक रस—

भयानक रस के गीतों क प्रसिद्ध रचयिताओं में पहाड़खांन आढ़ा, अज्जा भादा, पूरा मेहारिया, पंचायण कविया और वाघा भाट के नाम उल्लेखनीय है। यहां जोधपुर के महाराजा अभयसिंह और अहमदावाद के विद्रोही सूवेदार सर विलन्दखां के पारस्परिक संग्राम पर रचित पहाड़खांन आढ़ा का एक गीत उदाहरणार्थ देखिए। इस गीत में महाराजा अभयसिंह आलंवन, युद्धार्थ सज कर आना उद्दीपन, सर विलन्द-खां के योद्धाओं की स्त्रियों का करुण क्रन्दन अनुभाव, चिन्ता, आवेग, त्रास, दीनता आदि संचारी भाव हैं।

> सझे प्रवल् घमसांण अभमाल सरविलन्द सू , गाहिया रोदां गजूमी।
> सवल चिराम जोखां सुं कंत संपेखे, अवल् गोखां दिये धाह ऊभी।।
> ग्रहे खग अमदावाद दूजे गजे, हुवांयां खाग गज चाड हुंके।
> झलल् चख छवी मरयर री मालियां, कलतयर जालियां वीच कूके।
> इतरघर सघर भखियां खल् छडालां, सिधुरां सहत राठौड़ सूरे
> घण् तसवीर आं देखखण खण घड़ी, झरोखां खड़ी पर नार झूरे।
> घरै विय जोस महाराज मुरधर धणी विचत्र घन हणी मंड लोह वाहे।
> तको देखं छवी जोतदांना तणी महल कुरलं धणी मंडप मांहे [1]

वीभत्स रस—

रणस्थल के वर्णन में गीतकारों ने प्राय: वीभत्स रस का भी अच्छा वर्णन किया है। युद्ध-वर्णन सम्वन्धी वड़े गीतों में प्राय: रौद्र, वीर, भयानक तथा वीभत्स रसों का वर्णन करने की परम्परा-सी रही है। रतनसिंह ऊदावत सम्वन्धी गीत के निम्नलिखित तीन द्वालों में वीभत्स रस का उदाहरण प्रस्तुत है। इनमें रतनसिंह आल म्वन, रुधिर और मांस का ढेर उद्दीपन, गृद्ध, कालिका, भूत - प्रेत आदि का मांस नोचना अनुभाव, मरण, आवेग आदि संचारी तथा घृणा स्थायी भाव हैं।

> हाकां वीर कह पुन हड़ हड़, रिण चामंड घण घेर रची।
> पलचर महरालां पंखालां, माचि झड़ापड़ि झाट मची।।
> भैरव भूत भचाक्क मेला, ग्रीधां लाधे राते ग्रास।
> खड़खड़िया कतियायन खाफर, उडियण गहकिया आकास।

(१) प्राचीन राजस्थानी गीत, भाग २, पृ० १६४

मड़हट मांस लोहि महमहियो, ग्रोधूला मिल गमे गमा ।
करकां ऊपरि हूबिया कोलू, साकण सावज हेक समा ।।[१]

वात्सल्य रस—

यद्यपि राजस्थानी गीत साहित्य वीर रस का सागर कहा जाता है, पर उसमें वात्सल्य रस की गंगा भी मंथर गति से बहती मिलती है। वात्सल्य भाव को लेकर मंछाराम सेवक, मुरारीदास बारहठ, किसना ग्राढा, भीमा ग्रासिया, ब्रह्मदास वीठू ग्रादि कवियों ने पर्याप्त गीत लिखे हैं। मंछाराम कृत रघुनाथ रूपक में से राम को वनगमन हेतु तैयार होते देखकर कौशल्या की भावना को व्यक्त करने वाला गीत यहां उद्धृत किया जा रहा है। इस गीत में श्री रामचन्द्र ग्रालम्बन हैं, वन-गमन की तैयारी उद्दीपन है, कौशल्या के वचन, साथ में चलने के लिए ग्राग्रह ग्रादि ग्रनुभाव है, चिन्ता ग्रातुरता ग्रादि संचारी हैं ग्रौर वात्सल्य स्थायी भाव है।

राघव ग्रादेस पाय दसरथ रौ, कवसल्या चै ग्राय कनै ।
दाखे राज भरथ ने देसी, मात दियो वनवास मनै ।।

सुत हुं तूझ चालसूं साथे, डील सुखन वन विकट डरै ।
छता ग्रवास साता छूटे, कवण जापता ग्रवर करे ।।

सीत मेह मारूत तप सहणों, राकस वले कंठीर रहै ।
विपन कठन रहणों रे वेटा, संकट भूख ग्रनेक सहै ।।[२]

शान्त रस—

जिस समय हिन्दी साहित्य में कबीर, तुलसी, सूर ग्रादि भक्त कवियों के काव्य में निर्वेद का स्वर मुखरित हुग्रा, उसी समय राजस्थानी साहित्य में भी ईसरदास, पृथ्वीराज, कान्हा बारहठ, ग्रलू कविया, चूंडा दधवाड़िया, सांया झूला ग्रादि कवियों ने शान्त रस के गीत लिखे। ग्रागे चलकर ग्रोपा ग्राढ़, रामसिंह सांदू, ब्रह्मदास वीठू, हरिदास मिश्रण, नृसिंहदास खिड़िया, सन्मानसिंह, किसान ग्राढ़ा ग्रादि के बहुत से गीत इस विषय पर मिलते हैं। उदाहरणार्थ प्रस्तुत, निम्न गीत में संसार की ग्रसारता ग्रालम्बन, संसार के झंझट उद्दीपन, संसार के वन्धनों के त्याग की तत्परता ग्रनुभाव दैन्य, ग्लानि ग्रादि संचारी भाव ग्रौर निर्वेद स्थायी भाव हैं।

---

(१) राठौड़ रतनसिंह री वेलि (परम्परा), भाग १४, पृ० ७८-८०
(२) रघुनाथ रूपक गीतां रो; सं० महतावचन्द्र खारैड़, पृ० १०२

दलड़ा समझ रे सगळो जग दाखै, पछै घणो पछतासी ।
पूरख जनम थूं कद पामेला गुण कद हर रा गासी ।।

मात पिता दौलत बंधव मद, सुत तरिया देख संदाणो ।
माया रा आडंबर मांहे, बंदा केम बंदाणो ।।

समझो क्यूं न अजे समझाणूं, भूल मती रे भाया ।
दौड़े ऊमर चटक्का देती, छित ज्यूं बादल छाया ।।

सोवै खाय करे नह सुकृत, खोवे देह खलीता ।
प्रीत करे समरो सीतापत, जके जमारो जीता ।।

(८) हास्य रस

डिंगल गीतो काव्य में हास्य रस के गीत वीर, वीभत्स, रौद्र आदि रसों के अनुपात में बहुत कम हैं। फिर भी गीत-विधा इस रस से सर्वथा अछूती नहीं कही जा सकती। हास्य-गीत-लेखकों में पहाड़खांन आढ़ा, महादांन मेहडू, जालिम सांदू, भीका रतनूं, ओपा आढ़ा, हिंगलाजदांन कवियों आदि के गीत अच्छे बन पड़े हैं। उदाहरणार्थ ओपा आढ़ा का गीत यहां प्रस्तुत है जिसमें देवगढ़ के कुंवर राघवदेव चूंडावत से बूढ़ी एवं दुर्बल घोड़ी प्राप्त होने पर कवि ने उसका उपहास किया है। गीत का आलम्बन कुंवर राघवदेव हैं, घोड़ी की पीठ, कान एवं वक्षस्थल की भद्दी आकृति उद्दीपन हैं चलने में शिथिलता आदि अनुभाव। अपना यह अश्वराज वापस संभाल लीजिए तो भी मैं मानूंगा कि आपने घोड़ा नहीं अपितु गजराज ही बख्शा है, आदि कथन संचारी और हास स्थायी भाव है।

धर पेंड न चाले माथो धूणै, हाकूं केण दिसा हैराव ।
दीधो सो दीठो राघवदे, पाछो ले तो लाख पसाव ।।

पांप्यां घाल्यो ओपा पूठै, कवियण कासूं खून कियो ।
ओ थारो धजराज अंवेरो, दत जांणूं गजराज दियो ।।

डाकण नखे न बाव अडोले, दीधां विके न देवे दांम ।
चंचळ परो लीजिये चूंडा, गज दीधो कांई दीधो गाम ।

चौड़ी पूठ सांकड़ी छाती, कुरड़ उघाड़ी लांबा कान ।
लाखां वातां पाछी लीजे, कुंवर न दीजे दांन कुदांन ।।[1]

---

(१) डिंगल गीत:सा० रि०, बीकानेर, पृ० ६६

(६) करुण रस

गीतों में करुण रस की अभिव्यक्ति पर्याप्त मात्रा में मिलती है, किन्तु यहां करुणा युद्ध में मारे जाने वाले बन्धु-बान्धवों के विछोह के रूप में प्रायः कहीं पाई जाती है। युद्ध में मारा जाना तो गर्व और गौरव की बात मानी गयी है। युद्ध का अवसर प्राप्त न होना तथा घर पर पांव पसार कर मर जाना ही करुणाजनक माना गया है। फिर भी गुणवान पुरुषों के विछोह पर उत्पन्न करुणा का सुन्दर चित्रण अनेक कवियों ने किया है। करुण रस के गीतकारों में गोपाल बारहठ, चैनकरण सांदू, गुलाब मेहडू, नगदांन खिड़िया, लखा बारहठ और स्वरूपदास आदि अनेक कवि हो चुके हैं। रतलाम नरेश बलवन्तसिंह के निधन पर गोपाल बारहठ ने बड़ा ही भावपूर्ण गीत कहा है। इस गीत में बलवन्तसिंह आलम्बन है और द्रव्य की थैलियां आदि का दान तथा कवियों का सत्कार उद्दीपन, शोकोद्रेक से छाती का फटना, हृदय का आन्दोलित हो जाना आदि अनुभाव हैं, स्मृति, चिन्ता, विषाद आदि संचारी भाव हैं और शोक स्थायी भाव है।

केई अलापत राग पात कीरती गावता केई,
सुणावता विप्र केई सभा में सलोक।
भलो भावी कळू तोने आवतां न लागी वेला,
प्राथीनाथ बळू तेस जावतां प्रलोक ।।
थंड देखे रंकां तणं उछाळवा वित्त थेलां,
सुदीठ मालवा रौर गाळवा सहीप।
फीलां सील चढ़ौ मारू प्रजा ने पालवा फेरू,
माळगा देस में पाछा पधारो महीप ।।
बैठो दरीखाने तीखचौख री करेवा बातां,
अनेकां ठौड री ख्यातां सुणेवा आजान।
दुसाला दंताला ताजी मदीलां दुपट्टा देवा,
रूपगां महोला लेवा पधारो राजान ।।
जोरावर कदी इंद अखाड़ै आवसी जांण,
लगावसी कदे खळां ताळवै लगाम।
रीझ वळो वळां कदे कसूंबा पावसी राजा,
हलोवलां कदे थावसी हंगाम ।।
फूटो लोह आभो धरा सुरेस को वज्र फाटो,
पेखे भूप जावो फाटौ जलालो पहाड़।

फेरूं कलपतरू हीरो अठारा ठौड़ सूं फाटो,
धणी जातां म्हारो हीयो न फाटो धिकार ।।
वसू पाछा आवो कहे हाड़ोती मांढ़ रा वासी,
दाखं ढूढाड़ रा वासी झूरे गामोगाम ।
कमंधेस वासी मारवाड़ रा चितारे केई,
त्यूं वासी मेवाड़ रा चितारे तमाम ।।
सेल ढावो छत्र धारां दहल्लां पड़ावो सत्रां,
किसे वाग त्यारी गोठां पहलां कहेस ।
भड़ां वाला फूटे हिया सहल्लां करेवा मूरा,
महल्लां पधारो पाछा विजाई महेस ।।[1]

अद्भुत रस--

वीर रसात्मक गीतों के कई चमत्कारिक स्थलों में अद्भुत रस के भी दर्शन होते हैं। जैसे मांस, मज्जा, और लोहू का अपरिमित प्रवाह होने पर भी मांसाहारी पक्षियों का भूखा रहना, मांस न खाना, योद्धाओं के वीरगति प्राप्त कर स्वर्ग-प्रयाण करने पर भी अप्सराओं को वर प्राप्त न होना आदि अनेक विस्मयोत्पादक वर्णन इसके उदाहरण हैं। दुरसा आढ़ा, महेसदास राव, जमना बारहठ, गोवर्द्धन बोगसा, आईदांन गाडण, किसना मादा आदि इस विषय के प्रसिद्ध कवि हैं। दुरसा आढ़ा का एक गीत यहां प्रस्तुत है जिसमें उस ने अकबर को लक्ष्मण का अवतार है अथवा अर्जुन का, दस सिरों वाले रावण का नाश करने वाला रामचन्द्र हैं अथवा कंस का संहार करने वाला कृष्ण है आदि कहकर विस्मय व्यक्त किया है।

वाणावलि लखण अरजण वाणावलि, सिर दस रोलण कंस संहार ।
सांसो भांज हमायु सामोभ्रम, अकबर साह कवण अवतार ।।
निगम साख मानुख गत काहीं, असपस कथ सांचो अणवार ।
वेधण भ्रमर के तूं झख वेधण, गिरतारण के तूं गिरधार ।।
जोगी परां करामत जोतां, आदम नहीं वडो कोई अंस ।
धूसण घणख क करण विधूसण, वंस रघु के तूं जदुवंस ।।
दाख दलीस कूण तूं इण में, अनन्त किनां नर प्रकट इहां ।
सायर बांधणहार दिलेसर, काली नाथणहार कहां ।।[2]

---

(१) बंगाल हिं० मं० संग्रह, कापी १४, नं० पृ० ७३-७४
(२) राजस्थानी भाषा और साहित्य: डा० मोतीलाल मेनारिया, पृ० १३६-१३७

इसमें बादशाह अकबर आलम्बन, लक्ष्मण, अर्जुन, राम और कृष्ण के विभिन्न चरित्रों में अकबर के कृतित्व को देखना उद्दीपन, संशय, हर्ष और वितर्क आदि संचारी भाव-हर्ष अनुभाव और विस्मय स्थायी भाव हैं।

भक्ति रस

भक्त कवियों ने भी गीतों को निःसंकोच अपनाया है। एक ओर उनके गेय पदों में भक्तिभाव की धारा प्रवाहित हुई है तो दूसरी ओर छंदोबद्ध रूप में अपना असीम अनुराग उन्होंने व्यक्त किया है। गीत-विधा इस विषय पर लिखे गए छंदों में अपना महत्व रखती है। भगवान की निर्गुण एवं सगुण भक्ति धाराओं के अतिरिक्त प्रकृति तथा पाबूजी, गोगाजी आदि लोक देवताओं में भी भगवान की सत्ता आरोपित कर उनकी स्तुति तथा गुणगान किया है। भगवान के विविध अवतारों के प्रति उनका यह अनुराग अनेक रूपों में प्रकट हुआ है। भक्ति-रस के गीत रचयिताओं में मथुरादास बीठू, करमाणन्द बीठू, नारायणदास, चूंडा दधवाड़िया, कान्हा बारहठ, कान्हा मोतीसर, चत्रभुज बारहठ, गुलाब आढ़ा, शक्तिदान छाछड़ा, हमीरदान मेहडू आदि उल्लेखनीय हैं।

महात्मा ईसरदास का एक गीत उदाहरणार्थ यहाँ उद्धृत है। इसमें दीनों के उद्धारक व भक्त-वत्सल भगवान आलम्बन विभाव, भगवान के अद्भुत कार्य एवं विरुद तथा गुणावली उद्दीपन विभाव, हर्ष, औत्सुक्य आदि संचारी भाव, गद्गद् वचन, भक्त को संसार से उबारने आदि का वर्णन अनुभाव तथा ईश्वरानुराग स्थायी भाव हैं।

मधा मात तूं तात तूं प्राण दीवाण तूं
सरब तूं सहोवर तूं सघाई।
सगो साजग सयण सांमि तूं सांमला,
करन तूं कुटंब तूं कृत कमई ॥
सांच संतोख तूं धरम तूं साजनां,
सहज तूं सील समाधि सोहा।
वास तूं सांस तूं विश्राम तूं वीठला,
मुकंद तूं मनमत्यरत्थ मोहा ॥
गइ तूं ग्रास गुर-ग्यान तूं गोविंदा,
गूभ गुण गौठ तूं गरुडगामी।

नाद तूं वेद तूं भेद तूं नारायण,
नेह तूं निद्ध तूं सहस नामी ।।
राग तूं रंग तूं रली रांमचन्द्र,
राज तूं रिद्धि रघुवंस राया ।
मत्र तूं तंत्र तूं मित्र तूं मांहरे,
मन्न तूं मोह तूं परम माया।।
दीन भगतां वछल दुसठ दाणव दलण
खता लागे नहीं पिता खोले।
आवियो हमें ऊवारि ते ऊवरे,
ईसरो जुगां जुगि तूझ ओले ।।[१]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि गीतों में जहाँ अनेक रस-धाराएँ प्रवाहित हुई, हैं वहां उनमें भावों की सबलता, अनेकरूपता और विलक्षणता भी दृष्टिगोचर होती है। इससे गीत रचयिताओं के गहन अनुभव और भाव-वैभव का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है।

[आ] अभिव्यक्ति पक्ष

गीतों के अभिव्यक्ति पक्ष पर प्रकाश डालने के उद्देश्य से यहाँ उनमें प्रयुक्त भाषा, शैली, अलंकार, छंद तथा वर्णन-वैशिष्ट्य आदि पर प्रकाश डाला जा रहा है :

[१] गीतों की भाषा

गीतों के अभिव्यक्ति पक्ष में भाषा का बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान है। गीत-साहित्य के अपने सुदीर्घ इतिहास के कारण तथा डिंगल के कवियों की अभिव्यक्ति का गीत छंद प्रमुख वाहन होने से भी उसमें डिंगल भाषा की प्रायः सभी विशेषताओंको देखा जा सकता है। यहां गीतों की कुछ भाषा-गत विशेषताओं पर संक्षेप में विचार किया जा रहा है।

शब्द चयन—

डिंगल भाषा का उद्भव अपभ्रंश से हुआ है और उसने अपभ्रंश भाषा की बहुत सी विशेषताओं को थाती के रूप में ग्रहण किया है। अतः प्राचीन गीतों में तत्सम शब्दों की अपेक्षा तभद्व शब्दों का प्रयोग अधिक मिलता है। गीत-रचना

(१) प्राचीन राजस्थानी गीत, भाग १२, पृ० ८-९

को ज्यों-ज्यों विस्तार मिलता चला गया है, उनमें छल (युद्ध), वरिदल (योद्धा), रिणवट (क्षत्रियत्व), दूवी (चारण कवि), गजवोह (युद्ध), लंकाळ (सिंह), पंगी (कीर्ति), रूक (तलवार), सावळ (भाला), ओडग (ढाल), रेस (त्रास), आच (हाथ), कड़ियाळ (कवच), सूंक (रिश्वत) जैसे अनेक देशज शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं।

अनेक शब्द ऐसे भी मिलते हैं, जिनसे राजस्थान की संस्कृति पर प्रकाश पड़ता है, जैसे—वाहर[1] (वित्त ले जाने वाले लुटेरों का पीछा करना), सांसण[2] (चारणों आदि को दान में दी हुई भूमि), घूमर[3] (राजस्थान का एक नृत्य विशेष) निमंत्रिहार[4] (विवाह आदि अवसर विशेष पर आमंत्रित लोग), लाख पसाव[5] (चारण व भाट आदि कवियों को दिया जानेवाला अनुमानित एक लाख रुपये की कीमत का पुरस्कार) आदि-आदि।

अकबर के शासन-काल में मुगल संस्कृति का प्रभाव राजस्थान पर बहुत अधिक पड़ा था। यहां के शासक-वर्ग का सीधा सम्बन्ध शाही साम्राज्य से होने के कारण अरबी व फारसी के अनेक शब्द यहां प्रयुक्त होने लगे। कई शब्द तो गीतों में इतने घुल-मिल गए हैं कि वे डिंगल-भाषा के ही जान पड़ते है। निम्नलिखित पंक्तियों में इस प्रकार के शब्दों का नमूना देखा जा सकता है—

(१) फते पाइ जंगां धकाई पातसाही फौजां।[6]

(२) मोंहकमा सुतन फिरगांण लोपे हुकम्म,
कहो हिंदवांण सायाल काला।
जांणता जिसां अहलांण आया नजर,
उदेभांण चहुंवाण दाला।[7]

(३) खंडेले नहीं हणूं गोविंद खाग-बंद,
बखत इण खेतड़ी नहीं बखतौ।

---

(१) सूर बाहर चढ़े चारणां सुरहरी। (गीत पाबूजी राठौड़ री)
(२) सिंधुर सात दोय दस सांसण,नागद्रहै दीया इम नेग। (गीत राणा हमीर री
(३) घूमर कीयां मीर घड़ा। (राठौड़ रतनसिंह री वेलि)
(४) निमंत्रीहार अयार निसासहि। (वही)
(५) दीधौ सो दीठौ राघवदे,पाछौ ले तो लाखपसाव। (गीत राघवदे चूंडावत री)
(६) गोरा हटजा (परम्परा भाग २). पृ० ११०
(७) गीत कोठारिये रावत जोधसिंह रौ: रा० शो० सं०, जोधपुर का संग्रह।

विसाऊ नहीं स्याम तालाविलंद,
रिमाकर दिखातो भुरज रखतो ॥[1]

जव से अंग्रेज लोग यहां के सम्पर्क में आए, कुछ अंग्रेजी शब्दों को भी यहां के कवियों ने अपना लिया था। अंग्रेजों और स्थानीय शासकों आदि के बीच जो संघर्ष हुआ है, उस पर लिखे गए गीतों में अंग्रेजी शब्दों को डिंगल की प्रकृति के अनुसार प्रयुक्त किया है। कुछ उदाहरण नीचे की पंक्तियों में देखिये :—

(१) लाट जनराल जनरैल करनैल लख,
जाट रै किलै जमजाळ जुड़िया ।[2]

(२) सैन रिजमंट असंख पलटणां तणै संग ।[3]
(३) कंपणी सूं वेध मोटै जाणियां पालटै किलो ।[4]
(४) आउवो खायगो फिरंगाण री अजंट ।[5]

राजस्थान के सीमावर्ती प्रान्त पंजाव में प्रयुक्त हंदा, हदी, हंदो आदि विभक्तियों का वहुत कम प्रयोग गीतों में हुआ है, परन्तु तैडा, साढे जैसे शब्द कहीं-कहीं अवश्य दिखाई पड़ते हैं—

(१) महाराज तीन लोक तणा घणी तैडा मीत ।[6]
(२) सैवगु वांसै आवे साढ़े खवजड़ रूक धणियाणी ।[7]

मराठी भाषा के परसर्गों के कुछ रूप चा, ची, चे, चौ, भी अनेक गीतों में प्रयुक्त हुए हैं। उनके उदाहरण निम्नलिखित पंक्तियों में देखिए—

(१) देवळ जाहि सिखर चा देवळ ।[8]
(२) पेज पहलाद घण ची पाळतै ।[9]

---

१. गीत सेखावाटी रे सरदारां री, गोंपालदान खिड़िया री कह्यो ।
२. गोरा हटजा (परम्परा भाग २), पृ० ५८
३. वही ।
४. वही, पृ० ६३
५. वही, पृ० ७१
६. अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, वीकानेर: गुटका नं० ६८
७. पिंगल सिरोमणी (परम्परा भाग १३) पृ० १६५
८. महादेव पारवती री वेलि: रावत सारस्वत, पृ० २२
९. प्राचीन राजस्थानी गीत: कविराव मोहन सिंह, भाग १२, पृ० ७८

(३) प्रतपै अजानबांह इंद चे प्रताप ।[1]

(४) जे नर धन धन जमदारे रे, सीता चौ सांम संभारै रे ।[2]

अप्रचलित शब्द—

डिंगल के कुछ विशेष शब्दों को कवि लोग कई शताब्दियों तक प्रयोग में लाते रहे है, परन्तु वे १६ वीं शताब्दी में अप्रचलित होने लग गये थे। आधुनिक राजस्थानी में उनमें से अधिकांश शब्द प्रयुक्त नहीं होते, न ही उनका अर्थ आसानी से जाना जा सकता है। कुछ विशिष्ट शब्द इस प्रकार हैं।

धणीमाळ, घड़ीभिड़, भीच, गल्लवर, हंसाळ, चत्राल, अंकुसमुख, कंधालघुर, झटसार महिखजीह, रख्यातण, घजरूप, करडन्ड, सागरअंबेरा, रण मन्डल, छिवमल, अभ्रमारग, जळनिवाण, अश्वमुखा, कूमार, अग्रग्राव जेस्टसुर, जोगांण, अखंडल ढीलढाळी, फीणनांखतो, जडाग, हीर, कायालज, कांमधीठ, लौहलाट, वायुविरोधी भौमिबळ, गूढपग, खगांधर, रोलवंव, सौरंभवर, लांगळ, मेघपुसप, अजमीढ़, किरमीर, मनऊंच, करताळीक, खेंग, हेयाट, गैतूल, समीक, तिलकमारग, ऊंगल, परन्ध्री, वालस, घखपख, कुसलापांए सासनभ, चंचरच, धजाखगेस, निगद रतन, पाथोध, पव्बेमाळ आदि आदि।

कहावतें, मुहावरे आदि—

कहावतों व मुहावरों का अधिक प्रचलन किसी भी भाषा की सम्पन्नता को प्रकट करता हैं। डिंगल भाषा इस दृष्टि से धनी जान पड़ती है क्योंकि गीतों में अनेक स्थलों पर कई प्रकार की कहावतों, मुहावरों व कहावती पद्यांशों का प्रयोग किया गया है, जिससे उनमें अर्थ-गौरव और चमत्कार आगया है। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं—

(१) घुड़लो कितियक वार घूमसी, फोड़ण वाळा लार फिरे ।[3]

(२) बीस कोड बीसलदे वाळी पड़गी ऊंडे पाणी ।[4]

(३) लोह तणी तरवार न लागै, जीभ तणी तरवार जसी ।[5]

(४) जतन कियां तन उपजै जोखो ले ले कियां न डाकण लै ।[6]

---

१ पिंगल सिरोमणी (परम्परा भाग १३) पृ० १७०

२ रघुवर जस प्रकास: सीता राम लालस, पृ० २२६

३. राजस्थानी: रा० रि० सो०, कलकता, भाग ३ पृ० ३४

४. वही, पृ० २४

५. वही पृ० १०३

६. गीत सहसमल राठौड़ रो: रा० प्रा० प्र० जोधपुर का संग्रह ।

मुहावरे—

(१) गणै तन पारका कुंभ गैली ।[1]

(२) भमैं नव नाड़ियां बीच भंमरो ।[2]

(३) अलख री पलक में कियो थें अंधार । [3]

(४) धूत ठेल हैजमां उधारी लैतो नथी धापै । [4]

कहावती पद्यांश (फ्रेजेज़)—

(क) वीर के लिए—

अणी रो भंवर, अप्सरा री आसिक, कंवारी घड़ा रो लाडो, वैरियां तणो वाहरू, पराया नीर वाल़णो, गहली रो कळस, सती रो नारेल़, गाहड़ रो गाडो, कीरत रो कोट, कांम रो कोट, सरणायां साधार, सिंघ रो साव, रण रो रसियो, सूरां रो सेहरो, उरसाल आदि ।

(ख) दानी के लिए—

आथ रो बांटणहार, दूजो करण; लंक लुटावणहार, लाख वरीसणहार, छिलतो महराण, माया रो मांणगर, मंगत रो माळवो आदि ।

(ग) धर्म-रक्षक के लिए—

धरम रो वेड़ो, गौ दुज प्रतपाल़, धरमधुज, धरम री पाज, आदि ।

(घ) नारी सौन्दर्य के लिए—

किरत्यां रो झूमखो, हेली झल़, आभे री वीज, सांवण री तीज, मोतियां री लडी, सांवण री झड़ी, रूप री रास, कांम री कल़ा, पूनम रो चांद, रस री खान, जीव री जड़ी, हिया रो हार, सोल़वो सोनों आदि ।

शब्द शक्ति—

गीतों में अभिधा, लक्षणा और व्यंजना तीनों ही प्रकार की शब्द-शक्तियों का प्रयोग मिलता है । जहां-जहां मुहावरों का प्रयोग हुआ है, वहां सहज ही लक्षणा के दर्शन हो जाते हैं । व्यंजना का प्रयोग ईसरदास, पृथ्वीराज राठौड़, किसना आढ़ा, बांकीदास,सूर्यमल्ल मिश्रण आदि की गीत-रचना में प्रचुरता के साथ हुआ है । राठोड़ पृथ्वीराज कृत वेलि में से उदाहरणार्थ एक छंद प्रस्तुत है—

गुण—

---

(१) गोरा हटजा (परम्परा भाग २), पृ० १२३

(२) वही, पृ० ११२

(३) गीत हमीर रतनू रो कह्योः सा० सं०, उदयपुर का संग्रह ।

(४) पिंगल सिरोमणी (परम्परा भाग १३), पृ० १५५

आंगलि पित मात रमन्ती आंगणि,
काम विरांम छिपाडण काज ।
लाजवती अंगि एह लाज विधि,
लाज करन्ती आवे लाज ।।

गुण—

विषयानुसार प्रसाद, माधुर्य और ओज तीनों गुण गीतों में देखे जा सकते हैं। शान्तरस और नीति सम्बन्धी गीतों में प्रसाद गुण, शृंगार और वात्सल्य विषयक गीतों में माधुर्य तथा वीररसात्मक गीतों में ओज की प्रधानता है। डिंगल भाषा अपने ओज—गुण के लिए प्रख्यात है, क्योंकि उसमें वीररसात्मक साहित्य बहुत बड़े परिमाण में लिखा गया है परन्तु भाषा में ओज लाने के लिए गीतकारों ने ट, ड,ढ,द,ड़ जैसे वर्णों का प्रयत्न पूर्वक प्रयोग कर ओज पैदा नहीं किया है। यद्यपि इस प्रकार के शब्द वीररसात्मक काव्य में प्रयुक्त हुए हैं तथापि गीतों की ओजपूर्ण भाषा के पीछे वर्णों के यथोचित संयोजन की अद्भुत कला ही मूल रहस्य है ! 'आं' प्रत्यय, द्वित्तवर्ण और अनुस्वार भी ओजगुण में बड़े सहायक सिद्ध हुए है। ओज गुण निम्न गीत में देखिए—

उमंग धारियां अगांम निहंगां तोलतो आलच,
रौलतो निखंगा नेजां कीधां चौल रंग।
चापड़े डांखियौ सीह डौहतां मतंगां चंगा,
पमगां डोहतो जंगा मोहनो पतंग ।।
खेलतो अखेला-खेल झेलतो बाहतो खगां,
श्रोण भू रेलतो भुजां उलालिये सेल।
जूजेवेरां पेलतो अफेरां; भड़ां जूथ,
ठेलतो आंवेरां मेघाडं बरां अठेल ।।
केवाणां ऊनागां वागां झालियां डाकते काछी,
गाजे छोह छकाते पनाग भडां गांज।
राड़ीगारो वीर अंगी बुधा रो अभंगी राव,
भूरो जंगी हौदां चंगी घड़ा भांज।[1]

गीतकार ओजपूर्ण शैली में वीरगीत रचने में निपुण होते थे, जिससे भाषा की ओजपूर्ण गमक उनके मस्तिष्क में छाई रहती थी। अतः शृंगार जैसे मधुर विषय पर लिखते समय भी उनके मस्तिष्क में स्थिर ओज की छाया अनजाने ही

१. राजस्थानी साहित्य का मध्यकाल (परम्परा भाग १५-१६), पृ०, ३३९

कई स्थलों पर पड़ जाया करती थी। राठौड़ पृथ्वीराज जैसे रससिद्ध कवि की रचना में भी इस प्रकार के कुछ स्थल खोजे जा सकते हैं। यथा:—

अवलंब सखि कर पगिपगि ऊभी,
रहती मद वहती रमणि।
लाज लोह लंगर लगाए,
गय जिम आणी गय गमणि॥[1]

द्वित्त वर्णों व अनुस्वारों का प्रयोग—

कवियों ने गीतों के अनेक स्थलों में विशिष्ट वातावरण की सृष्टि करने के उद्देश्य से द्वित्त वर्णों तथा अनुस्वारों का प्रयोग डिंगल भाषा की खूबी को ध्यान में रखते हुए किया है। यहाँ यह बात भी अस्वीकार नहीं की जा सकती कि ऐसे प्रयोग करते समय कुछ शब्दों को कवियों ने तोड़ा-मरोड़ा भी है। द्वित्त वर्णों के प्रयोग निम्न लिखित पद्यांश में देखिए—

(१) चौचट्टां घूमट्टां सुभट्टा व्है लट्टां, चट्टां
आछट्टां विकट्टां भट्टां पाछट्टां केवांण।
खेंग अरोमें गै थट्टां में उलट्टां पलट्टां खेलै।
डोहे जट्टां-जूट घट्टां छट्टां भट्टां डांण॥[2]

अनुस्वार का प्रयोग—

अट्टल दाणव पटल मड्टल संघट का गुरं।
लांगड भांगड हणू जांगड सोल सांमत संवरं॥
जर जोध लखमण अंगद हणमंत जामवंत गवायक।
कुंभेण जुट्टं करग तूट्टं महामट्टं सायकं॥[3]

सश्लेषण व विश्लेषण की प्रवृत्ति—

भाषा की संश्लेषणात्मक तथा विश्लेषणात्मक प्रवृत्ति का जहाँ तक प्रश्न है गीतों में ये दोनों ही रूप प्रयुक्त हुए हैं। १७वीं शताब्दी तक के गीतों की भाषा का झुकाव संश्लेषणात्म प्रवृत्ति की ओर रहा है तथा उसके बाद की भाषा विश्लेषणात्मक अधिक है। संश्लेषणात्मक भाषा में ए, आं, ऐ, एँ प्रत्यय प्रायः काम में लिए गए हैं। इनके उदाहरण इस प्रकार हैं—

---

(१) वेलि क्रिसन रुकमणी री : ठाकुर और पारीक, छंद, १६७
(२) राजस्थानी साहित्य का मध्यकाल (परम्परा भाग १५-१६), पृ० ३३६
(३) गीत श्री रांमजी रो, माले बारहठ कह्यो।

१ दंपतिए आलिंगनं दीधा, आलिंगन देखे घर आभ ।[1]
२ परणाई अवर रायहर अवरां ।[2]
३ दूजै किणी न दीना दान ।[3]
४ तैं दीधा कलियांण तण ।[4]

भाषा की विश्लेषणात्मक प्रवृति में के, केरो, तण, तणा, तणी, तणौ, चा, ची, चे, चौ, हू, तांई, सूं, सारू आदि परसर्गो का प्रयोग हुआ है इस, प्रवृति के अनेक उदाहरण अन्यत्र कई प्रसगों में उद्‌धृत किए जा चुके है ।

संक्षिप्त रूप—

गीत की भाषा में लय, ध्वनि-साम्य तथा वैणसगाई लाने के उद्देश्य से या पुरुष के नाम महत्ववाची बताने के लिये अनेक शब्दों के संक्षिप्त रूप कर देने की प्रवृत्ति भी पायी जाती हैं । ये रूप कालान्तर में भी प्रयुक्त होते रहे हैं । संक्षिप्त रूप प्राय: अक्षर अथवा वर्ण के लोप से हुए हैं । कुछ उदाहरण देखिए:—

रायसिंघ (रासो), माधवसिंघ (माधो), हयवर (हैवर), गयवर (गैवर), सैयद (सैद) महार्णव (महण), त्रिविक्रम (टीकम), जगदीश (जगीस), मदोन्मत (मैमंत) । नामों में लघुकरण की प्रवृत्ति डिंगल की एक विशेषता कही जा सकती है ।

परिनिष्ठित रूप—

राजस्थान के विभिन्न क्षेत्रों में लिखे जाने पर भी गीतों की भाषा में एकरूपता परिलक्षित होती है, जिससे यह सिद्ध होता है कि स्थानीय बोलियों के भेद भाषा की परिनिष्ठता में लुप्त हो गए हैं । जोधपुर, बूंदी, उदयपुर, अलवर आदि क्षेत्रों में लिखे गए गीतों की भाषा में प्रयुक्त क्रियाओं, परसर्गो, अव्यय, सर्वनामों आदि में सर्वत्र एकरूपता है । इस तथ्य की पुष्टि के लिए बांकीदास, सूर्यमल, किसना आढ़ा और शिवबक्स पाल्हावत के गीतों को देखा जा सकता है ।

भाषा के इस परिनिष्ठित रूप को बनाए रखने में गीतों के विशिष्ट शब्द-विन्यास (डिक्शन) का भी बहुत बड़ा उपयोग रहा है । उच्च कोटि के वजनदार शब्दों का प्रयोग किया जाना प्रभावोत्पादक गीत-रचना के लिए उत्तम समझा जाता

(१) वेलि क्रिसन रुकमणी री :(पृथ्वीराज): सं० आनंदप्रकाश दीक्षित, छंद २०२
(२) महादेव पार्वती री वेलि: स० रा० रि० इ०. बीकानेर, पृ० २६
(३) दयालदास री ख्यात भाग २. सं० डा० दशरथ शर्मा, पृ० १०५
(४) वही ।

जाता था ।[1] अतः अनेक साहित्यिक शब्द व उनके पर्याय कवि लोग प्रायः कण्ठस्थ कर लिया करते थे । इस प्रवृति का परिचय हमें १६वीं शताब्दी में निर्मित डिंगल के अनेक छंदोबद्ध कोशों से मिलता है। १७वीं शताब्दी के आरम्भ में निर्मित पिंगल सिरोमणी छंद-ग्रंथ के एक अध्याय में डिंगल शब्दों का संक्षिप्त कोश भी दिया गया है।[2] जिससे भली-भांति विदित होता है कि विशिष्ट शब्दों को स्मरण कर लेने की परम्परा यहां काफी लम्बे समय तक रही है। इस प्रकार के कोशों के शब्द-भंडार का कुछ अनुमान लग सके इस आशय से एक उदाहरण यहां प्रस्तुत करना अवांछनीय न होगा । महादेव का नाम—

संकर हर श्रीकंठ सिव उग्र गंगधर ईस,
प्रथमा ध्रप कैलासपत गिरजापती गिरीस ।
भव भूतेस कपालभ्रत उमयायष्ट ईसान,
धूरजटी भ्रड व्रखमधज सरवरित सुछांन ।
सिभू त्रंवक ससिखर संध्यापत समसर,
परम पिनाकी पसुपतो त्रिलोचन त्रपरार ।
वोमकेस वाहणव्रखभ नीलकंठ गणनाथ,
स्मासानरेता डमरूकर सूलपांण ससमाथ ।
क्रतघंती विखयंतक्रत म्रत्युंजय महादेव,
गिरीस कपरदी परमगुर सिघेसुर जगसेव ।
अष्टमूरती अज अकल उरधलिंग अहिग्रीव,
कपरदीस खलवधकर जगतेसुर जगजीव ।
दहनमनोज क्रसांनद्रग मंसम जटेस मवेस,
विस्वनाथ रुद्रवामसर परभ्रत तपस महेस ।
विरूपाक्ष दईतेंद्रवर व्रतधुंसी अंधकार,
भीम सदासिव तमभवी दिगवासा दातार ।
लोहितमाल विसालद्रग अजसुत खंड अनंत,
(सुख मुकतीदाता सदा भव मुर लोक भुजंत)।।[3]

उपरोक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि गीतों की भाषा में डिंगल की कितनी ही विशेपताएं देखने को मिलती है। गीतों की भाषा अपने

(१) लाख रा ठाकरां तणा माथा लुळै, आखरां तणां री गजवोह आगे ।
(गीत डिंगळ री तारफे रो नवला लाळस)
(२) पिंगल सिरोमणी (परम्परा भाग १३), पृ० १४५-१५०
(३) डिंगल-कोश : सं० नारायण सिंह भाटी, पृ० ६२

आप में इतना विस्तृत तथा गहन विषय है कि वह स्वतंत्र रूप से अध्ययन तथा विश्लेषण की अपेक्षा रखता है, ऐसी स्थिति में हमने उसकी कुछ विशेषताओं को प्रकट करते हुए संक्षेप में ही उनका विवेचन किया है।

(२) गीतों में शैली

विशाल डिंगल गीत-साहित्य अनेक प्रकार की शैलियों में विभिन्न कवियों द्वारा रचा गया है। गीत-रचना में प्रभावोत्पादकता लाने तथा रस-उत्कर्ष के उद्देश्य से अनेक प्रकार की शैलियों का सफलता के साथ निर्वाह किया गया है। प्रमुख शैलियों पर यहाँ सोदाहरण प्रकाश डाला जा रहा है।

प्रबंधात्मक शैली :

यद्यपि अधिकांश गीत-साहित्य मुक्तक रूप से ही लिखा गया है, परन्तु कुछ कवियों ने गीतों के माध्यम से प्रबंधात्मक रचनाएँ भी की हैं। कुछेक छंद-शास्त्रों में भी गीतों के लक्षण समझाने के उद्देश्य से भगवान राम तथा कुछ ऐतिहासिक पात्रों का जीवन-वृत्त प्रबंधात्मक रूप में वर्णित है, परन्तु ये ग्रंथ छंद-शास्त्र की दृष्टि से लिखे गये हैं। अतः प्रबंधात्मक मौलिक गीत-रचना की दृष्टि से उनका उतना महत्त्व नहीं है। प्रबंधात्मक रचनाएँ भी दो प्रकार की उपलब्ध होती हैं—दीर्घ तथा लघु। दीर्घ रचनाओं में 'वेलि क्रिसन रुकमणी री' औरं 'महादेव पारवती री वेलि' को लिया जा सकता है तथा लघु रचनाओं में राठौड़ रतनसिंघ री वेलि, देईदास जैतावत री वेलि, राउ रतन हाडा री वेलि, राणा उदैसिंघ री वेलि, जोरजी चांपावत री झमाल आदि उल्लेखनीय हैं। वैसे ये रचनाएँ वर्णन-प्रधान हैं, परन्तु इनमें कथा का तारतम्य भी पाया जाता है और इनमें पाठक पर एक समग्र प्रभाव छोड़ने की शक्ति है।

मुक्तक शैली :

मुक्तक शैली गीतों की प्रधान शैली है, यह प्रारम्भ में ही कहा जा चुका है। चरित्र-नायक की जीवन-सम्बन्धी घटना-विशेष या किसी चारित्रिक विशेषता को लेकर प्राचीन पात्रों पर हजारों गीत लिखे गये हैं। ये गीत प्रायः तीन-चार द्वालों (पदों) में पूरी बात कहकर समाप्त हो जाते हैं। कुछ वर्णनात्मक गीतों में अधिक द्वालों की संख्या भी देखने को मिलती है। एक मुक्तक में एक भाव अथवा बात को सफलता के साथ व्यक्त करना उसकी विशेषता मानी जाती है। इस विशेषता का सफल निर्वाह अधिकांश गीतों से हुआ है। राजस्थानी में जिस प्रकार मुक्तक शैली के लिये दोहा बहुत उपयुक्त माध्यम माना गया है, उसी प्रकार गीत को भी अत्यधिक महत्व दिया गया हैं।

मारवी रीति :

कविराजा मुरारिदान ने गीतों में जथाओं के निर्वाह को मारवी रीति कहा है।[1] इन जथाओं का स्थान छंद-शास्त्रियों ने गीतों में महत्त्वपूर्ण माना है, यह तीसरे अध्याय मे ही बताया जा चुका है। अधिकांश जथाओं की सामान्य विशेषता एक ही भाव को गीत के प्रत्येक द्वाले मे कलात्मक ढग से दोहराना है। अतः जिन गीतों का निर्माण विभिन्न जथाओ के अनुसार हुआ है, उनमे इस प्रकार की शैलीगत विशेषताए जथाओ के लक्षणो के अनुरूप आ गई हे।

संवाद-शैली :—

सवादात्मक शैली के प्रयोग से काव्य में एक प्रकार की नाटकीयता और नवीनता आ जाती है। कुछ गीतों मे इस शैली का सुन्दर प्रयोग देखने को मिलता है। कवियों ने यह सवादात्मक ढग न केवल दो पात्रों को लेकर अपनाया है, अपितु अचेतन में भी चेतना का आरोप कर उनके बीच संवाद करवाए हे, जिससे गीत में प्रभविष्णुता आ गई है। एक उदाहरण यहाँ प्रस्तुत है।

समंद पूछियो गंग सूं रूप पेखे सुजल,
वहे जनना किसूं नवल वांने।
ऊजली धार पततांह घड़ आछटै,
मैलियों रातड़ी नीर मानै॥
महोदध पूछियो कहो भो सहस–मुख,
जमुन की नवो सिणगार जुड़ियो।
भाण रे लौह सुरताण घड़ मेलियों,
चलोवल पंड भो पूर चडियो॥[2]

पत्र-शैली :

कही कही गीतो मे पत्र शैली के भी दर्शन होते हैं। पत्र शैली को अपनाने से इस प्रकार की रचनाओ मे विशेष ढग की आत्मीयता आ गई है, जो इस शैली का बहुत बड़ा गुण है। उदाहरणार्थ कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत ह :—

सिव श्री महाराज अजा जोधपर सथानै,
जसा रा जोध जुग कोड़ जीज्यो।
कविण री पदमण घणी ओलूं करै,
सो देस मुरधरा घणी सीख दीज्यो॥[3]

---

(1) जसवंतजसोभूषण, पृ० १४३–१४४
(2) प्राचीन राजस्थानी गीत, सा० सं०, उदयपुर, भाग–१, पृष्ठ ५२
(3) शोधपत्रिका, उदयपुर, वर्ष १२, अंक ४ पृष्ठ ७७

सम्बोधन-शैली :

गीतों का मुख्य उद्देश्य वीरों को देश और धर्म की रक्षा के लिए जागृत करना और शत्रुओं से लोहा लेने के लिए योद्धाओं को उत्साहित करना रहा है। यहाँ के कवियों ने अनेक वार संकट आने पर वीरों को ललकारा है, जिसके लिए उन्होंने सम्बोधन-शैली का प्रयोग प्रायः किया है। उदाहरणार्थ गीत की कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य है :—

डांण ठेले तूं मातंगा मंडां डाचरा उजाड़ डाकी
मूंछां तांण पैले तूं कंपनी गंजै माल् ।
काट थाणो रेलै तूं स्रयण जमी जौल खाथै,
खसतो खपाणां माथै झेलै, खुसाल् ॥[1]

स्वोक्ति शैली :—

कुछ गीतों में कवियों ने स्वोक्ति शैली को भी अपनाया है। कवि ने स्वयं गीत-नायक के मुख से उसके भावों को इस प्रकार के गीतों में कहलवाया है, जिससे गीत-नायक के चरित्र को विशिष्ट प्रकार की अभिव्यक्ति मिली है। चिमनसिंह चांपावत के मुँह से कहलवाई गई पंक्तियाँ पढ़िए :

चित सुध अमो पयंपे चिमनो,
ऊपर खड़ आया अरवंद ।
खौलै धन मगरा बल् खाधौ,
गल्ै बिकी वांधौ गिरयंद ॥[2]

अर्थवाद शैली :

अर्थवाद मीमांसकों का पारिभाषिक शब्द है, जिसका प्रयोग प्रशंसात्मक रूप में किया जाता है, सैद्धान्तिक रूप में नहीं। डिंगल कवियों ने भी अपने वीरों तथा आश्रयदाताओं की प्रशंसा अर्थवाद पद्धति पर की है। इस प्रकार के प्रशंसात्मक गीत बहुत बड़ी संख्या में लिखे गये हैं, जिनमें गीतनायक के कार्यों के यथातथ्य संयमित वर्णन-क्रम और अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन अधिक मिलते हैं। इस श्रेणी के गीत अनेक स्थलों पर हम उद्धृत कर आए हैं।

व्यंग्य शैली :

इस शैली के प्रयोग से काव्य की अभिव्यक्ति में एक विशेष प्रकार की वक्रता आ जाती है, जो गीत को प्रभावोत्पादक बनाने में सहायक होती है। व्यंग्यात्मक

(1) गीत खुसालसिंघ आउवा रो (गोरा हट्जां)। पृ० ११०
(2) गोरा हटजा (परम्परा) भाग—२ पृ० ६४

शैली का एक उदाहरण डूंगरपुर राज्य के सामंतों पर कहे गए गीत की कुछ पंक्तियों में देखिए :—

मूंघा हालरा उगैर, अथा पालणैं खिलाया माता,
पोखै केण कारणैं, जिवाया थांने पीय ।
लोकां—लाज धारणैं, फिरंगी हूंत भाट लेता,
जेर खाय धणी रै वारणैं देता जीव ॥[1]

उपालम्भ शैली :—

अवसर आने पर सत्य का उद्‌घाटन करना और अपने आश्रयदाता को भी खरी-खरी सुनाना चारण कवियों का एक विशेष गुण रहा है । उन्होंने अपने गीतों में युद्ध से भग जाने वाले, छलाघात करने वाले, कृपणता दिखाने वाले तथा अनुचित कार्य करने वाले लोगों को कटु उपालम्भ दिया है । एक उदाहरण यहाँ प्रस्तुत है, जिसमें नीम्बावतों के महंत की दगाबाजी बाँकीदास ने स्पष्ट शब्दों में व्यक्त की है—

माल खायो ज्यांरो त्यांरो रति हीयै नायो मोह,
कुबदी सूं छायो भायो नहीं रमाकंत ।
वेसासघात सूं कांम कमायो बुराई वालो,
माजनो गमायो नींबावतां रै महंत ॥[2]

उद्‌बोधन शैली :—

राजस्थान पर मुसलमानों, मरहटों तथा अंग्रेजों के अनेक आक्रमण हुए हैं । इन आक्रमणों में यहाँ के सहस्रों वीरों ने जूझ कर अपने प्राण दिये हैं । इस प्राणोत्सर्ग के पीछे यहां के कवियों की उत्साह-वर्द्धक वाणी बहुत बड़ी प्रेरणा थी । देश, धर्म अथवा समाज पर आपत्ति आते देख कवियों ने यहाँ के शासकों और वीरों का अपनी गीत-रचना के द्वारा उस आपत्ति का सामना करने के लिए आह्‌वान किया है । अंग्रेजों के बढ़ते हुए प्रभाव से सचेत होने के लिए कविराजा बांकीदास के उद्‌बोधन का उदात्त स्वर एक गीत में निम्न प्रकार व्यक्त हुआ है—

महि जातां चींचातां महला,
ए दोय मरण तणा अवसाण ।
राखो रै कींहिक रजपूती,
मरदां हिन्दू मुसलमाण ॥[3]

(1) गीत डूंगरपुर रै सामंतां रो, रा० शो० सं० जोधपुर का संग्रह ।
(2) गोरा हटजा (परम्परा भाग—२) पृ० ६३
(3) डिंगल गीत, सं० रावत सारस्वत, चंडीदान सांदू—पृ० ७५

इस प्रकार गीत-रचना में अनेक शैलियाँ अपनाई गई हैं, जो कवियों की भावाभिव्यक्ति के विभिन्न रूपों को समझने में सहायक हैं। विस्तार-भय से प्रमुख शैलियों के उदाहरण ही यहां प्रस्तुत किये गये हैं।

(३) गीतों में अलंकार

संस्कृत साहित्य में अलंकारों के संबंध में विशद विवेचन मिलता है। आचार्य दण्डी ने काव्य के शोभाकारक धर्मों को अलकार कहा है।[1] वामन के अनुसार अलंकार काव्य को उत्कृष्ट बनाने वाला है।[2] कटक कुंडल की भाँति अलंकार रस के उत्कर्ष-विधायक हैं।[3] अतः काव्य में अलंकारों का अपना महत्त्व है।

हिन्दी के रीतिकालीन आचार्यों में केशव, मतिराम आदि ने अलंकारों के महत्त्व को प्रतिपादित किया है। डिंगल के रीति-ग्रंथों में अलंकारों पर 'पिंगल सिरोमणी' के अतिरिक्त विशद विवेचन नहीं मिलता। लिखित ग्रंथों में भी अलंकारों पर संस्कृत आचार्यों के अनुसार ही विचार किया गया है।

डिंगल काव्य में और विशेषकर गीत-काव्य में वैण सगाई अलंकार का बड़ा महत्त्व है। यह अलंकार डिंगल कवियों की अपनी सूझ है। वैण सगाई का प्रयोग गीतों में प्रायः अनिवार्य रूप से हुआ है। क्रिसन रुकमणी री वेलि जैसे बड़े काव्य में भी राठौड़ पृथ्वीराज ने सर्वत्र इस अलंकार का निर्वाह किया है। यह अलंकार वस्तुतः शब्दालंकार ही है, जिसका मुख्य आधार अनुप्रास कहा जा सकता है। इसके महत्त्व तथा भेदोपभेदों पर द्वितीय अध्याय में प्रकाश डाला जा चुका है। अतः यहाँ पुनः चर्चा करना अनावश्यक होगा। यहाँ यह इंगित करना भी अपेक्षित है कि गीतों में जथाओं को बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। जथाओं में वर्णन की विशिष्ट विधि के निर्वाह के लिये अनेक अलंकारों का भी सहारा लिया गया है। अतः जथाओं का निर्वाह करते समय कई अलंकार अनिवार्य रूप से गीतों में प्रयुक्त हुए हैं।

सामान्यतया शब्दालंकार, अर्थालंकार तथा सम्मिलित अलंकार, तीनों ही प्रकार के अलंकारों के प्रयोग गीतों में मिल जाते हैं, परन्तु प्रायः देखा गया है कि बहुत बड़ी संख्या में गीत रचना करने वाले कवियों में से कुछ ही कवि विद्वान थे। काव्यशास्त्र के विधिवत् अध्ययन के अभाव में अधिकांश कवियों ने शब्दालंकारों तथा कुछ सादृश्यमूलक अलंकारों के प्रयोग से ही संतोष कर लिया है। वैसे गीत-रचना की सामान्य परिपाटी के अनुसार गीत-लेखक घटनास्थल पर भी गीत-रचना

---

(१) काव्यशोभाकरान् धर्मान् अलंकरान् प्रचक्षते : काव्यादर्श।
(२) काव्यशोभायाः कर्तारो गुणा : तदतिशयहेतवश्चालंकाराः का० लं० सूत्र०
(3) रसादीनुपकुर्वन्तोऽलङ्कारास्तेऽङ्गदादिवत् : साहित्यदर्पण।

करके उसी समय श्रोता को प्रभावित करने के लिये सुनाया करते थे, जिससे नाद-सौन्दर्य के निर्वाह की ओर ही उनका ध्यान अधिक रहता था। अलंकारों की सूक्ष्मता को प्रयोग में लाकर कलात्मक अभिव्यक्ति देना ऐसे अवसरों पर संभव भी नहीं था, जिसके फलस्वरूप स्वाभाविक रूप से अल्पसंख्यक अलंकारों का प्रयोग ही इस प्रकार क रचनाओं में देखने को मिलता है। अलंकारों का सुन्दर तथा यथोचित ढ़ंग से प्रयोग राठौड पृथ्वीराज, करमसी सांखला, कविराजा दांकीदास, हुकमीचन्द खिड़िया, सूर्यमल्ल मिश्रण, किसना आढ़ा (दूसरा) आदि विद्वान कवियों की रचनाओं में अवश्य मिलता है।

गीतों में शब्दालंकारों के अन्तर्गत अनुप्रास, यमक, श्लेष आदि के प्रयोग अधिक हुए हैं और अर्थालंकारों में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति, स्वभावोक्ति, आक्षेप, विरोधाभास, संदेह आदि के।

उपमा और रूपक आदि अलंकारों में अनेक कवियों ने स्थानीय विशेषताओं का रंग भरकर अपनी मौलिकता का भी प्रदर्शन किया है। सादृश्यमूलक अलंकारों के लक्षणों में यह वात स्पष्ट हो जायेगी। यहा पहले-पहल शब्दालंकारों को हम लेते हैं :—

शब्दालंकार

शब्दालंकारों के विभिन्न प्रयोगों के उदाहरण निम्न प्रकार हैं—

वृत्यनुप्रास—

(क) कहो किसन करता करणाकर, कमला कंत कोपाया काल
केसव केस कोपणा कमल कान्हों कूड़ तणां कोदाल ॥[1]

ब्रुत्यनुप्रास—

(क) सिहण डसण तण नयण वयण सिवं ।[2]
(ख) हूक बल् फलल् दल् हुवा हल् ।[3]
(ग) सुराल् नराल् व्याल् आल् पाल् ढ़ाल् सञ्
सियाल् अकाल् काल् छाल् वेद साख ।[4]

---

(1) पिंगल सिरोमणी (परम्परा, भाग १३) पृ० १७६
(2) राठौड़ रतनसिंघ री वेलि (परम्परा, भाग १४) पृ० ४०
(3) डिंगल गीत : रा० रा० रि० इ०, बीकानेर, पृ० १०३
(4) रघुवर जस प्रकास : रा० प्रां० प्र०, जोधपुर, पृ० ३१८

लाटानुप्रास—

(क) वीर हाक डाक चडी डमरु कराल् जागा,
रौखंगी कराल् वागा नैजा झाल् रूप ।
वागा खाल् श्रेणी गंजा गीधां चा पंखाल् वागा
रूकां निराताल् वागा प्रलैकाल् रूप ।।[1]

(ख) जम लगै कठै मैं सीस जियां,
तन दासरथी नित वास तियां ।
तन दासरथी नह वास तियां,
जम लगसी माथै जोर जियां ।।[2]

छेकानुप्रास—

(क) नाग खग दध हरी हर विरंच नाथ ।[3]
जांणी सहि वहि जुड़ता जोड़इ ।[4]

यहाँ प्रथम पंक्ति में नाग खग में "ग" की, हरी हर में "ह" और "र" की, दूसरी में सहि वहि मे "ह" और जुड़ता जोड़इ में "ज" तथा "ड़" की आवृत्ति है ।

अन्त्यानुप्रास :—

यह अलंकार झमाल, सावझड़ा, मुणाल, जयवंत, वसंतरमणी, पालवणी और गौरव जातीय गीतों में अनिवार्यतः होता है । यहाँ कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

सर्वान्त्य—

(क) खग वल् जो पितु खाटियो, दूठ दातियो देस ।
पाट अडिग परताप रै, वाजे नृप वसतेस ।।
वाजे नृप वसतेस, कल् मझि करण सो ।
अरक वंस उजवाल, पाल् खट-वरण मो ।।
पातां लाख पसाव, दुरद सांसणां दिया ।
करि केता कविराज, कवि अवरी किया ।।[5]

---

(1) राजस्थानी साहित्य का मध्यकाल (परम्परा, भाग—१५—१६) पृ० ३३३
(2) रघुवर जसप्रकास, रा० प्रा० प्र०, जोधपुर, पृ० २२२
(3) वही, पृ० १९४
(4) महादेव पारवती री वेलि : सा० रा० रि० इ०, बीकानेर पृ० ७३
(5) अलवर री झमाल : शिवबक्स पाल्हावत, पृ० १, छंद सं० २

(ख) सिया वहर समर रमागण साझा,
द्रवी उछाहर दीन निवाजा।
दींठा थाहर कनक दराजां,
रीझ खीझ जाहर रघुराजा ॥[1]

(ग) लछी रा चहन घण धीतवालां लटट,
क्रोध ममता नता मूढ़ तज रे कपट।
झोड़ मत कर अवर काल लेसी झपट,
रांम रट रांम रट रांम रट रांम रट ॥[2]

विषमान्त्य—

(क) लोह विमूह रतनसी लाडे,
खत्रि मारग गिण जग खरै।
कावल फेरे घड़ां कावली,
हठिमल मरणो मूर हरै ॥[3]

यमक—

(क) विधूसण इहव की गत वखत नूं,
वखत तिण राजड़ा तुंहीज वूझै।[4]

(ख) निवाबां आछटे घाव खीज रा केहरि नंद,
सलाव वीज रा चद वांज रा सारीख।[5]

(ग) गरवाण छाड़ जहुआर गया,
कया रण-छोड रण छोड़ कहता।[6]

(घ) हंस जिम हंस जगमाल हाले सगह।[7]

(ङ) कहरी केहरी पणों कांधी।[8]

---

(1) रघुवर जस प्रकास, रा० प्रा० प्र०, जोधपुर, पृ० २१६
(2) वही, पृ० २१६
(3) राठौड़ रतनसिंघ री वेलि (परम्परा, भाग–१४) पृ० ६२
(4) राठौड़ों के डिंगल गीत : बं० हि० मं० कलकत्ता का संग्रह, कापी १४
(5) रा० शो० सं०, जोधपुर का संग्रह
(6) श्री सोभाग्यसिंह शेखावत का संग्रह
(7) गीत जगमाल सीसोदिया री, रा० शो० सं० जोधपुर का संग्रह
(8) राठौड़ों के डिंगल गीत, बं० हि० मं० कलकत्ता का संग्रह, कापी १४

पहले गीतांश में वखत का अर्थ क्रमशः वखतसिंह तथा समय से है। दूसरे में वीज का अर्थ क्रमशः विजली तथा द्वितीया से है। तीसरे में रण छोड़ का अर्थ क्रमशः युद्धस्थल छोड़ना तथा कृष्ण भगवान से है। चौथे में हंस का अर्थ क्रमशः मराल तथा प्राण से है। पांचवें में केहरी का अर्थ क्रमशः गीत-नायक केसरीसिंह तथा सिंह से है।

श्लेष :

(क) मांझी अवर मुंड़ता मडियो,
तू तेगां पाधर रणताल्।[1]
(ख) दल्पति कोई न दूजो वरदलि।[2]
(ग) जोम आडै लागो चौड़ै धाड़ै झड़ि वीजूजलां।[3]
(घ) जोध तणं घरि वींद जोवती।[4]
(ङ) जोनेल कंवारी धड़ां, छैल केल माथै छुटो।[5]

उपरोक्त गीतांशों में क्रमशः रणताल का रणभूमि और रणवेला, वरदलि का दूल्हे का दल और वरावरी वाले, आड़ै का हठ ठान कर और ओट वनकर, जोध का योद्धा और जोधा की संतान, तथा केल् का क्रीड़ा और युद्ध अर्थ हैं।

अर्थालंकार

रूपक :

गीतों में सादृश्यमूलक अलंकारों का वाहुल्य है। रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा आदि अलंकार गीतकारों की अभिव्यक्ति के सशक्त एवं प्रिय साधन रहे हैं। रूपक रचने की परम्परा की ओर काव्य-कौशल की दृष्टि से भी विशेष झुकाव दृष्टिगोचर होता है। रूपक को गीत का पर्याय भी कहा गया है,[6] जो गीतों में रूपक रचने की विशिष्ट परम्परा की ओर इंगित करता है। युद्ध-वर्णन में नवीन चमत्कार लाने तथा अपने पांडित्य का प्रदर्शन करने के लिए प्रतिभा-सम्पन्न कवियों ने वीसों प्रकार के रूपक रचे हैं। राठौड़ पृथ्वीराज की वेलि में ही अनेक प्रकार के रूपक देखने को मिल जाएंगे।

---

(1) प्राचीन राजस्थानी गीत, भाग १, पृ० ६७
(2) राठौड़ रतनसिंघ री वेलि (परम्परा, भाग १४) पृ० ३२
(3) प्राचीन राजस्थानी गीत, भाग १, पृ० १०६
(4) राठौड़ रतनसिंघ री वेलि (परम्परा भाग १४) पृ० ३५
(5) गोरा हटजा (परम्परा, भाग २) पृ० ८३
(6) चौरासी रूपक, अठारै पुरांण; चवदै शास्त्र, वेद च्यार का बखांण : बांकीदास ग्रंथावली, भूमिका पृ० ११

युद्ध वर्णन करते समय नायक को दूल्हा,[1] गरुड़,[2] हंस,[3] कलाल,[4] लुहार,[5] सुथार,[6] सुनार,[7] किसान,[8] माली,[9] धोबी,[10] सिंह,[11] बाराह,[12] कालीयनाग,[13] हाथी,[14] गोवर्द्धनधारी कृष्ण,[15] दर्जी,[16] चक्की,[17] योगी,[18] बादल,[19] वर्षा,[20] विवाह,[21] आदि के उपकरण लेकर रूपक के द्वारा युद्ध का चित्रण किया गया है। योद्धा को दूल्हा, प्रतिपक्षीय फौज को दुलहिन मानकर रूपक की रचना करना डिंगल कवियों को विशेष प्रिय रहा है। 'राठौड़ रतनसिंघ ऊदावत री वेलि'[22] इसका सुन्दर उदाहरण है।

---

(1) गीत अर्जुन गौड़ रौ; सौभाग्यसिंह शेखावत का संग्रह
(2) गीत महाराव भीमसिंह हाडा रौ : वं० हि० मं०, कलकत्ता का संग्रह, कापी–२
(3) गीत पंचायण करमसोत रौ, सीताराम लालस का संग्रह
(4) गीत जगतसिंह राठौड़ रौ, अ० सं० ला०, बीकानेर का गुटका, सं० १३८
(5) गीत जोरावरसिंह खींवसर रौ; सीताराम लालस का संग्रह
(6) गीत महाराव किशोरसिंह हाड़ा रौ : वं० हि० मं० कलकत्ता का संग्रह, कापी-२
(7) गीत प्रेमसिंह जोधा रौ, सीताराम लालस का संग्रह
(8) गीत लालसिंह राठौड़ बड़ली रौ : वं० हि० मं०, कलकत्ता का संग्रह–२
(9) बांकीदास ग्रंथावली, भाग ३, पृ० ३६, छंद १४
(10) गीत शिवाजी मरहठा रौ : वरदा वर्ष ४, अंक २, पृ० २८
(11) गीत महारावराजा उम्मेदसिंह बूंदी रौ (परम्परा भाग १५–१६), पृ० ३३८–३९
(12) गीत नवलसिंह दांता रौ, सौभाग्यसिंह शेखावत का संग्रह
(13) गीत महाराव शेखा कछवाहा अमरसर रौ, सा० सं० उदयपुर का संग्रह
(14) गीत हाथीसिंह सोढ़ा रौ, सीताराम लालस का संग्रह
(15) गीत महाराव प्रतापसिंह नरूका रौ, सा० सं०, उदयपुर का संग्रह
(16) गीत महाराणा अमरसिंह प्रथम रौ, सीताराम लालस का संग्रह
(17) गीत राव करमसिंह सीसोदिया रौ, अ० सं० ला० बीकानेर का संग्रह ग्रंथांक-७१
(18) गीत दुर्गादास राठौड़ रौ, रा० शो० सं०, जोधपुर का संग्रह
(19) गीत मोहबतसिंह खवा रौ : वं० हि० मं० कलकत्ता, कापी १४
(20) गीत महाराजा बहादुर सिंह किशनगढ़ रौ, रा० शो० सं० जोधपुर का संग्रह
(21) गीत अजीतसिंह हाड़ा बूंदी रौ, रा० शो० सं०, जोधपुर का संग्रह
(22) राठौड़ रतनसिंघ री वेलि (परम्परा, भाग १४)।

रूपक के सभी भेद गीतों में मिल जाते हैं, पर सावयव रूपक में कवियों की मौलिक सूझ-बूझ का अच्छा दिग्दर्शन हुआ है। इसलिये यहां उदाहरणार्थ तीन सांग रूपक प्रस्तुत किये जाते हैं :—

(क) किसान का रूपक—

पौह कीरत बीज खेत रजपूतौ, दाह सत्रां उर खाद दियो।
हल भालौ करतां वड़ हालौ, करसण आरंभ गजव कियो॥
कांकल प्रघल वाहणी काढ़ै, महपत सवल घणां कल मांण।
सत्रहर डगल किया सह सूधा, दल चांवर फेरे दइवांण॥
अरि अलियो जड़ हूंत उपाड़ै, साकुर धोरी हांक सिर।
ल्हास करै फौजां वड़ लंगर, कीध निनांणी समर कर॥
लंगर वंध दूल्हावत लाला, सुपह दात परसाकर सार।
सर डूंचण दोख्यां रण सरसा, वड़ करसा झोका इणवार॥
पाहड़ हरा अवर कुण पूगै, जग थारां हासल री जोड़।
रस आई जांणी रजवाड़ा, रजवट री खेती राठौड़॥[1]

(ख) हंस का रूपक—

मोताहल कमल चुणंतौ मांझी, असमर मुंह साझतौ अर।
पै लीलंग पंचायण पैठी, सेर तणै दल नानत्तर॥
साह आलम घड़ सगत सरोवर, यह घड़ ठहतो पोयमण।
करमसीहोत राजहंस रुमियो, रिम रै खग चुगातौ रतन॥
मुख किरमाल मेछ घू माणक, संग्रहतौ हरतो समर।
पावासर अरि सेन पंचायण, पैठौ घीरत तणी पर॥
रंभ झूलणै कमल दल रौदां, दीखी घड़ मझ देख दिखाल।
प्रिसंणा सीस चुगे पांणीहंड, पुंहतौ हंस चढ़ै सुरपाल॥[2]

(ग) माली का रूपक—

अलक डोरि तिल चड़स वौं, निरमल चिबुक निवांण।
सींचे नित माली समर, प्रेम वाग पहचांण॥
प्रेम वाग पहचांण, निरन्तर पाल हौ।
ग्रीवा कंबु कपोत, गरब्बां गाल हो॥
कंठसरी वहु कंति, मिली मुकताहला।
हिंडुल नौसर हार, जलूस जलांहलां॥[1]

---

(1) वं० हि० मं०, कलकत्ता का संग्रह कापी १४

(2) डिंगल गीत सं० रावत सारस्वत, चंडीदान सांदू पृ० ५१.

उपमा

उपमा के तीन भेद माने गये हैं, पूर्णोपमा, मालोपमा तथा लुप्तोपमा। इन तीनों भेदों के ही उदाहरण निम्न प्रकार हैं :—

पूर्णोपमा—

(क) लांगड़ो कपी ज्यूं रांम लायो लड़े,
लड़ै जिम जुहारो भ्रात लायो।[2]

(ख) कुकवि वयण ज्यूं रावल कीधा,
संवला ग्रांवला पिसण सरीर।[3]

मालोपमा—

(क) धू जिसा अडिग नै सैर जैह वेवड़ा,
जिके काविल सुपह जातिवंत जमजड़ा।
कसै मूथां कंकांण जैह वंकड़ा,
खाग ग्रहे रतनसी दुवारि मुगलां खड़ा॥[4]

(ख) पच मुख गज पनग दांमणी पावक,
गिड़ज हण सायर गिरमेर।
इता पराक्रम रहै अेकठा,
सांप्रत किसन तणीं समसेर॥[5]

लुप्तोपमा—

(क) वेणी डंड जिसउ विराजइ वांसउ।[6]

(ख) जादव धड़ भड़ किया ज जुवा,
गुण हीणा कवि तणा गुण।[7]

---

(1) बांकीदास ग्रंथावली तीसरा भाग; ना० प्र० स०, काशी पृ० ३६
(2) गौरा हटजा (परम्परा भाग २), पृ० १२३
(3) गीत जाम रावल री : अ० सं० ला०, बीकानेर पोथी १३८
(4) राठौड़ रतनसिंघ री वेलि : (परम्परा भाग १४) पृ० १०१
(5) पिंगल सिरोमणि (परम्परा भाग १३), पृ० १५८
(6) महादेव पारवती री वेलि : सा० रा० रि० इ०, बीकानेर, पृ० २५
(7) गीत ईसरदास बारहठ रचित: अ० सं० ला०, बीकानेर, पोथी १३८

उत्प्रेक्षा—

(क) ज्वाला जेठ री जेहडी जगी बीज मेघमाला जांणै ।[1]
(ख) जम्भी रोस रण जाग आदति रसम्भां जांणै ।[2]
(ग) छौलां उपटै रतंगा पतंगा जांणै ।[3]
(घ) मानूं नारखों विरंगी कालो घड़ा माथै,
भूप डूंगै विधूंसी फिरंगी वाली भोम ।[4]
(ङ) मनु गुलाब बिच मोहर उदर नाभी इसी ।[5]

संदेह—

(क) इखु पाथरी क वज्र सुरांनाथ रौ भलूल् ओग,
सूल रुद्र हाथ रौ क बज्र मूल् सार ।
घूरम्भी छै माथ रौ क कोल् छौ दाघ रौ घाव,
चूरवी माराथ रौ क वाघ रौ चौधार ।।[6]
(ख) ताप मारतंड री क पंड रो सस्त्र तवां,
हूह कछ खड रौ क हाथ पांय हूंत ।
त्रसूल् चामंड रौ क अलारा चकू रौ तेज,
काल् रौ प्रचंड रौस क आग भाल् कूंत ।।[7]
(ग) किनां संभू रौ उफाल् रौस काल् रौ पियाल्रो किनां ।[8]

भ्रान्ति—

(क) तरण रथ थकत गण वहै सांगा ततर,
अडर डर वरण वरवरै अवरी ।
पड़ै धड़ गज नन कहै इम पंचानन,
गजानन कठै रण सोध गवरी ।।
सरविलंद तंडल् दल् कमल् गज सम्हालै,

(1) राजस्थानी साहित्य का मध्यकाल (परम्परा भाग १५-१६), पृ० ३५८
(2) वही ।
(3) वही ।
(4) वही ।
(5) अलवर री भमाल् : रा० शो० सं०, जोधपुर का संग्रह ।
(6) राजस्थानी साहित्य का मध्यकाल (परम्परा भाग १५-१६), पृ० ३५८
(7) वही ।
(8) शोध पत्रिका, वर्ष १५, अंक २, पृ० १३४

सगत कहियो कुसल् नाह सुणरै ।
दोय दंत दोय भुज नहीं हर लंबोदर,
अेक दंत चार भुज चहन उणरै ॥[1]

(ख) देखि भरियो मंजार दधि, पय भोलै पी जाय ।[2]

(ग) विजपाल जुतें सीस विड़ंते, झाट खड़ग दीन्ही जुंझार ।
पिंडि हंस अंख पड़तां, वैखे हंसागमणि संभाल् हारि ॥[3]

(घ) वनिता कमल् बांधि गल् विढ़तै हिलोलियो जु धीर हरै ।
डरी तैण पारवती देखै, रखै कमाली अेम करै ॥[4]

उल्लेख—

(क) ऊगां विण सूर जेहवौ अंबर, दीपक पाखै जिसौ दुवार ।
पावस विना जेहवी प्रथमी, सांगा विण जैहवौ संसार ॥[5]

(ख) वाणावलि् लखण अरजण वाणवलि्, सिर दस रोल्ण कंससंधार ।
साखौ भांज हुमायू समोभ्रम, अकबर साह कवण अवतार ॥[6]

(ग) गुण गन्ध ग्रहित गिलि् गरल्, ऊगलि्त, पवण वाद ए उभय पख ।
स्रीखंड सैल संयोग संयोगिणी, भणि विरहिणि भुयंग भख ॥[7]

(घ) ग्रहिया मुखि मुखा गिलि्त उग्रहिया, मूं गिणि आखर ए मरम ।
मोटां तणौ प्रसाद कहै महि, ऐठो आतम सम अवम ॥[8]

दृष्टान्त—

(क) मारवाड़ ऊपर फिरंगी मिल्, परदल् घोड़ा खड़ै न पास ।
सिवपुर हूंता दूर सहेतो, सूर बगल काढ़ै सपतास ॥[9]

(ख) खांचै नितंब पयोहर खांचै, उभै, चपां विचि निवल् अरि ।[10]

---

(1) राठौड़ों के गीत : वं० हि० मं०, कलकत्ता का संग्रह, कापी १४
(2) अलवर री कमाल् : रा० शो० मं०, जोधपुर का संग्रह ।
(3) गीत विजै देवड़ै रौ; अ० सं० ला० बीकानेर. पोथी १३७
(4) गीत जगमाल सोनीगिरा रौ : अ० सं० ला०, बीकानेर, पोथी १३७
(5) डिंगल गीत: सा० रा० रि० इं०, बीकानेर, पृ० ६७
(6) वही, पृ० ७१
(7) किसन रुकमणी री वेलि : सं० रामसिंह, सूर्यकरण, छंद २६४
(8) वही, छंद ३००
(9) गोरा हटजा (परम्परा भाग २), पृ० ७७
(10) राजस्थानी भाषा और साहित्य: डा० हीरालाल माहेश्वरी, पृ० १६४

(ग) गहमरिया गजराज, संभारा खुल्लिया।
पाबासर री पाल् हंस थकि हल्लिया ॥[1]

(घ) मोतिए विसाहण ग्रहि कुण मूंकै, एक एक प्रति एक अनूप।
किल सौभण मुख मूभ वयण कण, सुकवि चालणीं न सूप ॥[2]

अत्युक्ति —

(क) अणी जटवाड़ वीरां तणी आकलै, विविध तीरां तणी मची बरखा।
कसम अंगरेज री आटपाटां हुई, पूरपाटां हुई रुधर परखा ॥[3]

(ख) अमावड़ वनां में हुई लौथां अनंत, चढ़ौ घोड़ा बात दिगंत चाली।
साथरा दिराणां साहिवां, खुरसियां हजारां हुई खाली ॥[4]

(ग) पातलहरा ऊपरां पराभव, खल् खूटा तूटा खड़ग।
पंडवनामी नीठ पड़ियौ, लग उगमण आयमण लग ॥[5]

(घ) थागियल् पूछियो भणौ भागीरथी, सांवला नीर किसां समोहां।
साह री फौज सगताहरे सीघलो, लाल रंग चढ़ियौ मार लौहां ॥[6]

(ङ) हल्ल् हेकल् जिहि दियंते चुण्डहर, ऊथल्-पाथल् हुई घरा आंणो ॥[7]

व्यतिरेक—

(क) सहंडी किसूं तांडव करै गिरां सर, नवे निध वरसणौ तही नव नेह।
छहें इंद्र दाखवं हेक रत छोलतो, छहै रत वहै जगराज अणछेह ॥[8]

(ख) दुर निहारै दंतड़ा, वाल्ल् दांमणियांह।
अति ऊजल् त्यां आगलो, की हीरा कणियांह ॥[9]

(ग) मधुर सुर मिरदंग क वीणा वाजवै।
इन्द्र अखाड़ै अछर लखै छवि लाजवै ॥[10]

---

(1) अलवर री झमाल्: रा० शो० सं०, जोधपुर का संग्रह।
(2) क्रिसन रुकमणी री वेलि : सं० ठा० रामसिंह, सूर्यकरण, पारीक, पृ० २६७
(3) गोरा हटजा (परम्परा भाग २), पृ० ५६
(4) वही, पृ० ६०
(5) प्राचीन राजस्थानी गीत : भाग १, सा० सं० उदयपुर, पृ० ४६
(6) वही, पृ० ५२
(7) देवकरण वारहठ इंदोकली (नागोर) का संग्रह।
(8) प्राचीन राजस्थानी गीत : कवि राव मोहनसिंह, भाग ३, पृ० ५५
(9) वांकीदास ग्रंथावली: सं० मुरारीदान, महतावचंद, भाग ३, पृ० ३४
(10) अलवर री झमाल् : रा० शो० सं०, जोधपुर का संग्र ।

आक्षेप—

(क) कलू मिटै न कंपू कंवणियां, इलू मान जितै न करै अणियां।
इलू मानो फरसी रण अणियां, कलू मिटर्म' कप फवणियां ।।[1]

(ख) झट तेग फिरंगी नंह झड़सी, गुमांन तणो जुध नह अड़पी ।
गुमांन तणो जुध जद अड़सी, झट तेग फिरंगी थट झड़सी ।।[2]

(ग) खड़ै न रांमो खेग खुरां, जद खड़सी रांमो खग खुगं।
त आयकन पायकन पायकन, आयकन पायकन फैल फरां ।।[3]

(घ) रांम न मिलयो रोदरड़ां, जद मिलमी रांमो रोदरड़ां ।
जव गाग न बीज न बीज नु गाज नु, डाज न बीज न गेंद गुड़ां ।।[4]

व्याजस्तुति—

(क) ओ थांरो धजराज अंवेरो, दत जांणू गजराज दियो ।[5]

(ख) चचलू परो लीजीये चूंडा, गज दीधो कांई दीधो गांम ।[6]

(ग) कलजुग रो करन दांन रो वीक्रम, वडां अकल री समंद वणे ।
तो वारे मेरा मेड़तिया, गुलू खलू मिसरी हेक गणै ।।[7]

(घ) मार भरतार न दीनों मोनू, जार मार दे गयो जरूर ।[8]

(ङ) त्रै जांणै विजो विढ़ण विध जांणै, जांणै नाद वेद गुण जांण ।
जिकूं अंक मगवाट न जाणै, अंकण नाकारै अणजांण ।।[9]

ध्वन्यर्थ-व्यंजना—

ध्वन्यर्थ—व्यंजना काव्यगत शब्दों का ध्वनि-बोधक अलंकार है। इसमें शब्द-ध्वनि के माध्यम से वस्तु अथवा घटना प्रसंग का साक्षात् वातावरण प्रतीत होने लगता है। डिंगल के विद्वान कवियों ने अपनी रचनाओं में इसका भरपूर प्रयोग किया है।

---

(1) राठौड़ों के डिंगल गीत : वं० हि० मं०, कलकत्ता का संग्रह, कापी १४
(2) वही ।
(3) पिंगल सिरोमणि (परम्परा भाग १३), पृ० १६६
(4) वही ।
(5) डिंगल गीत : सं० रावत सारस्वत, चंडीदांन सांदू, पृ० ६६
(6) वही ।
(7) रा० शो० सं०, जोधपुर का संग्रह ।
(8) प्राचीन राजस्थानी गीत संग्रहः सा० सं० उदयपुर का संग्रह ।
(9) अ० सं० ला० बीकानेर का संग्रह, पोथी सं० १३८, पत्रांक २०१

'संगीत' गीत में इस प्रकार की शब्दयोजना अनिवार्य है। उदाहरणार्थ दो स्थल द्रष्टव्य हैं—

(क) कड़क्कै लुकम्मी नालां भडक्कै गिरद काला,
सौह सूरां फडक्कै फौंफरा सांडोस।
पत्रांजे खड़क्कै पगी धड़क्कै कायरां प्रांण,
वड़क्कै उरैव छड़ा रड़क्कै भू सीस ।।[1]

(ख) फूट फिफरड़ कलिज भड़फड़
अंतड़ उधरड़ लोथ लड़थड़।
उलभ अखड़ रुंड रड़बड़ पल भड़पड़,
बीर वड़वड़ अछर अड़वड़ धरा धड़हड़ ।।[2]

पुनरुक्ति—

(क) गूद पल् भल् ग्रीभ गल् गल् करि कंदल् अतिजल् धनंख कुंडल् ।[3]
(ख) भोग विकल् त्रिया मन भेले घटि घटि आउध विघन घड़ी ।[4]
(ग) मणि मणि हड़ मांणिक्य डंड मीर ।[5]

इस अलंकार का प्रयोग त्रिकुट-बंध गीत में बहुधा होता है।

विरोधाभास—

(क) पदमण रिख असमांन पहूंती, पंखां विनां जिहांन पड़ीजै ।[6]
(ख) फेरी अफिरि फिरणी-सी फेरी ।[7]
(ग) वीर वड़ै तप वली अजेरां जेरसी ।[8]

विभावना—

(क) जोनी सरूप जगत सोह जायो, कनिया अकथ कहांणी ।[9]

---

(1) गौरा हटजा (परम्परा भाग २), पृ० ११६
(2) राजस्थानी साहित्य संग्रह: सं० पुरुषोत्तम मेनारिया, भाग २, पृ० ५६-६०
(3) रा० शो० सं०, जोधपुर का संग्रह।
(4) राठोड़ रतनसिंघ री वेलि : (परम्परा भाग १४), पृ० ७४
(5) वही, पृ० ७७
(6) रघुवर जस प्रकास : सं० सीताराम लालस, जोधपुर, पृ० २२७
(7) राठोड़ रतनसिंघ री वेलि (परम्परा भाग १४), पृ० ६०
(8) अलवर री भमाल : रा० शो० सं०, जोधपुर का संग्रह।
(9) पिंगल सिरोमणी (परम्परा भाग १३), पृ० १६५

(ख) महलायत उन्नति महा, अति सुथरी आरास।
करि विसक्रमा विनां, सजै इसी सुखरास ॥[1]

(ग) अजहूँ तरु पहप न पल्लव अंकुर, थौड़ डाल़ गादरित धिया।[2]

विषम—

(क) आज तो हूँत काल़ा घणौ ऊजल़ौ,
मुरधरा नर समंद विरुद मारू।[3]

(ख) कामे कंत ऊजल़े किए, लोह काटि सांमल़ां वहै।[4]

(ग) वीरावीर ऊजल़ा वीरम, तूं काल़ा अहराव तिसो।[5]

यथासंख्य—

(क) अडग तेज अणथघ सरद ग्यांन स्तुति आसतो,
नीभ वर कार वल़ जोग जप नांम।
थिर प्रभा नीर मय यंद बुध नीत थट,
मेर रवि समंद चंद भव ब्रहम रांम ॥[6]

(ख) महलां तल़ छलियौ महण, सागर जल़सर सार।
आवै मिल़ लंजा उठै, पणघट पर पणहार ॥[7]

(ग) आकरषण वसीकरण उनमादक,
परठि द्रवीण सोखण सर-पंच।
चिवणि हसणि लसणि गति संकुचणि,
सुंदरी द्वारि देहरा संच ॥[8]

मानवीकरण—

(क) अपजस चोर आसनो ना आवै, जस पोहरै जागै जगमाल।[9]

---

(1) अलवरी री भमाल़ : रा० शो० सं०, जोधपुर का संग्रह।
(2) क्रिसन रुकमणी री वेलि : सं० ठा० रामसिंह, सूर्यकरण पारीक, छंद २२४
(3) राठौडों के गीत : रा० शो० सं०, जोधपुर का संग्रह।
(4) पिंगल सिरोमणी (परम्परा भाग १३), पृ० १५६
(5) कृपाराम भादा रचित गीत, : वं० हि० मं०, कलकत्ता, कापी ५७
(6) रघुवर जस प्रकास : सं० सीतारांम लाल़स, पृ० १६४
(7) अलवर री भमाल़ : शिवबक्ष पाल्हावत, रा० शो० सं०, जोधपुर का संग्रह।
(8) क्रिसन रुकमणी री वेलि : सं० ठा० रामसिंह, सूर्यकरण पारीक, पृ० १७६, छंद १०६
(9) गीत जगमाल रौ : मौजी वीठू, अ० सं० ला०, बीकानेर, पोथी १३७

(ख) पड़ैं मार गोलां अलंग उड़ उड़ पड़ै, गयण रथ अड़वड़ै परी गैलां ।
किला मत डगमगै सूर जोगो कहे, परत मो जीवतां न थू पैलां ।[1]

(ग) पाताल् तठै वलि रहण न पाऊं, रिध मांडै स्रग करण रहै ।
भौ त्रितलोक रायसिंघ मारै, कठै रहूँ हरि दलिद्र कहै ।[2]

वीप्सा :

(क) हा ! हा ! दिए धरोधर हेला, पुरजन दिए प्रलाप ।
जिए जिके न जीए जाण जग, किए अनेक कलाप ।[3]

(ख) वाले अवल् सबल् दल् भूप बल्, जीय जीय मुख वाणि वखांणि ।[4]

(ग) सिव सिव सिव द्विज कहंत सकत, वदह न कांई बीजी वात ।[5]

(घ) विहूं अजान वाह थापै उथै पातसाह,
राखै उमै राह वाह वाह वाह ।[6]

सूक्ष्म :

(क) हैके सूं हैक मुलक पणिहारी, हंस-सुता-तट छांह बिहारी ।
है हिरणांखी कौतक हारी, हाल घरै हर हेरण हारी ।।[7]

(ख) मुलक जांनकी रांम लिछमण, भणियो दुवै स करम न भाई ।
राघव चरण दुवाय कृपाकर, तरण कीर सकुटंब तिराई ।।[8]

गूढ़ोक्ति :

(क) म्रगमद वेंदी भाल मझ, जाय छवि कहि कौन ।
निस अस्टम सनि रौ नखित, भयौ उदै ससि भौन ।।
भयौ उदै ससि भौन, वंक भ्रहवां वणी ।
नयणां अंजन नोक, अड़ी स्रवणां अणी ।।
नासा कीर सुक-मुक नास, समांण अधर बिंब ओपिया ।
पंकती हीर प्रमांण, रदन जनुं रौपिया ।।[9]

---

(1) गीत जोगीदास शेखावत रो : सौभाग्यसिंह शेखावत का संग्रह ।
(2) सेठ सूरजमल जालान पुस्तकालय, कलकत्ता, जिल्द सं० १
(3) गीत महाराजा जसवंतसिंह (द्वितीय) री, रा० शो० सं० जोधपुर का संग्रह ।
(4) राठोड़ रतनसिंघ री वेलि (परम्परा भाग १४), पृ० ६८
(5) महादेव पारवती री वेलि: सा० रा० रि० इ०, बीकानेर पृ० ८६
(6) पिंगल सिरोमणी (परम्परा भाग १३), पृ० १६७
(7) सौभाग्यसिंह शेखावत का संग्रह ।
(8) रघुवर जस प्रकास: रा० प्रा० प्र०, जोधपुर का संग्रह, पृ० २२८
(9) अलवर री झमाल् : शिवबक्स पाल्हावत, रा० शो० सं०, जोधपुर का संग्रह ।

(ख) हर री अणिमा सिद्धि, वरावर देहरी ।[1]

(ग) दसमो सालगराम स्वदेवत, दिन तिण पीठवै विरद दियो ।[2]

स्वाभावोक्ति :

(क) मुक्कै सैल धुकै धरा, दड़क्कै घड़ां सूं माया,
मुड़क्कै कायरां सूर वकै मार मार ।
फड़क्कै पीफरा रैणां धड़क्कै केवियां फौज,
धकै चाढ़ भाजे डरां घण सारधार ।[3]

(ख) राजान जान संगि हुंता जु राज,
कहै सु दीध ललाटि कर ।[4]

(ग) जरी तास जरदोज रा पड़दा अतलस पाट ।
हेम हलव्वी कांम हुय, काचां वर्णे कपाट ।।
काचां दर्णे कपाट, भली छवि मार री ।
दीपै दर दीवार, क जौति जुहार री ।।
झलमल झाड़ गिलास, विचै पड़ी वत्तियां ।
समै दीवाली सांज, रहै सव रत्तियां ।।[5]

(घ) कलकलिया कुंत किरण कलि ऊकलि,
वरजित विसिख विवर जित वाउ ।
घड़ि घड़ि धवकि धार धारू जल,
सिहरि सिहरि समखै सिलाउ ।।[6]

सम्मिलित अलंकार :

पंडित रामदहिन मिश्र के अनुसार अलंकारों का जहाँ सम्मिश्रण हो उसे सम्मिलित या संयुक्त अलंकार कहते हैं ।[7] उदाहरण प्रस्तुत है :—

---

(1) झमाल राधिका सिखनख वर्णन : वांकीदास ग्रंथावली, भाग ३, पृ० ३८

(2) चारण पीठवा कृत गीत, रा० शो० सं०, जोधपुर का संग्रह ।

(3) रा० शो० सं०, जोधपुर का संग्रह ।

(4) क्रिसन रुकमणी री वेलि : सं० टा० रामसिंह, सूर्यकरण पारीक, पृ० १५१

(5) अलवर री झमाल : शिवबक्स पाल्हावत, छंद १४

(6) वेलि क्रिसन रुकमणी रीः सं० आनंद प्रकाश दीक्षित, पृ० २५, छंद ११६

(7) काव्य-दर्पण : पंडित रामदहिन मिश्र, पृ० ४२३

लाय घर अंबर दाय जांणै अड़ी,
खड़हड़ी दाय जांणै अड़ी खीज ।
कहर सरकूंज रावल् जड़ी कटारी,
बीज ऊपर पड़ी दूसरी बीज ॥[1]

उपरोक्त पंक्तियों में उपमा और उत्प्रेक्षा का सम्मिश्रण है ।

गीतों में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि सादृश्यमूलक अलंकारों का प्रयोग अधिक देखने को मिलता है । वर्णन में चित्रोपमता लाने के लिए इस प्रकार के अलंकार विशेष सहायक होते हैं, यही इन अलंकारों की अधिकता का मुख्य कारण कहा जा सकता है ।

अत्युक्ति अलंकार का प्रयोग भी युद्ध-वर्णन सम्बन्धी गीतों में अधिक हुआ है । अपने गीत-नायक की वीरता को अन्य योद्धाओं की अपेक्षा कहीं श्रेष्ठ बताने की मनोभावना के कारण यह अलंकार कवि लोग सहज ही काम में ले लिया करते थे ।

ध्वन्यर्थ-व्यंजना जैसे अलंकार भी युद्ध का उपयुक्त वातावरण बनाने तथा श्रोताओं की श्रवणेन्द्रियों को प्रभावित करने के उद्देश्य से किया करते थे । अतः अनेक स्थलों पर यह अलंकार भी खूबी के साथ प्रयुक्त हुआ है ।

गीतकारों ने रूपक तथा उपमा आदि का प्रयोग करते समय नवीन उपमानों को भी चुना है जिससे अनेक स्थानों पर स्थानीय रंगत (लोकल कलर) का सुन्दर रूप निखर आया है । उदाहरण के लिए निम्नलिखित पंक्तियों में कुछ उपमान द्रष्टव्य हैं—

(क) श्रीफल् तणै प्रमाण क सोभा सीस री ।[2]
(ख) मूंगफली सम तूल् क अंगुली हत्थ री ।[3]
(ग) अतिरगता विराजई ऊपरि पगथलियां भोमलइ परि ।[4]
(घ) खुडिया ऊपरि जांणि खांभिया, भिणधर राजा तणी मिण ।[5]

उपरोक्त पंक्तियों में क्रमशः शीश की समता श्रीफल से, अंगुलि की मूंगफली से, पदतलों की लालिमा की वीर बहूटी से तथा नाखूनों की शेष नाग की मणि से दिखाई गई है ।

---

(1) राजस्थान के ऐतिहासिक प्रवाद : डा० सहल, पृ० ६५
(2) अलवर री झमाल् : सिववक्स पल्हिावत, छंद १६
(3) वही, छंद २०
(4) महादेव पारवती री वेलि, सा० रा० रि० इ०, बीकानेर, पृ० १६, छंद ५६
(5) वही, पृ० २० छंद ५७

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि विभिन्न अलंकारों के प्रयोगों ने न केवल गीतों के अभिव्यक्ति पक्ष को सबल तथा विलक्षण बनाया है, वे रस के उत्कर्ष में भी सहायक हुए है।

(४) गीतों में छंद

गीतों का वर्गीकरण प्रस्तुत करते समय गीत-छंद के विभिन्न रूपों पर प्रकाश डाला जा चुका है। अतः उस सम्बन्ध में पुनः चर्चा करना अनावश्यक होगा।

जहां तक इन छंदों के प्रयोग का प्रश्न है, बड़ो साणोर, छोटो सांणोर, वेलियो सांणोर, जांगड़ो सांणोर, सोरठियो, सावझड़ो चित इलोल, सुपंखरो, अकुट बंध, अरट, भंवर गुंजार, रसावलो, त्राटको, झमाल, त्रबंक आदि गीतों का प्रयोग-बाहुल्य पाया जाता है। जिस प्रकार दोहा, छप्पय, नीसाणी आदि छंदों के विभिन्न रूप डिंगल में प्रायः सभी रसों के लिए प्रयुक्त हुए है उसी प्रकार गीत के विभिन्न रूपों में भी अनेक रसों की कविता पाई जाती है। उदाहरणार्थ वेलियो गीत में शृंगार रसात्मक कृति 'वेलि क्रिसन रुकमणी री' की अत्यंत सफल रचना हुई है और उसी छंद में देईदास जेतावत री वेलि, रतनसिंघ राठौड़ री वेलि, रायसिंघ री वेलि आदि वीररस की प्रसिद्ध रचनाएं लिखी गई हैं।[1]

यह बात अवश्य है कि कुछ कवियों को विशिष्ट छंद प्रिय रहे हैं और उन्होंने प्रायः उसी छंद का अधिक प्रयोग किया है। उदाहरणार्थ राठौड़ पृथ्वीराज ने 'वेलि' के अतिरिक्त भी वेलियो गीत को ही अधिक अपनाया है, हुकमीचंद ने सुपंखरो गीत का बहुत अधिक प्रयोग किया है और शिवबक्स पाल्हावत को झमाल गीत प्रिय रहा है।

विशिष्ट गीतों को लेकर उनमें प्रबंधात्मक रचना करने की परिपाटी भी पाई जाती है। वेलियो गीत में पृथ्वीराज के अतिरिक्त अनेक कवियो ने 'वेलि काव्य' लिखे है। इसी प्रकार झमाल छंद में अनेक प्रबंधात्मक झमालें लिखी गई हैं।[2] अतः

---

(1) राजस्थानी साहित्य का मध्यकाल : (परम्परा भाग १५-१६), पृ० १७०

(2) प्रबंधात्मक झमालों की सूची इस प्रकार है :—

(क) अलवर री झमाल—शिवबक्स पाल्हावत।
(ख) जोरजी री झमाल—शिवदांन सांदू।
(ग) भीमसिंह री झमाल—महादांन मेहडू।
(घ) गिरजा उत्सव झमाल—कविराव बख्तावर।
(ङ) करौली री झमाल—(अज्ञात)।

गीतों में भी दो विशिष्ट विधाओं का निर्माण हो गया था जो इन छंदों की असाधारण लोकप्रियता का प्रमाण है।

जिन छंद-शास्त्रों में गीतों का विवेचन हुआ है, उन पर ७वें अध्याय में प्रकाश डाला जाएगा। अतः यहाँ हमारा उद्देश्य छंद की सामान्य विशेषताओं के आधार पर उसके प्रयोग पर संक्षेप में प्रकाश डालना ही रहा है।

(५) गीतों में वर्णन-वैशिष्ट्य

गीतों का वर्गीकरण करते समय वर्ण्य-विषयों के वैविध्य की ओर संकेत किया जा चुका है। महत्त्वपूर्ण से महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक घटनाओं तथा प्रेमाख्यानों से लेकर प्रकृति के साधारण उपकरण तक गीतों के वर्ण्य विषय रहे हैं। उन सभी विषयों पर प्रकाश डालना यहाँ संभव नहीं है। अतः प्रमुख विषयों को लेकर गीतों के वर्णन-वैशिष्ट्य तथा गीतकारों की मौलिक सूझ-बूझ और कल्पना शक्ति का परिचय देना ही समीचीन होगा। इस दृष्टि से यहाँ युद्ध-वर्णन, आयुध-वर्णन, रूप व प्रकृति वर्णन को लिया जा सकता है, क्योंकि डिंगल कवियों का मन प्रायः उपरोक्त विषयों के वर्णन में ही अधिक रमा है। मध्यकालीन राजस्थान की संस्कृति के अनुरूप उपरांकित विषय कवियों के कल्पना लोक में निरन्तर मंडराते रहे हैं। गीतों में ही नहीं, दोहों, छप्पयों, निशानियों, चन्द्रायणों, झूलनों आदि में भी इन विषयों की प्रधानता है।

युद्ध–वर्णन

युद्ध-वर्णन गीतकारों का सर्वाधिक प्रिय विषय रहा है। डिंगल गीत–साहित्य के समुद्र में अन्य विषयों के गीत छोटे-बड़े टापुओं की तरह हैं। इन गीतों का मुख्य उद्देश्य योद्धा की कीर्ति को अपने वर्णन-कौशल से अमर करना है। चित्रोपमता इन गीतों की प्रमुख विशेषता है। एक ही भाव तथा एक ही घटना को अनेक रूपों में प्रस्तुत करने में जहां कई कवि निष्णात थे, वहां परिपाटी-बद्ध वर्णन करने वाले कवियों की भी यहाँ कमी नहीं रही।

प्रतिभा-सम्पन्न कवियों ने उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि अलकारों के सहारे युद्ध का बड़ा ही चामत्कारिक वर्णन अपने-अपने ढंग से किया है। उन सभी प्रकार के वर्णनों पर यहाँ प्रकाश डालना संभव नहीं है इसलिए उदाहरणार्थ कुछ चुने हुए चित्र प्रस्तुत किए जा रहे हैं, जिनसे उनके वर्णन-कौशल का अनुमान लगाया जा सकेगा।

कहने की आवश्यकता नहीं कि युद्ध को तीर्थ तथा पर्व मानने वाले चारण कवि स्वयं योद्धा भी होते थे और समय पड़ने पर वाणी के बल से ही नहीं, अपितु

शस्त्र-बल से भी अपने शौर्य का प्रदर्शन करने में पीछे नहीं रहते थे ।[1] अतः उनका युद्ध-सम्बन्धी अनुभव भी बढ़ा-चढ़ा होता था । यही कारण है कि उनकी वाणी में युद्ध-वर्णन की सजीवता एवं वातावरण की समग्रता सर्वत्र दृष्टिगोचर होती है ।

(क) सेना का वर्णन—

विशाल सेनाएं हिलोरें लेते हुए प्रलयकालीन समुद्र की तरह आगे बढ़ीं ।[2] उनके बोझ से कच्छप की पीठ बड़कने लगी ।[3] शेष नाग का सिर झुकने लगा ।[4] सिंधु राग का स्वर गूंजने लगा ।[5] घोड़ों की खुरतालों की ध्वनि के साथ–साथ तुरही, तासा व नक्कारों की आवाजें होने लगी तथा हाथियों पर अगणित पताकाएं फहराने लगीं ।[6]

(ख) रण में प्रवृत्त होते समय योद्धा का चित्र :

कई योद्धा भरपूर अफीम का सेवन कर[7] तथा कई शराब की बोतलें मुंह में उंडेलते हुये निधड़क होकर आगे बढ़े ।[8] सेनानायक अपनी मूंछों पर हाथ फेरता हुआ कुपित हो रहा है ।[9] उसके शरीर में क्रोधाग्नि धधक रही है ।[10] उसके नेत्र "चोल वर्ण" (लाल) हो रहे हैं । चेहरा तमतमा रहा है । अंग प्रत्यंग उत्साह से

---

(1) जसै रै मरण प्रवि उभै दूणां जुड़ै, रौद्र घड़ विभाड़ै खेत रहिया ।
(गीत अक्खै बारहठ रै पोतरां रौ)

(2) जंगी रिसाला हलंतां प्रलै सामंद हिलोला जेहा ।
(गीत सलूंबर रावत केसरीसिंघ रौ)

(3) पीठ बड़बड़ात कूरम छटा प्रलै री । (गीत भरतपुर)

(4) नागफण नमै करै ससत्र नागा । (वही)

(5) प्रगट हद राग जांगड़ी हाका पड़ै । (गीत आउवा रौ)

(6) तुरां खुरताल वज तूर तासा त्रबंट,
माला फरहर गजां वजां माला । (गीत भरतपुर रौ)

(7) प्रतितहर छोलड़ा अमल पीवा । (गीत कोठारिया रावत जोधसिंघरौ)

(8) सरावां बोतलां पियां छक छक सड़क, किया निधड़क हिया, हरवल कोप ।
(गीत भरतपुर रौ)

(9) धरे हाथ मूंछां धाय ऊभो क्रोध धींग (गीत महाराजा मानसिंघ जोधपुर रौ)

(10) तन जगै झाल रा दवंग तातै । (वही)

(11) किये मुख चौल धमरौल धारां करै । (गीत जगनाथ राठोड़ रौ)

फड़क रहे हैं।[1] वह तलवार को अपने सवल हाथों में तोलता हुआ भुजदण्डों को ठोक कर भिड़ने के लिये उद्यत हो रहा है।[2] आकाश को अपने वलिष्ठ हाथों से तोलता हुआ [3] प्रतिपक्षी सुभट्टों को फौज से आगे निकल जाने के लिये ललकारने लगा है। [4]

(ग) युद्ध का प्रारम्भ :

अपने वीर सैनिकों को शत्रु सैन्य से जा भिड़ने का आदेश देता हुआ[5] स्वयं शत्रु सेना पर प्रवल वेग के साथ इस प्रकार टूट पड़ा, मानो शृंखला से बंधा शेर खुल जाने पर अपने खाद्य पर लपका हो,[6] आसमान स्वयं (धरा पर) फट पड़ा हो, या आठवां समुद्र तूफान पर चढ़ आया हो, अथवा कालियनाग पर गरुड़ झपटा हो या रामचन्द्र का अमोघ वाण (प्रत्यंचा से) छूटा हो, अथवा आकाश मण्डल से नक्षत्र ही टूट पड़ा हो या इन्द्र के वज्रास्त्र का प्रहार हुआ हो।[7] सघन सेनाओं की मुठभेड़ से आसमान धुआँधार हो गया, मानो किसी वारूद के ढ़ेर में आग लग गई हो।[8]

(ख) अस्त्र शस्त्रों की ध्वनि :

तोप से छूटे हुये गोलों की ध्वनि से आसमान गुंजायमान हो उठा,[9] गिरते हुये लाल गोले ऐसे आभासित होते हैं, मानो सुमेरु पर्वत के चारों ओर अनेक सूर्य परिक्रमण कर रहे हों।[10] वीर योद्धा निधड़क होकर तोपों की ओर वढ़ रहे हैं,

---

(1) हूवकै जौवार अंग (गीत नरसिंघगढ़ चैनसिंघ रौ)
(2) तोल खग टेक ना छंडै मीखम तणों, अेकली ठौर भुज लड़ण ऊभौं)
(रावत वाघसिंह रौ गीत)
(3) मांण हिंदवांण असमांण तोले भुजां। (गीत महाराजा मानसिंघ रौ, जोधपुर)
(4) अरावां छोड़ने तूं आवरै अठीनै (गीत ठाकुर सेरसिंघ मेड़तिया रौ)
(5) भैलो भैलो भैलो आखतों विजाई मालो। (गीत महाराजा अभयसिंह रौ)
(6) कंठीर काटके छूटौ सांकलां राटकै किनां (गीत डूगरसिंघ जवाहर सिंघ री)
(7) फूटो आसमांन किनां सामुद्र आठमी फूटौ वछूटौ खगैन्द्र काली ऊपराँ वजैत (तसां रामचन्द्र वांण गैणाग नखत्र तूटौ, वज्र छूटो इंद्र रौ क दलां रौ वानेत ॥
(8) जुड़ै सेन थंड़ां जाड़ावाली, धौम जालां री सावात जागी। (गीत महाराजा वलंवतसिंघ हाड़ा रौ)
(9) गाजै अनड़ धीव पड़ गोलां (गीत अभयसिंघ चांपावत रौ)
(10) मेर दोलो जाणं भू भडंता भांण (गीत उम्मेदसिंघ सीसौदियारौ)

परस्पर प्रहार से कवचों की कड़ियाँ खनखनाहट कर रही हैं ।[1] बंदूकों से गोलियां विजली की तरह कड़कती हुई निकल रही हैं ।[2] रणक्षेत्र में तलवारों की झड़ी-सी लग गई है ।[3] उनके प्रहारों से योद्धाओं के अंगों के टुकड़े-टुकड़े हो रहे हैं ।[4] वीरों के मस्तक वड़ी कन्दुक की भांति रणक्षेत्र में लुढ़कते हुये[5] ऐसे जान पड़ते हैं, मानों मरु-प्रदेश के वड़े वड़े मतीरे लुढ़क रहे हैं ।[6] काल रूपी योद्धा आपस में लत्थोवत्थ हो रहे हैं ।[7] अब तो उनका क्रोध और भी भभक उठा, जैसे सर्प की पूंछ पर पैर पड़ जाने पर सर्प फुंफकार उठता है ।[8] अनेक प्रकार के दांव घात चल रहे हैं, घोड़ों और सुभटों के अंगों पर भालों के प्रहार हो रहे हैं ।[9] तलवारों के आपस में टकराने से उनकी धार कट कट कर गिरने लगी है ।[10] गुर्ज के घातक प्रहार[11] को झेलने वाले योद्धा का सिर कांच की शीशी की तरह टुकड़े टुकड़े होकर विखर गया है ।[12] तोपों के गोलों व धनुष की टंकार की ध्वनि के साथ असंख्य तीरों के चलने से आमिषभक्षी पक्षियों के पंखों का ढ़ेर लग गया है ।[13] किसी अत्यन्त वलवान योद्धा की तलवार के प्रहार से शत्रु का शिरस्त्राण, शीश, वख्तर, घोड़े की जीन और अन्त में घोड़ा स्वयं कटकर गिर पड़ा ।[14] सिर कटने पर भी योद्धा का

---

(1) वड़े वीर तोंपां सनाहां झमंका वजै (गीत चीमनसिंघ रौ)

(2) वंदूकां कड़वके आभा वीज जैम जैण वेरां (गीत लालसिंह हाडा रौ)

(3) अजड़ां झड़ वाजे रणताल (गीत अभयसिंघ चांपावत रौ)

(4) झटक्का हजारां वहै, सरीखा वटक्का झड़े । (गीत चैनसिंघ रौ)

(5) दड़ा सा विछूटा माथा धड़ां थीं रुलंता डोलै (गीत रणजीतसिंघ नाथावत रौ)

(6) घड़ां री घड़ां गौरां तणी गुड़ाता मतीरा थली रा जेम माथा । (गीत शेखावटी रा सरदारां रौ)

(7) लूथवत्थां अंगरेजां सूं सुर काल रूपी लड़ै (गीत चैनसिंघ रौ)

(8) जाता काला नाग री मुराला दवी जैम (गीत उम्मेदसिंघ हाडा रौ)

(9) घमोड़ा सावला घोड़ां भड़ां दाव धाव (गीत चैनसिंघ रौ)

(10) कीरा काढ़ वीजलां झड़वा लागा काट, (गीत उम्मेदसिंघ सीसोदिया)

(11) रटक्का गुरज्जां गाजै घमोड़ा रढंत (गीत चैनसिंघ रौ)

(12) वटक्का चैनरा कांट सीसो ज्यूं वढत (वही)

(13) घोर तोपां आमंखा चरैल पंखां धांण. कसीस अढ़ार टंकां ऊधड़ी परीर कंकां (गीत महाराज वलवंतसिंघ हाडा रौ)

(14) कट झिलम सीस वगतर वरंग अंग कटे, कटै पाखर सुरंग तुरंग कटियौ (गीत महाराणा प्रतापसिंह रौ)

कंवंध जूझ रहा है ।[1] उससे रक्तधार फव्वारे की तरह छूटती हुई सामने के योद्धा से टकरा रही है ।[2] गिर पड़ने पर धड़ इस प्रकार छटपटा रहा है, जैसे छिछले पानी में मछली तड़प रही हो ।[3] कटारी के प्रहार से निकल पड़ने वाले कलेजे के टुकड़े नये किसलय से प्रतीत होते हैं ।[4]

(ङ) युद्ध का भयंकर प्रभाव—

युद्ध की ऐसी भयंकरता से शेषनाग की डाढ़ें धड़कने लगी,[5] उसका फन झुकने लगा ।[6] सूर्य स्वयं पृथ्वी पर ऐसा अद्‌भूत युद्ध देखने के लिए अपने घोड़ों की लगाम खींच कर ठहर गया ।[7] प्राणों के भय से कायर लोगों के कंठ सूखने लगे, वे मृत्यु के भय से इधर-उधर छिपने के लिए आतुर हो उठे ।[8] ऐसी स्थिति देखकर सेनाध्यक्ष ने उन्हें यह कहकर ललकारा—यहाँ जो प्राणों का उत्सर्ग करना चाहें, वे ही डटे रहें ।[9] तब कई असलियत से विहीन कायर मैदान से भाग खड़े हुये ।[10] तलवारें पुन: वेग के साथ वादल में विजली के समान चमकने लगीं, तीरों की वर्षा होने लगी ।[11] तलवारों के आघात से हाथ आदि कटे हुए यौद्धाओं के धड़ ऐसे प्रतीत होने लगे, जैसे टहनियों से विहीन वृक्ष का तना हो ।[12]

(च) शिव, गिरिजा, आदि का रक्तपूरित समरांगण में प्रवेश—

ऐसे अशांत वातावरण के कारण शिव की समाधि टूट गई, भैरव नृत्य करने लगे ।[13] कालिका बड़ी उमंग के साथ अपना खप्पर भर-भर कर रुधिर-पान कर

---

(1) धड़ नाचिया धारां छंद ढौई ढौई (गीत राणा कुंभा रो)
(2) जूंझवा फुहार टक्कर उड़े धके आय जेता (गीत रावत पहाड़सिंघ रो)
(3) मच्छां नीर तुच्छां ज्यूं तड़च्छै भोम मांह (गीत उम्मेदसिंह सीसोदिया रो)
(4) मूगल पंजर मीरां कालिज कूंपल काढ़ी (गीत राव अजरसिंघ राठोड़ रो)
(5) चंगी फौजां विलूंवे वड़क्के डाढ़ फुणी चील (गीत वलवन्तसिंघ हाडा)
(6) नागफण नमें करें सस्त्र नागा (गीत माहाराजा रणजीतसिंघ रो)
(7) ईख भांण आरांण तमासो तुरी तांण ऊभो (गीत चैनसिंघ रो)
(8) कंठ रुके कायरां, जुवाणां लुकै नुकै केई (गीत वलवंतसिंघ हाडा रो)
(9) मरणों हुवै जिके पग मांड़ों, ऊवरणों हुवे जिके अवो। (गीत अभयसिंघ चांपावत रो)
(10) पड़ भागा असती कर पेच (वही)
(11) तगां दल् वादल् तड़िता सी, वरसा सी सिर मोक वज (गीत रावत् दुर्जनसाल भाटी रो)
(12) जूजू अंगा छंगावें उमंगां ड़ालां जैम (गीत उम्मेदसिंघ सीसोदिया रो)
(13) खुलें सिद्धा तालिया रूप रा नच्चे वीर लेला (गीत वलवंतसिंघ हाडा रो)

रही है।[1] रक्त की वर्षा होती हुई जानकर दोनों ओर से योगिनियों का समूह एकत्र हो गया है।[2] लहू पीकर तृप्त बीस भुजाओं वाली चण्डिका हाथ में डमरु वाद्य लेकर किलकारी करने लगी।[3] अर्जुन के समान युद्ध-प्रवीण योद्धाओं का युद्ध-कौशल देखकर शंकर अपने वाहन नन्दी से उतर कर तांडव करने लगे।[4] नारद आदि अनेक मुनि भी युद्धस्थल पर उपस्थित होकर हास्य करने लगे।[5] शंकर सहस्रों भुजाओं से हजारों नर-मुण्डों की माला को धारण करने लगे।[6] समरस्थल शोणित से आपूरित हो गया।[7] उसमें अधोमुख पड़े हुये योगिनियों के पात्र बुद्-बुद की तरह तैर चले।[8] भूत, प्रेत, पिशाचों की ऊंची आवाजें होने लगी।[9] रुधिर की नदी प्रबल प्रवाह से बह पड़ी।[10] कटे हुये सिरों से बहने वाला रक्त ऐसा लगता है, मानो रंग के मटके ही फूट पड़े हों।[11] धराशायी योद्धाओं के फेफड़े फूट रहे हैं, कलेजे तड़फड़ा रहे हैं, आंतें उधड़ रही हैं, जिनमें उलझ कर योद्धा लड़खड़ा रहे हैं।[12] अत्यधिक रक्त के बहने से पास की नदी का मोती जैसा श्वेत पानी लाल हो गया जिससे समुद्र को भी विस्मित होकर इसका कारण पूछना पड़ा।[13]

(छ) पलचरों व अन्य पशु पक्षियों का आना :

कुंजरसेना के कुंभस्थलों के कटने से जो मोती बिखर पड़े हैं, उन्हें चुगने हंस भी वहाँ पहुँच गये हैं।[14] गज मांस भक्षी अनल पक्षी कजली वन को जा रहे थे,

---

(1) भद्रकाली पीवै श्रोण उमंगे खप्परां भरै (गीत चैनसिंघ रौ।)

(2) जोगणी आवी आड़ गंजणी वरसै रत के पुड़ी वहै (क्रिसन रुकमणी री वेलि)

(3) बजे हैव डमरु चंडैव हत्थी वीस (गीत रावत पहाड़सिंघ चूंडावत रौ)

(4) संडैव छंडैव पेख पाथ बांण पाय सांच, उमंड़ैव मंडैव तंडैव नांच (वही)

(5) मलै हास हैता अनेता मुनंद (वही)

(6) धूरजट्टी चुंणै धू हजारां हाथ धार (वही)

(7) रिण आंगणि तणि रुहिर रलतलिया (क्रिसन रुकमणी री वेलि)

(8) ऊंधा पत्र बुद बुद जल आकृति तरि चाले जोगिणी तणा (वही)

(9) प्रेत भूतां वाज डाक हाक दूतां काल पीरां (गीत रायसिंघ झाला रौ)

(10) लौंही धरां आपगा अथारा। आटपाटां लागी (गीत उम्मेदसिंघ सीसोदिया रौ)

(11) फबि झपट सिर रंगट मट फट भट (गीत मोहकम सिंघ सीसोदिया रौ)

(12) फूट फिफरड़ कलिज झड़पड़, अंतड़ उधरड़ उलझ आखड़ (वही)

(13) कालदिन हुती स्वेत मोती कली, लाल रंग थयो किम आज लूणी (गीत ठाकुर सिवनाथसिंघ रौ)

(14) कुंजरा संहारै मोती कपोलां विधंस किया,
हाडौती धरा में हंस आविया हकाल (गीत बलवंतसिंघ हाडा रौ)

वे वहाँ एकत्रित हो गये हैं।[1] नाखूनों और पंखों वाले मांसभक्षी मांस के लिये छीना झपटी कर रहे है।[2] युद्ध में प्रवृत्त होते समय कई योद्धाओं के अंगों पर कस्तूरी, (चंदन) आदि सुरभित द्रव्य पदार्थों के लगे हुये होने के कारण आकर्षित होकर गृद्धों के पंखों के बीच भ्रमर भी दिखाई पड़ते हैं।[3]

(ज) अप्सराओं का आगमन :

अप्सराओं के अगणित विमान आकाश में स्थिर होकर वीरों की प्रतीक्षा कर रहे है।[4] नभ-मण्ड़ल उनके नूपुरों से ध्वनिमय हो रहा है।[5] हूरों और अप्सराओं में मनोभिलषित पति को वरण करने के लिये खटपट हो रही है।[6]

(झ) शिव का शीशप्राप्ति के लिये लालायित होना—

वहुत वड़ी मुण्डमाला वना लेने पर भी शिव अनुपम वीर योद्धा के मस्तक से अपनी माला को पूर्ण करने के लिये नृत्य करते हुये उससे (वीर) शीश की याचना करते हैं,[7] परन्तु सिर तो खड़ग प्रहारों से टुकड़े टुकड़े हो गया, तव तो कपाली ताली देकर अपने प्रयत्न की असफलता पर हंस पड़े।[8] शीश के खण्डों को चुनकर लाल नंगीनों का-सा हार रण चंडिका ने वनाया, अतः वह सिर गिरिजापति का शृंगार न वनकर अंत में गिरिजा का ही शृंगार वना।[9] इतने में एक वीर योद्धा

---

(1) कजल् वन जिके चुगण कारणै,
अनल् पुर धौलपुर चाल आया। (गीत महाराव राजा शत्रुशाल हाडा री)

(2) पलचर नहरालां पंखालौ,
माँचि झड़पड़ि झपट मची (वेलि राठौड़ रतनसिंघ री)।

(3) विढ़ै राम कसतूरिया चरचियां वैरहर, भमर भणकै गिरध पंख भेला—
(गीत रामसिंघ करमसोत री)

(4) अपछारां विमांण नभ वीच अड़िया अवर, (गीत आऊवा री)

(5) अच्छरां रणंके नगां नूपरा अंवास (गीत चिमनसिंघ री)

(6) लौठी लगी सीसि नह लेसी, दाखै हूरा अछर दिसि (गीत हठीसिंघ राठौड़ री)

(7) सिर जाचै नाचै सिव देव (गीत रावल् दुर्जनसाल भाटी री)

(8) रज रज सीस हुवौ रण रसियो, ताल़ी दे हंसियो त्रिपुरार (वही)

(9) चुग रण खेत मेड़तै चौसर लाल नगां, जिम पोय लियो,
वर गिरिजा सिणगार न वणियौ कंठ गिरिजा सिणगार कियो।
(गीत ठाकुर महेशदास कूंपावत री)

अपनी पत्नी का सिर गले में बांवे, लड़ता हुआ दिखाई दिया, जिसे देखकर पार्वती भ्रमित होकर डरने लगी कि शिवजी को यह स्त्रियों के सिर की माला वनाने का शौक कब से लग गया :[1]

(न) युद्ध के उपसंहार का रूपकात्मक वर्णन :

इस प्रकार सेना रूपी कामातुर दुलहिन के साथ युद्ध रूपी भोग करके वीर नायक रणक्षेत्र रूपी पलंग पर तलवार के नशे की खुमारी में अनंतकाल के लिए सो गया।[2] उस वीर रूपी किसान ने रणक्षेत्र रूपी क्षेत में अश्व रूपी वैलों के सहारे भाले रूपी हल को चलाकर अरि रूपी तृण समूह का सफाया कर दिया।[3] वीर रूपी गरुड़ ने शत्रु रूपी सर्प के फन (मस्तक) को तलवार रूपी चोंच चलाकर ऐसा कुचल दिया कि फिर उसने कभी फन ऊंचा नहीं उठाया।[4] अपनी भुजाओं के वल से कुल (वंश) रूपी रस्सी को खींचकर युद्ध रूपी विलौने (दवि मथने के पात्र) में वैरी रूपी दही को खड्ग रूपी भेरणे से मंथन कर छिन्न-विच्छिन्न कर डाला।[5] दुश्मन रूपी अनाज-कणों को उसने सूच्य सूप में भर, रणक्षेत्र रूपी चक्की में डालकर पीस दिया।[6] अन्त में वह वीर हंस की तरह शत्रु रूपी कमल पत्रों से सिर

(1) वनिता कमल़ बाँधि गल़ विढ़तै हीलौलि़या जु वीर हरै।
डरी तेण पारवती देखै, रखै कपाली अेम करै।।
(गीत जगनाथ सोनिगरा री)

(2) भोग विकल़ त्रिया मन मेल़ै, घटि घटि आउघ विघन घड़ी।
रंग पिलंग पौढ़ियों रतनों, चवरंग खगाँ खुमारि चढ़ी (राठौड़ रतनसिंघ री वेलि)

(3) अरि अलि़यौ जड़ हूंत उपाड़ै, साकुर धौरी हांक सिर।
ल्हास करै फौजां वड़ लंगर, कीध निनाणी समर कर।।
(गीत ठाकुर लालसिंघ रौ)

(4) अजावत गुरुड़ उरड़ उखाड़ै, चंच खांगा भिरड़ कियो वल़ चूर।
होद रिण मही जिण छोड़ पण हालियो, रवद फुणफेर न भालै नहीं रुल़।
(गीत अजीतसिंघ राठौड़ रौ)

(5) वाहां पाँण करै अतुलीवल़, नेतौ कुल़ छल़ खांच निराट।
करन हरै दूदावत कल़हण, भेरै दही मारै खग भाट।।
(गीत राठौड़ पृथ्वीराज)

(6) दलि़या एक एक निरदलि़या, मींच फौज कण छाज भरि।
जव जरदेत निघसवा निजि, माथ मै ओरिया करड़ करि।।
(गीत करमसिंघ सीसोदिया रौ)

रूपी मोती चुग कर रंभा के विमान में जा बैठा।[1] सूर्य तथा चन्द्र की साक्षी में, अपने कुल को अनुपम ख्याति से अलंकृत कर वह अपने वीर साथियों सहित वैकुण्ठ को पहुँच गया।[2]

गीतों में अस्त्र-शस्त्रों का वर्णन

प्राचीन काल में राज्य, धर्म और समाज की रक्षा में घोड़ों और अस्त्र-शस्त्रों का विशेष योग रहा है। प्रत्येक योद्धा के लिये ये अनिवार्य उपकरण रहे। अतः गीतों में प्रमुख अस्त्र-शस्त्र तलवार, भाला, कटारी तथा बन्दूकों आदि का वर्णन कई कवियों ने विशद रूप में किया है। इन अस्त्र-शस्त्रों के भी अनेक प्रकार हुआ करते थे, उनका उल्लेख भी गीतों में मिल जाता है।[3] उदाहरणार्थ यहाँ केवल उन गीतों को ही प्रस्तुत करना समीचीन होगा जिनमें प्रमुख अस्त्र-शस्त्रों का ही वर्णन किया गया है।[4]

(क) तलवार का वर्णन—

युद्ध वर्णन करते समय कवियों ने प्रसंगवश तलवार और उसके प्रहार आदि का वर्णन प्रायः किया है। यहाँ हुकमीचंद खिड़िया कृत राजराणा राघवदास झाला की तलवार की प्रशंसा को व्यक्त करने वाला गीत उल्लेखनीय है, जिसमें कवि ने तलवार को जेठ मास की ज्वाला, मेघमाला में कौंवती विद्युत, चण्डिका के हाथ का त्रिशूल, शेष नाग की फुफकार, इन्द्र का वज्र, ज्वाला की लपट, शिव के तृतीय नेत्र की अग्नि और सूर्य की किरण बताकर नायक के वीरत्व तथा उसकी तलवार के प्रभाव को बड़ी भव्य अभिव्यक्ति दी है :—

ज्वाला जेठ री जेहड़ी जंगी बीज मेघमाला जांणै,
भीम भाला केहड़ी कराल जेठ मास ।
चंड धू बेहड़ी कनां उडंडां त्रसूल चंडी,
वीर राघोदास हांथा अेहड़ी बाणास ।।

---

(1) रंभ झूलणी कमल दल रोदां, दीखी घड़ मझ देख दिखाल ।
प्रिसणां सीस चुग पंणीहड़ पहुँतो हंस चढै अग पाल ।।
(गीत ठा० पंचायण सिंघ री)

(2) चंद सूर साखी दाखी जहांन भावती चूंडा (गीत रावत केसरीसिंघ री)

(3) ऊमटां चढ़ावै आव दियो अचलेस (गीत चैनसिंघ ऊमट री)

(4) भूलर झल हलतै जूंझारै कुंत हयी पहुँतो वैकुंठ (राठोड़ रतनसिंघ री वेलि)

फूंकां सेस ताय वाळी पवै प्रलैकार फूटी,
वारधीस लाय वाळी तूटी झाळ वेग।
जंभी रोस रूप जाग आदीत रसम्भां जांणै,
तूझ्झ करां जसा रा व्रजाग रूप तेग।।[1]

(ख) भाले का वर्णन :

तलवार की तरह ही भाला भी एक मुख्य शस्त्र रहा है, जिसका वर्णन अनेक कवियों ने अपने-अपने ढ़ंग से किया है। यहाँ कविराजा सूर्यमल्ल मिश्रण द्वारा बूंदी के महारावराजा रामसिंह के भाले पर लिखा हुआ गीत प्रस्तुत करना पर्याप्त होगा. जिसमें कवि ने भाले को रुद्र के तीसरे नेत्र की ज्वाला, क्रुद्ध महाकाल का प्याला, वादशाह के हृदय को सदैव सालने वाला, दुश्मनों के समूह को युद्ध में पछाड़ने वाला, विकराल काल की क्रीड़ा, पंख युक्त काला भुजंग आदि बताकर उसके प्रभाव की अमोघता प्रकट की है। गीत इस प्रकार हैं :

किनां संभू रौ ऊझ्झाळों रोस काळ री पियालौ किनां,
पैलां रत्र आलो रहै जलालौ पाराध।
पांण आंमेण रौ यूं विलालो सालो पातसांहा,
भालो रांमेण रौ खलां उथालो भाराथ।।
सत्रांटां देवालौ, दाह ओज में उजाळौ सुर,
लड़तां काळ रौ चाळौ पैलां अंत लाग।
पंखाळौ भुयंग काळां धणी री वजाळौ फतै,
राव वाळौ दीसै इसौ छड़ाळौ व्रजाग।।[2]

(ग) कटार वर्णन :

संकुचित स्थान में समूह से घिर जाने तथा निकट की मुठभेड़ में कटार वीरों का खास हथियार रहा है। कटार को सम्बोधन कर व उसके प्रहार की तीव्रता तथा अचूक प्रभाव पर पर्याप्त गीत रचे गये हैं। नागौर के राव अमरसिंह राठौड़ की कटार ने डिंगल और ब्रज दोनों ही भाषाओं के कवियों को समान रूप से प्रभावित किया है। उन्होंने वादशाह शाहजहां के भरे दरबार में फौजवख्शी सलावतखान को मारकर अपने स्वाभिमान का परिचय दिया था। कवि ने उनकी कटारी को सर्प के रूप में चित्रित करते हुये वख्शी रूपी चंदन-तरु से लिपट कर रक्त रूपी चंदन-रस का पान करने वाली बताया है। उदाहरण—

कर पंख अलसी अमर कटारी, लागुवां उर लागी।
चन्नण मीर तणौ रस चूंसण, नागण जेम उनागी।।

(1) राजस्थानी साहित्य का मध्यकाल : (परम्परा भाग १५–१६) पृ० ३३८
(2) शोध पत्रिका : सौभाग्यसिंह शेखावत, वर्ष १५, अंक २

जमदढ़्ढां लग्गी जहराली, जालम रूठौ जांही।
पान पलक्कै सलक्कै कै पूगी, मीर तणां उर मांही।।

रावल पूंजाजी ने काली तीज के दिन विजली पर जो कटारी चलाई, उसका अद्भुत वर्णन निम्नलिखित डिंगल गीत में देखिये :

नभौ भाल रा सूर गहलोत रावल नड़र,
उरड़ खत्रवाद पौरस उमाहै,
काजली रमंतां ऊजली कटारी,
बीजली ऊपरा तुहिज बाहै।।
लाय घर अंबर री दाय जाणै लड़ी,
खड़हड़ी दाय जाणै अड़ी खीज।
कहर सरकूंज रावल जड़ी कटारी,
बीज ऊपर पड़ी दूसरी बीज ।।[2]

आगे कहा गया है "वादलै धसी घायल हुई वीज" मानो पूंजाजी की कटार से घायल होकर विजली बादल में धँस गई।

(घ) वन्दूक और धनुप का वर्णन :

शस्त्रों में तलवार, भाला और कटारी की भाँति अस्त्रों में वन्दूक और वाण योद्धाओं के आयुव रहे हैं। गीतकारों ने इन पर अलग-अलग और एक साथ सम्मिलित भी गीत रचे हैं। यहाँ राजराणा रायसिंह झाला की वंदूक और धनुप का एक संयुक्त गीत दिया जा रहा है। कवि ने इसमें वन्दूक को हकीम लुकमान द्वारा प्रदत्त विधि से कुशल कारीगरों द्वारा निर्माण की हुई तथा शोधे हुए लोहे की भांति अंकित किया है। वारूद के लपट लगते ही, विपक्षी शत्रुओं के पैर उखड़ जाते हैं। झाला वीर ऐसी वन्दूक तथा वनुप के वाणों से मैदान में ललकार कर सिंहों को मारता है। गीत के दो पद्यांश प्रस्तुत हैं—

सरै लुकमांन हकीम वणाई कारीगरां सांचो,
थेट कारीगरां वणी लोह रे आयांण।
वन्दूक धारतां करां उरां झोक महावीर,
करां झोक रायसिंघ धारतां कुवांण।।
पलक्कां रजक्कां ऊठै पैलां दलां छूटै पांव,
उठै गुणां धानंकां यूं टंकारता ऊक।
सौर मक्खी झालै झालो अखाड़ै पछाड़ै सिंघां,
आद्यातुजो झालै झालो सायकां अचूक ।।[3]

---

(1) वं० हि० मं०, कलकत्ता का संग्रह, कापी नं ४२
(2) द्रष्टव्य—राजस्थान के ऐतिहासिक प्रवाद, पृ० ९५—९६
(3) झालाओं के वीरगीत : रा० शो० सं०, जोधपुर का संग्रह।

(ड़) तोप का वर्णन :

भारी आयुधों में तोप एवं जुजरवों आदि का प्रयोग किलों पर तथा जमकर तैयारी के साथ लड़े जाने वाले युद्धों में होता है। तोपों की आकृति आदि के अतिरिक्त उनके चलने पर जो वातावरण बनता है, उसको प्रकट करते हुए लिखा है- तोपों के धुँए से आकाश धूमिल हो गया और गोलों की झड़ी ऐसी लगी जैसे आकाश में नवलाख नक्षत्र टूट पड़े हों। उनकी मार से दुर्गों की दीवारें गिर जाती हैं, और हजारों लोगों के भयातुर कोहराम से धरा–आकाश गूंज उठता है। उदाहरण—

छायौ धुँवांधोर गैण अरावां आघात छूटे,
तूटै मानूं नौलाख नखत्रां गोलां तेम।
फूटै घोर हूंता के सफीलां आर पार फूटै,
ऊठै लट्ठो हज्जारां लोक रौ हल्लो अ्रेम ॥[1]

हाथी और घोड़ों का वर्णन

प्राचीन काल के वाहनों में हाथी और घोड़े का विशेष महत्त्व था। यह वाहन राजा और सम्पन्न व्यक्तियों की सवारी के साधनों के अतिरिक्त युद्ध व शिकार में तो काम आते ही थे, परन्तु पुरस्कार के रूप में भी इस प्रकार की वस्तुएँ देना सम्मान-सूचक माना जाता था। अतः समाज में अनेक दृष्टियों से इनका विशेष महत्त्व था। कितने ही प्रसंगों में डिंगल कवियों ने इनका वर्णन किया है। गीतकारों ने भी इन्हें अपनी कविता का विषय स्वतन्त्र रूप से तथा प्रसंगवश बनाया है।

(क) हाथियों का वर्णन :

महाराणा भीमसिंह,[2] महाराजा सवाई प्रतापसिंह,[3] महाराव राजा रामसिंह,[4] महाराव मंगलसिंह,[5] आदि शासकों के हाथियों की विशालता, गति व उनकी चेष्टाओं का वर्णन कवियों ने प्रसंगानुसार किया है। महाराणा भीमसिंह की सवारी का वर्णन करते हुए महादांन मेहडू ने उनके हाथियों का बड़ा ही सुन्दर चित्रण किया है। एक चित्र यहाँ प्रस्तुत है—

---

(1) रा० शो० सं०, जोधपुर का संग्रह।
(2) महाराणा भीमसिंघ री झमाल : सीतारांम लालस का संग्रह (जोधपुर)
(3) कछवाहों के गीत : वं० हि० मं० कलकत्ता का संग्रह।
(4) महाराव रामसिंघ बूंदी का गीत : रा० शो० सं०, जोधपुर का संग्रह।
(5) अलवर री झमाल : शिवबक्स पाल्हावत।

अंद खंद मेंगल् इसा वल् करहा मंद वाल ।
आग्राजै ऊभा थका छूट पटां छंछाल् ।।
छूट पटां छंछाल, सजीला सांवलां ।
वींद्रा छल् वैराट घाट आडावला ।।
जम जेठी जमदत्त जौम अंग जाडरा ।
हकै काला कोट के सिखर असाढ़ रा ।।[1]

यहाँ उनको 'घाट आडावला' कहकर उनकी विशालता, 'सिखर आसाढ़ रा' में उनके श्यामल रंग और 'जम जैठी' में उनकी विकरालता की भव्य व्यंजना हुई है, जो कवि की प्रौढ़ कल्पना की परिचायक है ।

(ख) घोड़ों का वर्णन :

घोड़े का राजस्थान की संस्कृति में विशेष महत्त्व रहा है । इसे देव जाति का पशु माना गया है । युद्ध में तलवार और घोड़ा यौद्धा के अनिवार्य साथी थे । इसीलिए उसे दुलारते समय 'वाप अथवा वापो'[2] कहकर सम्वोधन करते थे । योद्धा जव युद्ध जीतकर आता था तो योद्धा की पत्नी अपने पति का ही स्वागत नहीं करती थी, उसकी सवारी के घोड़े को भी 'वधा' कर घर में ले जाती थी ।[3]

यहां के कुछ प्रमुख योद्धाओं के नामों के साथ उनके घोड़ों का भी अविच्छिन्न सम्वन्ध हो गया । उम्मेदसिंह हाडा का हंजा, वगड़ावतों की वौंली, अर्जुन गौड़ का लालवेग और महाराजकुमार जसवन्तसिंह का चीता, इन योद्धाओं के नामों के साथ सदा स्मरण किये जाते हैं । महाराणा प्रतापसिंह और पावूजी राठौड़ जैसे वीरों के विशेषण तक उनके घोड़ों के नाम के आधार पर वन गए हैं । प्रतापसिंह को 'नीला घोड़ा रा असवार' और पावूजी को 'केसर कालमी रा असवार' कहते ही उनका कर्त्तव्य परायणता से ओतप्रोत चित्र हमारी आँखों के सामने प्रस्तुत हो जाता है ।

गीतों में महाराणा भीमसिंह,[4] महाराणा शंभूसिंह,[5] महाराजा मानसिंह,[6]

(1) महाराणा भीमसिंघ री झमाल् : सीतारांम लाल्स, जोधपुर का संग्रह ।
(2) वाप वाप मुख वोल, भाग्यालो चढ़ियो भलां । (पावूजी राठौड़ रा सोरठा)
(3) नीराजण वाधावियो हूं वलिहारी कुमेंत । (वीर सतसई, सूर्यमल्ल मिश्रण)
(4) डिंगल गीत : सं० रावत सारस्वत, चंडीदान सांदू, पृ० ६५
(5) महाराणा संभूसिंह री झमाल, कविराव मोहनसिंह उदयपुर का संग्रह ।
(6) रा० शो० सं०, जोधपुर का संग्रह ।

रावराजा देवीसिंह सीकर,[1] रावल वेरीसाल नाथावत चौमूं,[2] रावल देसल[3] के अश्वों का सुन्दर वर्णन हमें देखने को मिलता है।

प्रसिद्ध कवि महादांन मेहडू को महाराणा भीमसिंह ने एक घोड़ी बख्शीश की थी, जिसके सौन्दर्य और चपलता का वर्णन कवि ने स्वयं इस प्रकार किया है—

देहरी विसाला रूप रसाला दुसाला दीना,
चाला सुखपाला उरां ढाला कंध चाप।
कोयण गुलाल वाला वाहरे देवाल काला,
आला ताला करंती विलाला ब्रवी आप ॥[4]

महाराणा शंभूसिंह वर्षा में भीगे हुए घोड़े पर सवार हैं, जीन का रंग टपकने से उसकी लालिमा अरुणोदय के समान जान पड़ती है। पैरों में पहने हुए नेवरों की ध्वनि तथा उसे चक्कर में घुमाने का वर्णन कवि ने बड़े ही चमत्कारिक ढंग से किया है—

चौल रंग साखत चुवत, भड़ज पियारौ भास।
अरुणोदय रै आवरण, (जाणै) सूरज रौ सपतास ॥
सूरज रौ सपतास जड़ावूं जेवरां।
पांव घमंकां परां, ठमंके नेवरां ॥
संभू आड मचोल डुलायो डांण में।
मदन रतुम्वर मकर तरै महरांण में ॥[5]

गीतों में रूप-वर्णन

गीतों में व्यक्त शृंगार-भावना में मध्यकालीन राजस्थान की सामाजिक परिस्थितियों तथा मनोभावनाओं का अच्छा चित्रण मिलता है। संयोग तथा वियोग पक्ष के अतिरिक्त नारी-सौन्दर्य का चित्रण भी कई कवियों ने बड़ी कलात्मकता के साथ किया है। उनमें परम्परा-वद्ध उपमाओं तथा उत्प्रेक्षाओं के अतिरिक्ति स्थान-स्थान पर मौलिकता के भी दर्शन होते हैं। राठौड़ पृथ्वीराज ने अपनी कृति किसन रुक्मणी री वेलि में रुक्मिणी के सौन्दर्य का वर्णन बड़े ही संयमित रूप में किया है। कुछ स्थल मौलिकता की दृष्टि से विशेष महत्व रखते हैं। उदाहरणार्थ रुक्मिणी

(1) शेखावतों के गीत : सौभाग्यसिंह शेखावत का संग्रह
(2) कछवाहों के गीत : वं० हि० मं०, कलकत्ता का संग्रह।
(3) कविकुल वोध : उम्मेदराम गूंगा कृत रा० शो० सं०, जोधपुर का संग्रह
(4) डिंगल गीत : सं० रावत सारस्वत, चंडीदान सांदू, पृ० ९५
(5) प्राचीन राजस्थानी गीत भाग ४ : सं० कविराव मोहनसिंह, पृ० ६७

की सफेद फूलों से गुँथी हुई वेणी त्रिवेणी के समान है।[1] उसकी भौंहें रथ के जुए के समान हैं, जिनमें नैन रूपी मृग जुते हैं। कानों में पहने गोल आभूपरण, रथ के पहिये के समान हैं।[2] कुंभस्थल के समान कठोर कुचों पर कंचुकी हाथी के शीश पर शोभा देने वाली जाली के समान है या फिर भगवान श्री कृष्ण के आगमन पर उनके स्वागतार्थ ये मंडप ताने गए हैं।[3] उसकी गौर वर्ण वाहों में वाजूवंद की काली लूं में इस प्रकार झूम रही हैं मानों श्रीखण्ड की शाखा से माणिक्य–झूले में सर्प ही झूल रहे हैं।[4] नासिका के अग्रभाग में मुक्ता ऐसा लग रहा है, मानो शुक पक्षी भागवत का पाठ कर रहा है।[5] उसके वाम कर में पान का वीड़ा ऐसा शोभा दे रहा है मानो शुक उसके कोमल हाथ पर क्रीड़ा कर रहा है।[6] इस प्रकार उसका समस्त शरीर लता के समान है तो आभूपरण फूल के समान, कुच फल के समान और वस्त्र पत्तों के समान शोभा दे रहे हैं।[7]

महाराजा मानसिंह ने अपने स्फुट गीतों में, वांकीदास ने नख-शिख झमाल् में, शिववक्स पाल्हावत ने अलवर की झमाल् में, महादांन मेहडू ने उदयपुर की झमाल् में, किसना आढ़ा ने हर पारवती री वेलि में, कविराव वख्तावर ने गिरिजोत्सव झमाल् और 'महाराणा शंभू जस प्रकास' में भी स्थान-स्थान पर नारी-सौन्दर्य की सुंदर झलक प्रस्तुत की है। कविराजा वाँकीदास की नख-शिख झमाल् के भी कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं, जिसमें राधिका का अलौकिक सौन्दर्य वर्णित है—

सित कुसमां गूंथी सुखद, वेणी सद्वियां व्रंद।
नागणि जाणें नीसरी, सांपड़ि खीर समंद॥

---

(1) वेणि किरि त्रिवेणी वणी। (वेलि किसन रुक्मणी री)

(2) जूंसहरी भूह नयण भ्रिग जूता, विसहर रासि कि अलक वक्र।
वाली किरि वाँकिया विराजै चन्द्ररथी ताड़क चक्र॥ (वही, दो० ८६)

(3) इभ कुंभ अन्धारी कुच सु कन्चुकी,……… ।
मनुहरी आगम मण्डे मण्डप,………………॥ (वही, दो० ९०)

(4) वाजूवंध वंधे गौर वांह विहुँ, स्याम पाट सोहन्त निरी।
मणि में हींडि हींडले मणिधर, किरि साखा सिरीखंड की॥
(वही, दो० ९२)

(5) नासा अग्नि मुताहल् निहसति, भजति कि सुक मुन्नि भागवत।
(वही, दो० ९८)

(6) करि इक बीड़ो वल् वाम करि, कीर मु तनु जाती क्रीड़नि (वही, दो० ९९)

(7) भूखण पुहप पयोहर फल् मति, वेलि गात्र तो पत्र वस्त्र (वही दो० ९५)

सांपड़ी खीर समंद, दुरंग संवारिया।
धारा फेरण कलिंद, तनूंजा थारिया॥
भायण उपमां ओर मनोरथ मेलिया।
मझ आटी मखतूल क मोती मेलिया॥[1]

× × ×

अलक डोरि तिल चड़सवो, निरमल चिबुक निवांण।
सींचे नित माली समर, प्रेम बाग पहचांण॥
प्रेम बाग पहचांण, निरंतर पाल ही।
ग्रीवा कंबु कपोल, गरवूवां गाल ही॥
कंठसरी वहु क्रांति, मिली मुकताहलां।
हिंडुल नोसरहार, जलूस जलाहलां॥[2]

संदेहालंकार का प्रयोग करते हुए एक कवि ने नारी–सौन्दर्य के समग्र प्रभाव का बड़ा ही हृदयग्राही वर्णन किया है। कुछ पद्यांश देखिए—

चंगी सोहती वादली भरी भादवा री चंगी,
किनां सांवणी आभली वीज मार की सुमार।
काजली तीज कै होली झाल सी झली छै,
किनां किरत्यां रा झूमका सूं टली छै कुमार॥
कला चंद्र की के भलामली छै जुहार की सी,
सोहे भला भली छै कै चांदणी सरूप।
किनां दीपावली छै क नवाय बांस की कली,
ऊजली छै क किनां गंगाजली छै अनूप॥
कंद की डली छै नवां कुंजां में गली छै,
किनां छाहली ढली छै कुंभ गिरां आम छूट।
मोत्यां की लड़ी छै क चंपा की कली छै,
अगानेणी फुलैल री सीसियां गई छै किनां फूट॥
देह धार रली छै वली छै मेंहदी दसां,
करां रंग रली छै निसंक सारी काज।
करै राखा पनाराज सीस री कलंगी कली,
या तो थांरी लाडली मिली छै महलां आज॥[3]

---

(1) बाँकीदास ग्रंथावली तीसरा भाग; सं० कविया, खारेड़, पृ० ३१
(2) वही, पृ० ३६
(3) शोध पत्रिका : सौभाग्यसिंह शेखावत, भाग १२, अंक ४, पृ० ७८

कहने की आवश्यकता नहीं कि अनेक गीतकारों का मन नारी-सौन्दर्य के चित्रण में खूब रमा है और उनकी प्रतिभा तथा अनुभव ने अनेक मौलिक चित्र भी प्रस्तुत किए हैं।

गीतों में प्रकृति चित्रण

आदिकाल से ही प्रकृति मानव की सहचरी रही है, जिसके फलस्वरूप उसका मानव भावनाओं के साथ गहरा तादात्म्य रहा है। इसलिए काव्य में प्रकृति का वर्णन स्वतंत्र रूप से कम व उद्दीपन रूप में ही अधिक हुआ है। अतः भौगोलिक विशेषताओं को व्यक्त करने वाले गीतों के स्थल अपनी स्थानीय विशेषताओं के कारण बड़े महत्व के हैं।

(क) आलम्बन रूप में प्रकृति :

राजस्थान की भूतपूर्व रियासतों में अलवर, आबू (सिरोही) तथा उदयपुर का प्राकृतिक सौन्दर्य बड़ा आकर्षक है। झमाल गीत में शिवबक्ष पाल्हावत तथा कविराव बख्तावर ने शिकार, राजाओं की सवारी तथा नारी सौन्दर्य आदि के वर्णन के अतिरिक्त वहां की प्राकृतिक छटा को भी कम महत्व नहीं दिया है।

राठौड़ पृथ्वीराज ने अपनी वेलि में षड् ऋतु वर्णन रुक्मिणी तथा कृष्ण के संयोग शृंगार को व्यक्त करने के लिए किया है, परन्तु वहां भी प्रकृति का आलम्बन रूप ही प्रधान है, क्योंकि प्रायः एक ऋतु का पूरा वर्णन कर देने के पश्चात् अन्त में कृष्ण तथा रुक्मिणी की केलि का संदर्भ देकर अपने वर्णन का औचित्य सिद्ध करने की चेष्टा मात्र रही है। कालीदास के ऋतुसंहार की परिपाटी भी इससे कुछ मिलती जुलती ही है।

पृथ्वीराज ने अपनी सूक्ष्म पर्यवेक्षण दृष्टि का परिचय देते हुए अनेक अलंकारों के सहारे प्रकृति की विभिन्न दशाओं और उनके प्रभाव का बड़ा ही आकर्षक तथा सजीव चित्रण किया है। उदाहरणार्थ कुछ पद्यांश उद्धृत हैं—

ग्रीष्म

आकुल थ्या लोक कहवो अचिरज,
वंछित छाया ए विहित।
सरण हेम दिसि लीधो सूरिज,
सूरिज ही त्रिस आतरित ॥[1]

(1) वेलि क्रिसन रुकमणी री : सं० ठा० रामसिंह और सूर्यकरण पारीक, पृ० २१६, दो० १८८

वर्षा

वरसते दड़ड़ नड़ अनड़ वाजिया,
सघण गाजियौ गुहिर सदि ।
जल़निधि ही समाइ नहीं जल़,
जल़ वाल़ा न समाई जल़दि ।।[1]

शरद

पील़ाणी धरा ऊखधी पाकी,
सरदि काल़ि एहवी सिरी ।
कौकिल़ निसुर प्रसेद ओसकण,
सुरति अंति मुख जिम सुत्री ।।[2]

शिशिर

वीणा डफ महुयरि वंस वजाए,
रौरी करि मुख पंचम राग ।
तरुणी तरण विरहि जण दुतरणि,
फागुण घरि घरि खेल़ै फाग ।।[3]

वसंत

कामा वरखंती काम दुघा किरि,
पुत्रवती थी मन प्रसन ।
पुहप करणि करि केसू पहिरे,
वनसपती पील़ा वसन ।।[4]

वेलि के अतिरिक्त कुछ अन्य गीतों में भी प्रकृति का सुन्दर चित्रण मिलता है। शिवबक्ष पाल्हावत ने अलवर की झमाल़ में वहाँ की प्राकृतिक सुषमा का वर्णन निम्न प्रकार किया है—

अंब कदंबा आदि दै वहु फूली वणराय ।
उभर सुगंधी डालि़यां, भमर रह्या भरणाय ।।
भमर रह्या भरणाय, कैतकी कैवड़ा ।
लता रही घर लूंम, विसद डीघा विड़ा ।।

---

(1) वही, पृ० २३३ दो० १६६
(2) वही, पृ० २२८, दो० २०७
(3) वेलि क्रिसन रुकमणी री, सं० रामसिंह, सूर्यकरण, पृ० २३७, दो० २२७
(4) वही, पृ० २४१, दो० २३६

खिरणी ताल खिजूर, भला मनभावणां।
मैमंत कौकिल मोर, क सोर सुहावणां।।[1]

राजस्थान की गिरिमालाओं में आबू का महत्त्व प्राचीन काल से चला आया है, धार्मिक तथा ऐतिहासिक दृष्टि से वह जितना महत्त्वपूर्ण है, उतना ही महत्त्वपूर्ण अपने प्राकृतिक वैभव के कारण भी है। वर्षा ऋतु में उसका सौन्दर्य और भी बढ़ जाता है। निम्नांकित गीत में इसका अद्भुत सौन्दर्य वर्णित है—

वावीया मोर कोयलां बोलै, मद आयो गिर हेक मनों।
डूंकां गल् कांठल् लपटांणी, बणियो अरबुद नवल् बनो।।
छहुंरित रहे वेलां तर छायो, झरणां नवल् खयास झरैं।
वरसालो आयो मतवालो, कालो गिरां वणाव करैं।।
वणियां डूंकां वांका जल्हर, जोरां वरसैं जूवो जूवो।
तिण वेलां लागे आधन्तर, हरियो वन गरकाव हूवो।।
गरडांणां लागो घेंघीगर, पवै मेर सूं ऊंच पणो।
उण रुत में दीठां बण आवै, तद जेठी कयलास तणो।।[2]

अन्तिम पंक्ति में आबू को कैलाश से भी बढ़कर माना है, यह कवि के अपनत्व का परिचायक है।

(ख) उद्दीपन रूप :

प्रकृति के उद्दीपन रूप का गीतकारों ने प्रायः शृंगार की पृष्ठ-भूमि को पुष्ट करने में प्रयोग किया है। विरहिणी को प्रकृति की कामोत्तेजक सुषमा जहां दुःखद प्रतीत होती है, वहां संयोगिनी को आनन्ददायक। मरु प्रदेश में वर्षा का विशेष महत्त्व है, अतः ग्रीष्म के पश्चात् उमड़ती हुई काली घटाओं को देखकर जब चातक, मयूर आदि बोलने लगते हैं, धरती तक विचलित हो जाती है। तब वियोगिनी का विरह असह्य हो जाता है और वह पुकार उठती है—

वरसैं झड़ मेह पपीया वोलैं, धर हुलसैं उमंग धरैं।
करै अरज मृगनैणी कामणी, घणा गुणजाणग आव घरैं।।
कुहकैं मोर बैठ तर केतां, थट नर नार संजोग थिया।
देखैं पावस त्रिया यम दाखैं, प्राण पियारा आव पिया।।[3]

---

(1) अलवर की झमाल् : शिवबक्ष पाल्हावत, पृ० १८, छंद ६८
(2) शोध पत्रिका, उदयपुर, सौभाग्यसिंह शेखावत, भाग १२, अंक ४, पृ० ७६
(3) वही, पृ० ८०

ऐसी कामोत्तेजक ऋतु की मादक रातों में जब विरहिणी किसी संयोगिनी के सुख की कल्पना करती है तो उसके दुःख का ठिकाना तक नहीं रहता—

घूमी घणहार री घटा, विरछां लूंबी वेल ।।
तरां विलूंबी नारियां, खरी हजूमी खेल ।।
खरी हजूमी खेल, फैल खिर-चर करै ।
पाज सरोवर पेल, भली छवि सूं भरै ।।
मिली घटा मघवांण सरित समदां चली ।
अली रही मैं आज, अभागण अकेली ।।[1]

सुहावने मौसम में संयोग सुख को छोड़ जब पति को कार्यवश विदेश जाने को तैयार होना पड़ता है, तब तो बड़े पशोपेश की स्थिति हो जाती है । तब संयोग सुख से विलग होने के लिए प्रियतमा प्रकृति को माध्यम बनाकर अनेक प्रकार के तर्क प्रस्तुत करती हुई पति से प्रस्थान न करने के लिए अनुनय-विनय करती है । यथा :

काली वल वल कांठलां, उमड़ै छहुँ दिस आय ।
रात दिवस खबर न पड़ै, सूरज गयौ छिपाय ।।
सूरज गयौ छिपाय, अजग घण मांय रे ।
वासर निस जारहे, इलां पर छाय रै ।।
कामण आखै अरज, सुणीजै कंथड़ा ।
हरिया गया लुकाय, न लाभै पंथड़ा ।।[2]
ऊंडा ओरा ओरियां, निपटज होय निवास ।
पलंग बिछायर पौढ़णो, प्राण प्रिया ले पास ।।
प्राण प्रिया ले पास, विधु मुख कामणी ।
(तो) रजनी लागै वहोत, घणीज सुहावणी ।।
आप रयां मो पास, रहे मन अत उमंग ।
सामीनां अब काढ़, सियालौ मूझ संग ।।[3]

---

(1) अलवर की झमाल : शिवबक्ष पाल्हावत, छंद ३८

(2) बारह मासा झमाल (सौभाग्य सिंह शेखावत का संग्रह), छंद ६

(3) वही, छंद २३

दुष्काल वर्णन

राजस्थान निवासियों के जीवनयापन का मुख्य साधन कृषि रहा है। सिंचाई के अल्प साधन होने के कारण एक मात्र वर्षा पर ही उन्हें अवलंबित रहना पड़ता है। अतः वर्षा के अभाव में भयंकर दुष्काल का सामना करना पड़ता है। अनेकों वार इन अकालों ने प्रजा को संकट में डाला है। कवियों ने उनकी विभीषिका का वर्णन कर प्रजा की करुणाजनक स्थिति का चित्रण किया है। इस प्रकार की रचनाओं में कवि ऊमरदांन रचित 'छपना रौ छंद'[1] वहुत प्रसिद्ध है। गीतों में भी हमीरदांन रतनूं व वाँकीदास जैसे कवियों ने चित्र प्रस्तुत किये हैं।

धरती का उजड़ना तथा अन्न व पानी की कठिनाई से तंग आकर जनता दुष्काल को पापी व चोर कहकर कोसती है :

दुःख रा देवाल़ धान घास रा दुकाल़।
हतीयारा गऊमारा हराम रा खीण हारा,
चीमोतरा जाव परौ कूतरा चंडाल़ ।।[2]

हालत यहाँ तक पहुँच जाती है कि पाव अन्न के वदले मानव तक विकने लगते हैं :

मानव विकै पाव अंन साटै, दुरभख जग में ताव दियो।[3]

जनता को अन्त में विवश हो अपना देश छोड़कर मालवे के लिए प्रस्थान करना पड़ता है—

अंन विन लोक चहूं चक औड़ै, गया मालवे छोड़ै गेह।[4]

यह दुर्भिक्ष वलख और कंधार देश के निर्दयी लुटेरों से कम क्रूर नहीं है—

खल़क्क रा वैरी जांण वलक्क खंधार।[5]

ऐसी विकट परिस्थिति में लाधे सोलंकी जैसे विरले दानी पुरुषों ने ही प्रजा की सहायता की—

खोटै समय उणंतरै खांडप, सोलंकी दरसियो सुकाल़।[6]

---

(1) ऊमर काव्य : सं० जगदीशसिंह गहलोत, जोधपुर।
(2) अकाल रो गीत : हमीरदांन रतनूं, सा० सं०, उदयपुर का संग्रह।
(3) लाधा सोलंखी रो गीत : वांकीदास ग्रंथावली भाग ३, पृ० १६
(4) वही।
(5) अकाल़ रो गीत : हमीरदांन रतनूं, सा० सं०, उदयपुर का संग्रह।
(6) लाधा सोलंकी रो गीत : वांकीदास ग्रंथावली, भाग ३, पृ० १६

उपरोक्त दुष्काल-वर्णन से यह वात स्पष्ट हो जाती है कि यहाँ के कवियों की प्रतिभा प्रकृति के सुरम्य स्वरूप पर ही मुग्ध नहीं हुई, उन्होंने प्रकृति की क्रूरता और उसके प्रकोप के फलस्वरूप उत्पन्न हो जाने वाले आर्थिक संकट की भी उपेक्षा नहीं की और ऐसी संकटापन्न परिस्थिति में जनता की सहायता करने वाले दयालु व्यक्तियों की मानवतावादी दृष्टि की सराहना कवि ने मुक्त कण्ठ से की है।

इस विस्तृत विवेचना के आवार पर यह भली-भाँति स्पष्ट है कि क्या रस, क्या अलंकार, क्या भाषा, क्या शैली, और क्या वर्णन-वैशिष्ट्य सभी, दृष्टियों से गीतों में असाधारण काव्य-सौष्ठव के दर्शन हमें होते हैं।

●

षष्ठ अध्याय

•

डिंगल गीतों में समाज

डिंगल गीतों में समाज | ६

गीतों के उद्भव और विकास पर प्रकाश डालते समय उनकी ऐतिहासिक तथा सामाजिक पृष्ठ-भूमि पर भी विचार किया जा चुका है। उसे देखने पर यह भली-भाँति विदित होता है कि राजस्थान एक लंबे समय तक अनेक प्रकार की राजनैतिक परिस्थितियों में से गुजरता रहा है।

राजनैतिक संघर्ष के साथ-साथ दो संस्कृतियों का संघर्ष भी मुगल सल्तनत के अंत तक चलता रहा है। सम्राट अकबर ने धार्मिक सहिष्णुता दिखलाकर इसे शान्त करने का प्रयास अवश्य किया, परन्तु दोनों संस्कृतियों में इतनी असमानता थी कि एक संस्कृति दूसरी संस्कृति को पूर्णतया आत्मसात् न कर सकी और औरंगजेब के काल में आकर तो उसने बड़ा भीषण रूप धारण कर लिया। राजस्थान इन संघर्षों की धुरी रहा है। गीतकारों का संघर्ष में जूझने वालों से बहुत नजदीक का सम्बन्ध था। अतः यहाँ के समाज में व्याप्त इस लंबे संघर्ष का भावात्मक इतिहास इस काल के गीतों में अनेक प्रकार से व्यक्त हुआ है—चाहे वह सामाजिक मान्यताओं के रूप में हो, धार्मिक आस्थाओं के रूप में हो या नारी की अद्भुत भावनाओं के रूप में।

कुछ चुने हुए गीतों के आधार पर गीत-साहित्य में चित्रित यहाँ के समाज की प्रमुख विशेषताओं को यहाँ प्रकट किया जा रहा है।

(क) सामाजिक मान्यताएँ :

गीतों में तत्कालीन समाज की अनेक मान्यताएँ व्यक्त हुई हैं। प्रमुख मान्यताएँ निम्न प्रकार हैं :—

(१) धरती-प्रेम :

अपनी धरती के प्रति मनुष्य का प्रेम आदिकाल से चला आया है, क्योंकि वह न केवल उसकी क्रीड़ा-स्थली है, अपितु उसका भरण-पोषण व अनेक प्रकार की विपदाओं से रक्षा करने वाली भी है। वैदिक ऋषियों ने भी उसे पूर्वजों की माता

तथा उनके विक्रम की क्रीड़ा-स्थली के रूप में पृथ्वी का स्मरण किया है।[1] इसमें कोई सन्देह नहीं कि माता के रूप में पृथ्वी की कल्पना बड़ी ही भव्य तथा युक्ति संगत है, परन्तु इस धरती की रक्षा के लिए राजस्थान के वीरों की पीढ़ियों ने एक बार नहीं, अनेक बार रक्त की नदियाँ बहाकर उसे रंगा है[2] शृंगारित किया है। अतः गीतकारों ने उसकी कल्पना चिर-नवीन और चिर-यौवना नारी से की है।

उनके अनुसार वीर पुरुष ही धरती को प्राप्त कर सकता है और उसी को उसे भोगने का अधिकार भी है।[3] वह उसे उसी प्रकार निःशंक होकर भोगता है, जिस प्रकार इन्द्र शची को।[4] इतने बलिदानों से प्राप्त की गई धरती को दूसरे के अधिकार में जाने देना तो दूर रहा, उस पर किसी विपक्षी द्वारा नक्कारे-निशान तक बजाना असह्य है।[5] उसके स्वामी की अनुपस्थिति में यदि किसी मदमस्त गजेन्द्र जैसे शत्रु ने धरती को पदाक्रान्त करना चाहा तो अनल-पक्षी की तरह उसने तुरन्त पहुँच कर आक्रान्ता का संहार कर दिया।[6] पृथ्वी स्वयं भी अपने पर ऐसे ही वीरों का अधिकार मानती है।[7] वह उनकी सेवा में हाथ जोड़े खड़ी रहती है।[8] नित्य नवयौवना नारी के समान पृथ्वी का भरपूर रसपान भी वे ही करते हैं।[9] पृथ्वी लक्ष्मी का स्वरूप है, जो निर्बल व्यक्तियों के पास कभी नहीं रहती। उसकी इच्छाओं

---

(1) यस्यां पूर्वजना विचक्रिरे। अथर्ववेद, १२।५

(2) रत्रां आटपाटां नदी वहाई रोसाग। (गीत चैनसिंघ रो)

(3) मारकां हाथ आवै सदा मेदनी, तिकै नर भोगवै कीप धरती तणो।
(गीत सौढ़ा वीर रो)

(4) सची इंद जैम विलसंत सुख साज सा, मही मुगधा तरण कंत महाराज सा।
(गीत महाराज माधोसिंघ कछवाहा रो)

(5) आगराई तन ऊपरां ना वाजिया निसाँण।
(गीत नामिल वांचलौत रो)

(6) समी चंपी धरा वरंग वाल़े समै, धीठ मल फरंग वाले करी धींग।
असै छक हूँ तठै आयौ अचाणक, सबल़-खग तठै वाण अरीसींग॥
(गीत महाराणा अरिसिंघ रो)

(7) मही माने अमल असा मरदां तणा। (गीत महाराणा भीमसिंघ रो)

(8) जीव रहै जौड़ियां हाथ ऊभी जमी। (वही)

(9) जमी नत नवादी नार जौबनां, पूर रस सवादी रसीया पना।
(गीत महाराणा भीमसिंघ रो)

की पूर्ति देवता तक करने में असमर्थ होकर उसे छोड़ भागे।[1] परन्तु उसे भी अतुलनीय सामर्थ्य के धनी वीर ने अपने वशीभूत कर उसका उपभोग किया है।[2] पृथ्वी परिणीता पत्नी के समान है, जब वह दूसरे के अधिकार में चली जाती है तो मानो उसकी पत्नी ही उसके (पति के) चूड़ा आदि सुहाग-चिह्न सहित अन्य पुरुष की भार्या बन जाती है।[3]

वीर पुरुष के लिए पृथ्वी जाते समय अथवा अर्द्धांगिनी का अपहरण होते समय ही जीवनोत्सर्ग का उपयुक्त अवसर होता है।[4] गीतों में धरती-प्रेम के ऐसे अनेक उदाहरण बिखरे पड़े हैं, जो उस समाज की भावनाओं और अनेकानेक मान्यताओं को समझने में भी सहायक हैं।

(२) वीरपूजा—

सारी मानवता में विश्वव्यापी वीरपूजा है। प्राचीन भारतीय संस्कृति में भी वीर पुरुष एवं वीरगति को असाधारण महत्त्व दिया गया है। वेदव्यास ने महाभारत में कहा है कि क्षत्रिय युद्ध में विजय प्राप्त करके अथवा प्राणों की बलि देकर जो गति प्राप्त करता है, वह तपस्वी तपस्या द्वारा भी प्राप्त नहीं करता। व्यक्तिगत वीरता एवं साहस की प्रशंसा डिंगल के कवियों ने मुक्तकंठ से की है। समूचा डिंगल-साहित्य वीर-भावना से अनुरंजित है। हजारों छंदों में कितने ही ज्ञात एवं अज्ञात वीरों की कीर्तिगाथा बिखरी हुई है। मुगलकाल में विदेशी सत्ता का सामना करने तथा अपने धर्म व देश की रक्षा के हेतु यहाँ के वीरों को सदैव तत्पर रहना पड़ता था। उनके घोड़ों से क्षण-भर के लिए भी जीन नहीं उतरते थे और न ही कभी तलवार उनके हाथ से अलग होती थी।[5] मुगल सेनाएँ प्रायः बहुत बड़ी संख्या में सजधज कर आक्रमण किया करती थीं, जबकि यहाँ के योद्धाओं को

---

(1) घण छल रमी तज छैल निबलां घणां, तज गया देव लख छंद अबला तणा।
(गीत महाराणा भीमसिंघ रौ)

(2) तूं लिये भांज भड़ भोग कमला तणा।
(वही)

(3) खंवा-खांच चूड़ै खावंद रै, उण हिज चूड़ै गई इला।
(गीत चेतावणी रौ, बांकीदास री कह्यो)

(4) महि जातां चींचातां महिला, खेलें ग्रे दुय मरण तणा अवसाण।
(वही)

(5) उतरै पलांण न हेकोई अवसाण, असि नैं असमर बेऊ सना।
(अज्ञात)

अकस्मात् ही प्रवल शत्रु का सामना करने के लिए तैयार हो जाना पड़ता था। ऐसी स्थिति में बिना किसी सोच–विचार के योद्धागण कम संख्या में होते हुए भी शत्रु से भिड़ पड़ते थे, जहाँ व्यक्तिगत वीरता का बड़ा महत्त्व होता था। विजय अथवा पराजय को गौण समझने वाले चारण कवियों ने अपने गीतों में सदैव इस भावना को प्रमुखता दी है और वीरगति प्राप्त करने वाले योद्धा को सबसे श्रेष्ठ माना है।

जिस वीर का सिर व शरीर टुकड़े–टुकड़े होकर तलवारों की धाराओं पर ही रह गया, उसकी प्रशंसा करते हुए वे कभी नहीं अघाते।[1] इस प्रकार का अन्यतम वीर वीरगति को प्राप्त होने के पहले असंख्य शत्रुओं को मौत के घाट उतारता है।[2] वीर स्वभाव से निश्चिन्त होता है, परन्तु संकटापन्न स्थिति का संकेत पाते ही वह युद्ध–भूमि की ओर चल देता है।[3] समर में पैर पीछे रखने से स्वयं तो क्या, उसके पूर्वज तक लज्जित होंगे, यह समझ कर वह दूने जोश के साथ शत्रुओं से लड़ता है।[4] वह प्रवल शत्रुओं के आतंक से किसी भी हालत में भयभीत होकर अपने स्थान से नहीं हटता।[5] योद्धा का मरण भगवान के हाथ में भले ही हो,[6] उसे रणक्षेत्र से भगाना तो उसके भी हाथ में नहीं है।[7] जिस वीर में इतना आत्म–विश्वास है, समय पड़ने पर भगवान स्वयं भी अपनी रक्षा के लिए उसे पुकारता है–प्रेरित करता है।[8]

---

(1) पड़ियौ नह धरण न भखियौ पंखी, ऊपाड़ै न जलायौ आग।
अरजन गौड़ तणौ तन आखौ लड़तां गयौ लोहड़ां लाग।।
(गीत अर्जुन गौड़ राजगढ़ रौ)

(2) हैकण वकै लेगयो हांके, सात अणी उर चाढ़ सतौ।
(गीत सत्रुसाल हाडा रौ)

(3) लाग गैणाग भुज तोल खग लंकाला, 'जाग हो जाग कलियांण जाया।
(गीत अमरसिंघ राठौड़ बीकानेर रौ)

(4) भड़ अभमल चिमनौ किम भाजै, गिर भाजै तो लाजै गोपाल।
(गीत अभयसिंघ चिमनसिंघ रौ)

(5) हाडौ छोडी न हवेली बाहर, नाहर जिम कढ़ियौ न डरेल।
(गीत बलवंतसिंघ हाडा रौ)

(6) मारणौ हाथ आपरे माहव। (गीत बलू गोपालदासोत रौ)

(7) भाजावण सारै भगवंत रै, (तौ) भाजावै मोनै भगवंत। (वही)

(8) साद मौहण करै आव रै आव सूजा। (गीत सुजाणसिंघ रौ)

ऐसा वीर सदा अपने वल से यश को जीत कर दहेज में पृथ्वी को ग्रहण करता है।[1] इस प्रकार के वीरों की कीर्ति को गाते-गाते कविगण कभी नहीं अघाते।[2] वह अपना नाम जहाँ चन्द्रलोक तक पहुँचा देता है,[3] वहाँ अपने कुल को भी कीर्ति से समुज्ज्वल करता है।[4] जीते जी उसकी कीर्ति को अपयश रूपी चोर चुरा न लें, इसके लिए सजग प्रहरी की तरह सतर्क रहता है।[5] मरने के वाद उसका यश इस पृथ्वी से तव तक लुप्त नहीं होता, जब तक गिरनार तथा आवू पृथ्वी पर कायम है।[6] ऐसा योद्धा ही अपने सुकृत्यों से मृत्यु-लोक में भी अमृत का पान करता है।[7]

इस प्रकार के कई पराक्रमी योद्धा समाज द्वारा लोक-देवताओं के रूप में पूजे जाते हैं। कल्लाजी के सम्वन्ध में ऐसा विश्वास व्यक्त किया गया है कि जो रोग किसी प्रकार के उपाय से नहीं मिटते वे कल्लाजी की 'धावना' से कट जाते हैं।[8] उन्हें देवताओं का सिर-मौड़ तक कहा गया है।[9] पावूजी राठौड़ के प्रति भी वड़ी आस्था प्रकट की गई है। किसी भी प्रकार की अशान्ति पैदा होने पर अथवा भूत-प्रेतादि के सताने पर जव उनकी आराधना की जाती है तो वे तुरन्त अपनी कालमी घोड़ी पर चढ़कर सहायतार्थ आ पहुँचते हैं।[10]

---

(1) खित दायजी सवल सजस खाट। (गीत रामसिंघ भाटी री)

(2) हारै नहीं वखाणण हार। (गीत रामसिंघ राठौड़ री)

(3) ऊजल गो गीत बूंदी लेहड़ा वजाड़। (गीत वलवंतसिंघ हाडा री)

(4) पाय ज्यूं अनम्बी खंव वंस नूं चढ़ायौ पांणी (गीत चैनसिंघ री)

(5) अपजस चोर आसनो न आवै, जस पोहरै जागै जगमाल।
(गीत जगमाल सीसोदिया री)

(6) इतै जस जितै गिरनार आवू। (गीत पावूजी राठौड़ री)

(7) वीकाहरा वाण विस्तरियो, अत भुव मांहे अनूत।
(गीत राजा रायसिंघ वीकानेर री)

(8) कमवाणी सूरो पूरो करै है सहाय कल्लो, ऐहा रोग मांही कठै नहीं छै उपाय।
(गीत कल्लाजी राठौड़ री)

(9) समरथ सोहो वात करंदा सरखो, मोटा देव देवतां मौड़।
संकट मां नडियां नव सहंना, राज तणो ऊपर राठौड़।।
(वही)

(10) हीड़कसो मर्‌यो विग्रह दसा होवतां, द्रोह कर भूत प्रण मन धकावै।
अराध्यां थकां पावल हरी ऊजालो उठै चढ़ कालवी तुरत आवै।।
(गीत पावूजी राठौड़ री)

(३) कायरता की भर्त्सना :

वीर पुरुषों की जहाँ कवियों ने मुक्तकंठ से प्रशंसा की है, वहाँ कायर पुरुषों की निन्दा करने में भी संकोच नहीं किया है। क्षत्रिय के लिए कायरता सबसे बड़ा अभिशाप है। रण से विमुख होने से बढ़कर कोई पाप नहीं। कायर पुरुष अपनी जान बचाने के लिए पूरे कुल को कलंकित कर देता है।[1] अपने पूर्वजों की परम्परा को छोड़कर प्राण बचाने की अशोभनीय सलाह करने वाले पुरुषों की नारियाँ तक पतियों को अपना जातीय धर्म त्याग देने के लिए कोसती हैं।[2]

कायरों की युद्ध में सदैव बुरी दशा हुई है। रणस्थल में वे पहले तो नक्कारे बजाते हुए प्रविष्ट होते हैं, परन्तु शत्रु का सामना न कर सकने पर जब भागते हैं तो उनके नक्कारे दुश्मनों द्वारा फोड़ दिये जाते हैं, वे अपने प्राण लेकर गायों की तरह रंभाते हुए घर का रास्ता लेते हैं।[3] युद्ध में वीरगति प्राप्त करने वाले योद्धाओं का वरण उनकी प्रिय अप्सराएँ कर लेती हैं।[4] परन्तु भागने वाले योद्धा की अप्सरा विवश होकर उसकी प्रतीक्षा करती रहती है और वह अपने योद्धा रूपी बरातियों को मरवा कर घर भाग आता है।[5] कायर पति का उपहास उसकी पत्नी तक ने भी किया है। युद्ध में गया हुआ पति अपनी तलवार, पगड़ी और घोड़े को खोकर

---

(1) दियो दस पीढ़ियो गुळी दागो।

(गीत ठाकर वखतसिंघ भाद्राजण रो)

(2) छोड़े लीक छाप माथै वड़ां री न धारी चाल,
खोटी सल्ला बिचारी लगाई कुळां खोड़।
नोहरा लै-लै पीवसूं सांभरिया तणी कहै नारी,
मेल आया सारा छत्रीपणारी मरोड़॥

(गीत डूंगरपुर रा चौहाणां रो)

(3) घुरातां त्रंबक ईजत घणी घाटवी, मोड़का आठवी तणा भागा।
घूंकलां कूट हेटा पटक डगारा, फड़ा-फड़ नगारा विहूं फूटा॥
वीखरी खाल दस-दस बगारा, प्राण लै जगा रा गया पूठा।
काम-वेनां तरह डाड मुख करंता, पूंछता आंखियां वहै पाळा॥

(गीत भाटियों, ऊदावतां री वैढ़ रो)

(4) पाखती दलो नै रतन परणीज तै।

(गीत महाराजा जसवंतसिंघ रो)

(5) जै तो वीवाह री वाट जोती जगत, रूक वळ आसियो गियो राजा।
मराड़ी-जान घर आवियो मांडवै, तेल चढ़ती रही अच्छर ताजा॥

(वही)

निश्चय ही लौट आएगा। इसलिए अपनी दासी से उसने भोजन बनाकर तैयार रखने के लिए कहा।[1] परन्तु भोजन पूरा बना ही नहीं उसके पहले ही पति-देव तो घर आ पहुँचे।[2]

अतः कायर का उपहास और उसकी भर्त्सना समाज के सभी अंगों द्वारा की गई है। उन पर लिखे गये काव्य को 'विसहर' की संज्ञा से भी अभिहित किया गया है। वोल-चाल की भाषा में 'भूंडा' कहना भी प्रयुक्त है। वीर का जिस समाज में इतना सम्मान हो वहाँ कायर की ऐसी भर्त्सना होनी स्वाभाविक ही है।

(४) **स्वामि-धर्म**—

स्वामि-धर्म के निर्वाह की असाधारण परम्परा राजस्थान में रही है। इस प्रकार के संस्कारों के कारण ही सामन्तों के अधीनस्थ योद्धाओं में उच्च कोटि का अनुशासन रहता था तथा विकट से विकट परिस्थितियों में अपने आदमियों पर विश्वास किया जा सकता था। स्वामि-धर्म-पालन सभी सुकृत्यों में सर्व-श्रेष्ठ माना जाता था।[3] गीतों में स्वामि-धर्म के निर्वाह की बड़ी प्रशंसा की गई है।

योद्धाओं को अपने स्वामी का आटा-नमक अन्य किसी प्रकार के प्रयत्नों से नहीं पचता, वह तो भालों तथा तलवारों के प्रहार सहन करने पर ही पचता है।[4] अपने स्वामी पर आपत्ति आते समय वह अपने चंचल घोड़े सहित स्वामी की रक्षार्थ इस प्रकार तीव्र-गति से चला आता है, जैसे गंगा हिमालय को तोड़ती हुई नीचे उतर आती है या गरुड़ आकाश से पृथ्वी पर आता है।[5] स्वामि-भक्त योद्धा इस प्रकार

---

(1) कांसो करो सतावी कांमण, भामण पंथ दिस भालो।
पाती पाग पमंग दे पैलां, आसी कंथ उपालो॥
(गीत रायसर रा रावल इन्द्रसिंघ रो)

(2) इसड़ी करी उंतावल इंदे अवसीझै ही आयो।
(वही)

(3) करता तोलै ताखड़ी, लेकर सबै करम्म।
सो सुकृत हिक पालड़ै, अेको स्याम धरम्म॥ (प्राचीन)

(4) पचै नहीं पचलूण ओखद जसो यम पुणै, अजाडां पचै नहीं भलां अड़तां।
धणी रो धान सेला तणा धमाका, पचै तरवारियां झाट पड़तां॥
(गीत जसवंतसिंघ पातावत रो)

(5) सड़ै मग स्याम छल विडंग ताता सतंग, इल सुजस पतंग ज्यां लगन आलो।
बरफ नग तोड़तो छटा गंग वल्यां, आवियो निहंग खग नवल वालो॥
(गीत ठाकर नरसिंघदास शेखावत रो)

के अवसर की प्रतीक्षा में ही रहता है।[1] बादशाह की ताकत को भी अपने स्वामी का वैर लेने के लिए चुनौती दे देता है।[2] क्षत्रियत्व को सार्थक करने के लिए वह उसी क्षण उसका मनसब तक ठुकरा देता है।[3] जो वीर अपने स्वामी के नमक का बदला चुकाने को रणक्षेत्र में डटा रहता है, उसकी कीर्ति सर्वत्र संसार में छाई रहती है।[4] शत्रु तक इस महान् कर्तव्य-परायणता एवं वीरता के कायल होते हैं, तथा उनकी गजारूढ़ मूर्त्तियाँ अपने द्वार पर स्थापित करवाते हैं।[5] ऐसे वीरों में ही राज्य का भार सम्हालने की सामर्थ्य होती है।[6] राजा लोग इस प्रकार के सामंतों के भरोसे ही अपने राज्य का उपभोग निश्चिन्त होकर करते हैं।[7]

अपने-अपने पक्षों की ओर से जहाँ बराबरी की ताकत रखने वाले समान कुल के योद्धा स्वामि-हित के लिए एक-दूसरे को ललकारते हुए लड़कर वीरगति को प्राप्त होते हैं,[8] तब स्वामि-धर्म का निर्वाह करने वाले की आत्मा जहाँ ब्रह्मलोक में जा मिलती है, वहाँ स्वामि-द्रोह करने वाला केवल अप्सरा-लोक में ही

---

(1) विजड़ ऊठियौ घूंण सिर मेर रौ, इसौ अवसांण म्हे कदी पावां।
(गीत बल्लू गोपालदासोत रौ)

(2) बल्लू पतसाह सूं बोलियौ बराबर, मारवा राव रौ वैर मांगां।
(वही)

(3) पटौ नांखै परौ साह सूं चटापड़ी कांम रै कीट सांचै कुमायौ। (वही)

(4) आसल कमंध लूण ऊजवालै खिसियौ नहीं वंदे चहुंकूंट।
(गीत दयाराम आसिया रौ)

(5) सिंधुरा कंध चढ़िया भला सोहिया, राण रा मीच सुरताण रै द्वार।
(गीत जयमल पत्ता रौ)

(6) दाखियौ दीवांण राज मौ थंमै न कोई, दूजौ भाराथ रा महावीर तो ही भुजांभार!
(गीत उम्मेदसिंघ सीसोदिया रौ)

(7) जीवण गराजै राजै साजै देह भोगै जमी, अड़सी नवाजै राजै ईसरा औतार।
(गीत जैतसिंघ मेड़तिया रौ)

(8) धणी मौ राम नै तूझ वखतां धणी, उभै घर बराबर समर जाड़ी।
कुम्भसी एक नै तेजसी तणौ कुल, पलटतां खूंद मूं खता पाड़ी॥
(गीत सेरसिंघ, कुसलसिंघ रौ)

रह जाता है।[1] स्वामि-धर्म से च्युत होने वाले की निन्दा अन्य व्यक्ति तो क्या, उसकी सहधर्मिणी तक किये बिना नहीं रहती—'स्वामी के साथ ही प्राणोत्सर्ग न करने वाले पति को चाहिए था कि वह वहीं विषपान कर प्राण त्याग देता,[2] हरामखोरी के कलंक का टीका अपने माथे पर लगाकर तथा देश की लज्जा गंवा कर घर आने से तो यही ठीक था।'[3]

स्वामि-धर्म की इस असाधारण महत्ता की नींव में उस समय की राजनीति और योद्धाओं की चारित्रिक विशेषताओं का रहस्य छिपा हुआ है।

(५) शरणागत-रक्षा—

शरणागत-रक्षा क्षत्रिय जाति का धर्म रहा है। इस धर्म के पालन के लिए राजस्थान के अनेक महापुरुषों ने साम्राज्य तक की क्षति को सहन किया है। इतिहास साक्षी है कि अलाउद्दीन के सामंत को शरण देकर रणथंभौर के शासक राव हम्मीर चौहान ने अपना सर्वस्व तक न्यौछावर कर दिया था। क्षत्रियों के चरित्र की इस विशेषता के आधार पर ही आज दिन तक याचक उन्हें 'सरणायां साधार' कहकर उनका अभिवादन करते हैं।

गीतकारों ने शरणागत-रक्षा की अनेक घटनाओं को अपने काव्य का विषय बनाया है तथा शरण देने वाले की मुक्तकंठ से सराहना की है। औरंगजेब जैसे प्रबल बादशाह ने जब जनमेजय की तरह शिवाजी रूपी तक्षक को क्रोधाग्नि के यज्ञ में होम देना चाहा तो तपोवनी की तरह आमेर के राजकुमार रामसिंह ने उसे अपनी शरण में लेकर उसकी रक्षा की।[4] उत्तर और दक्षिण की शक्तियों के बीच संघर्ष होने पर रायसल के वंशज राजा भोपालसिंह (खेतड़ी) ने बड़े साहस के साथ खून करके आने वाले को शरण दी।[5] अंग्रेजों के आतंक से भयभीत अनेक सर्प रूपी शासकों ने

---

(1) हरा रौ सती संग सतीपुर हालियो, माल्हियां गैर ब्रह्म जोत मांही।
(गीत सेरसिंघ मेड़तिया रौ)

(2) जहर खाय धणी रै वारणैं देता जीव। (गीत डूंगरपुर रा सरदारां रौ)

(3) आवगी हरांमखोरी माथै लीधी आज।
लुच्चां सारै देस री गमाय दीधी लाज॥ (वही)

(4) सरप दाह जनमेजय पतिसाह झालण सिवौ, प्रथीपति बिन्है हठि पड़ै अणपार।
सरणि साधार खलमार धरिया सगह, आसतीक जेमि थियै राम आधार॥
(गीत राजकुमार रामसिंघ कछवाहा रौ)

(5) किलम उतराध दिखणाद दल क्रोधतां, छत्र धरण रोंदतामांण छीजा।
कहर खूनी सबल सात रातें कमण, बीर तो बिना रायसाल बीजा॥
(गीत भोपालसिंघ सेखावत रौ)

शिव रूपी महाराज मानसिंह (जोधपुर) की भुजाओं के नीचे आकर आश्रय पाया।[1] यशवंतराय होल्कर जैसे दक्षिण के बलिष्ठ शासक तक को उन्होंने शरण देकर अपनी धवल कीर्ति की पताका फहराई।[2] इतने शक्तिशाली महाराजा मानसिंह के साथ छल करने वाले व्यक्ति को उनके सहयोगी सामंत खेजड़ला के ठाकुर शार्दूलसिंह ने जब शरणागत-रक्षा का धर्म निबाहते हुए शरण दी तो आपस में युद्ध होना स्वाभाविक ही था। परन्तु महाराजा मानसिंह ने स्वयं शार्दूलसिंह की प्रशंसा यह कह कर की—'शरण में आए हुए की रक्षा करने वाले हे वीर! तू राजाओं से भी अधिक ताकतवर है। भला, तेरी तलवार की शक्ति का कहाँ तक वर्णन करूँ, तेरे पिता ने अपने युद्ध के चमत्कार में सूर्य को दो घड़ी भर के लिए आकाश में स्थिर रखा था, परन्तु तूने तो असाधारण वीरता दिखाकर एक प्रहर तक सूर्य को आगे बढ़ने से रोक लिया'।[3]

गदर के समय में बड़ी वीरता के साथ लड़ने वाले आउवा के ठाकुर खुसालसिंह को जब मजबूर होकर भागना पड़ा तो बड़ी जोखिम उठाकर मोहकमसिंह के पुत्र रावत जोधसिंह (कोठारिया) ने उसे अभयदान दिया और स्वयं अंग्रेजों से लड़ने के लिए तत्पर हो गया।[4]

इस प्रकार के वीरों के चरणों में आकर शरण प्राप्त करने वाले लोग अपने मन की समग्र एकाग्रता के साथ अपनी कृतज्ञता अमर वाणी में प्रकट करते हैं।[5]

---

(1) तेज गरुड़ गोरा हटै तिण तालरा, तन जगे झाल रा दवंग तातै।
सिरमणि भाल रा जैम हिंदू सरब, मांन चंद्र-भाल रा भुजा माथै॥
(गीत महाराजा मानसिंह रौ)

(2) दिखण ऊथाल जसराज जिसड़ा दुरस, प्रकासै लाल झंडा वरण पूर।
राखतां दिखण सरणै सुजत सेत रंग, सरस बाँबी भुजां अमनमा सूर॥
(वही)

(3) काज सरणांयां भूप सिर रा वलो, दुजड़ धन रावलो कठै दांई।
बाप रवि ठांवियो घड़ी दोय वाजतां, ताहि सुत ठांमियो पोहर तांई॥
(गीत ठाकर सादूलसिंघ भाटी रौ)

(4) पड़ै वक विकट चांपो मुदै पुल गयौ, मड़ां नह छेक उनाह लूंभौ।
तोल खग टेक ना छंडे मोखम तणौ, अेकलो ठौर भुज लड़ण ऊभौ॥
(गीत रावत जोधसिंघ कोठारिया रौ)

(5) सरणाई चरण वखांणै सबदी, मन-जोगी जीहा अमर।
(गीत रामसिंघ राठौड़ रौ)

(६) स्वातंत्र्य-भावना :

स्वतन्त्र एवं निरंकुश जीवन व्यतीत करना वीर की चारित्रिक विशेषता है। शताब्दियों से क्षत्रियों के कुलों का यह स्वभाव रहा है। अपने इस स्वभाव के कारण ही उन्होंने कई बार आपसी बखेड़े मोल लेकर बड़ी क्षति उठाई है। उनकी यह स्वातन्त्र्य-भावना की ज्योति जब अंग्रेजों के समय में मलिन होने लगी तो सूर्यमल्ल मिश्रण जैसे स्वातंत्र्य-प्रेमी ने भी उन्हें यह कह कर जगाया था :—

इक डंकी गिरण एक री, भूलै कुल़ साभाव।
सूरां आल़स ऐस में, अकज गुमाई आव॥

मुसलमानों के निरन्तर आक्रमणों को झेलते हुए भी अपनी स्वाधीनता की रक्षा करने का प्रयत्न यहां के लोगों ने बराबर किया है। बड़े-बड़े सुल्तानों के प्रयत्नों को विफल कर उन्होंने अपने अधिकारों को कायम रखा।[1] शत्रु से हार जाने पर भी चारण कवि सदैव उन्हें फिर से अपना अधिकार प्राप्त करने के लिए उत्साहित करते रहे।[2] इसलिए उन्होंने शत्रु के सामने जाकर अपना सिर झुकाना कभी उचित नहीं समझा।[3] अतः बादशाहों के ऐश्वर्यशाली महलों में जाकर मेल-जोल करने की अपेक्षा उनसे युद्ध-क्षेत्र में ही मुठभेड़ की।[4]

मुसलमानों के एकछत्र राज्य में भी यह भावना अनेक वीरों में दीप्त होती रही, उनके घोड़ों पर मुगलों का चिह्न अंकित नहीं हुआ और न ही उनका मन बड़े मनसबों के लिए ललचाया।[5] ऐसे स्वतन्त्रता के पुजारियों को समाज ने समस्त योद्धाओं में सर्वोच्च स्थान दिया है। दिल्ली के बाजार में जिन्होंने अपने क्षत्रियत्व को

---

(1) कुंभलमेर न दीन्हो कुंभै, सेवा खपै गयो सुल़तांन।
(गीत महाराणा कुंभा रौ)

(2) अेक राड़ भव मांह अवत्थी, औरस आणै केम उर।
(गीत महाराणा सांगा रौ)

(3) सिर नमियौ नहीं सांगाउत, सांमे चलणौ सुरतांण।
(गीत महाराणा उदयसिंघ रौ)

(4) मेल़ न कियौ जाय विच महलां, केलपुरै खग मेल़ कियौ।
(गीत महाराणा प्रतापसिंघ रौ)

(5) अणदगिया तुरी ऊजल़ा असपर, चाकर रहण न डिगियौ चीत।
सारै हिन्दुस्तांन तणै सिर, पातल़ नै चंद्रसेण प्रवीत॥
(गीत राणा प्रतापसिंघ नै चंद्रसेण री)

नहीं वेचा वे समाज के लिए वन्दनीय हैं।[1] इन स्वतन्त्रता-प्रेमी महापुरुषों की ओर भला, सहज में आँख उठाकर कौन देख सकता है ? उनके सामने दुश्मनों को तो अपने प्राणों से हाथ धोना ही पड़ता है।[2] सच्चे अर्थ में ऐसे वीर ही स्व-पुरुषार्थ से उपार्जित अन्न को ग्रहण करते हैं।[3] जो दूसरों की आधीनता स्वीकार कर ऐश्वर्य भोगते हैं, वे एक प्रकार से अपने सम्मान को रहन रखकर ही ऐसा करते हैं।[4]

इस प्रकार की मान्यताएं उस समाज के आदर्श पुरुषों के आत्माभिमान, कष्ट-सहिष्णुता और उच्च कोटि के जीवन-आदर्शों की परिचायक हैं।

(७) **प्रतिशोध की भावना—**

प्रतिशोध की भावना मनुष्य में स्वाभाविक है, परन्तु राजस्थान की संस्कृति में इसका विशेष महत्त्व रहा है। योद्धा की चारित्रिक विशेषताओं में अपना और पराये तक का वैर लेने की क्षमता वहुत वड़ा गुण माना गया है। उसे 'वैरियां तणो वाहरू' तथा 'पराया वैर वालणो' आदि विशेषणों से अलंकृत किया है। वैर लेने वाला योद्धा अपने प्राणों का मोह कभी नहीं करता। यथा:—वाप का वदला लेने के लिए दुश्मनों के असंख्य सिरों से अपनी तलवार को तृप्त कर, वह सपूत उन्हीं के साथ टुकड़े-टुकड़े होकर धराशायी हो जाता है।[5] पिता का वैर लेना तो स्वाभाविक ही है, परन्तु पिता के साथ चाचा का भी वैर लेना असाधारण वीरों का ही काम

(1) हिन्दुथान दिल्ली चै हाटे पतो न खरचै खत्रीपणो।
(गीत महाराणा प्रतापसिंघ री)

(2) वीजाहर हिंदवां भांण तालाविलंद, आंण सुण कमण ओयण उठावै।
पांण राखै जिकै पांण छोड़ै प्रसण।
(गीत महाराजा मानसिंघ री)

(3) आप नामै नाज खाधो विजाई अजीत।
(वही)

(4) हाथीवंध घणा-घणा हैवर वंध, किसूं हजारी गरव करौ।
पातल राण हंसे त्यां पुंरसां, भाड़ै मेहलां पेट भरौ॥
(गीत महाराणा प्रतापसिंघ री)

(5) ऐवी खलतली आराण ऊनी, खलां तंडल खाय।
वाप कज वैरियां घड़च मेलां धूल॥
(गीत वीरमदेव राठौड़ री)

है ।[1] असली वीर अपना बदला दूसरों पर न छोड़कर स्वयं ही ले लेता है ।[2] अपने स्वामी का वैर लेने के लिए वह प्रबल शत्रु से भी मुठभेड़ कर बैठता है ।[3] श्रीकृष्ण के समान अपने पराक्रम से वैर लेने वाले वीर धन्य हैं,[4] परन्तु उस वीर का तो कहना ही क्या जो ब्याज सहित अपना वैर वसूल करता है ।[5]

(८) वचन-पालन—

वचन-पालन भारतीय संस्कृति की बहुत बड़ी विशेषता रही है । वचन की पूर्ति करने वाले सत्पुरुषों को 'काछ वाच निकलंक' कहा गया है, यह उनके चरित्र की उज्ज्वलता का प्रमाण है ।[6] वीर पुरुष जो वचन देता था उसके अनुरूप संसार की साक्षी में कार्य कर दिखाता था,[7] चाहे उसके साथी उसे सहयोग देने में असमर्थ रहे हों ।[8] वचनों के निर्वाह के लिए दुलहिन के साथ भाँवरें लेने वाला पाबू वीर अपनी प्रतिज्ञा की पूर्ति के लिए क्षणभर का भी विलंब न कर वीर का 'बाना' धारण कर लेता है ।[9] वचन-निर्वाह के लिए ही बलूजी चांपावत जैसा योद्धा स्वर्ग को प्राप्त

---

(1) बामो पाणि कणाउलि बाले, पाणि वियो जमदढ़ परठेय ।
झरड़ौ कहै मांटी होई जिंदरा, बूडौ पाबू मांगू वेय ।।
(गीत झरड़ा राठौड़ रौ)

(2) अदल लियो बदलो नकूं राखग्यो उधारी ।
(गीत रावत कांधल चूंडावत सलूम्बर रौ)

(3) अमर रौ वैर चौथे पर उछलयो, बलू नैं आगरौ हुवा बाथौ ।
(गीत बलूजी चांपावत रौ)

(4) राघव जिम नमी वलाक्रम रतना, उग्राहिया वैर असमांन ।
(गीत राव रतनसिंघ हाडा बूंदी रौ)

(5) साह दरगाह में वैर नवसंहसा, व्याज लीधां थकां वैर वलियो ।
(गीत पदमसिंघ राठौड़ रौ)

(6) सांचमुख वयण द्रढ़ काछ साजा ।
(गीत महाराज वाघसिंघ राठौड़ रौ)

(7) काल कहिया वचन अभा सूं अभैक्रन, आज आलम तणी नजर आया ।
(गीत अभैकरण दुरगादास रा पोता रौ)

(8) बांकड़ा भड़ां रण सरब पालटै वचन, भलो नरवाहियौ वचन मूरा ।
(गीत संग्रामसिंघ सकतावत रौ)

(9) निवाहण वयण भुज वांविया नेत : पंवारां सदन वरमाल सूं पूजियौ,
खलां किरमाल सूं मूजियो खेत । (गीत राठौड़ पाबूजी रौ)

करने के पश्चात् भी समय पड़ने पर राणा की सहायतार्थ युद्ध में उपस्थित होता है।[1] अतः नरलोक में वचन-पूर्ति बहुत बड़ा कर्त्तव्य माना गया है।

(९) उदक न लोपना—

चारण, भाटों व ब्राह्मणों आदि को दान के रूप में जो भूमि दी जाती थी, उसे 'उदक' कहा गया है। उदक में दी हुई भूमि को वापिस लेना बहुत बड़ा अपराध माना जाता था। यह मान्यता समाज में परम्परा से रही है कि जो व्यक्ति दान में दी हुई जमीन को वापिस ले लेता है, वह यदि दान करता है तो भी पुण्य का भागी नहीं होता—'उदक उथापै ताहि उदक नहीं लग्गे।' चारणों को दी हुई इस प्रकार की जमीन 'सांसण' (गांव) कहलाती थी तथा ब्राह्मणों को दी हुई 'डोहली'। यह दान यश तथा धर्म के निमित्त दिया जाता था।[2] राजस्थान के शासकों व जागीरदारों ने समय-समय पर सैकड़ों गांव उपरोक्त जातियों को दान में दिए हैं, जिनका उल्लेख ख्यात-लेखकों ने भी किया है। महाराजा मानसिंह (जोधपुर) ने अकेले ही ६१ गांव (सांसण) चारणों को दिए थे–'इकसठ सांसण अप्पिया मान गुमनाणी।'

सांसण के सम्बन्ध में गीतों में यह धारणा पाई जाती है कि कोई भी व्यक्ति यदि लोभवश 'सांसण' जब्त करने का इरादा करता है तो वह अपने वंश को कलंकित करता है।[3] जो उदक की प्रतिष्ठा को भंग करता है उसका पूरा वंश ही समाप्त हो जाता है और जो उदक का पालन करता है, उसके वंश की वृद्धि होती है।[4]

(१०) छल की निन्दा—

राजनीति में छल एक अमोघ अस्त्र है। भगवान श्रीकृष्ण तक उसका सहारा लिए विना नहीं रहे, परन्तु आदर्श वीर के लिए छल का कार्य अशोभनीय है। डिंगल कवियों ने सदैव छल को बुरा माना है तथा उसे नीचता का कार्य कहा है। गीतों में इस प्रकार के भाव स्थान-स्थान पर मिलते हैं। यथा—विश्वासघात करके

---

(1) नरपुर तणो वचन निरमायो, वसियां सुरपुर पछै वलू।
(गीत वलूजी चांपावत रो)

(2) दान जस धरम रै वासते दिरीजै। (गीत महाराजा परतापसिंघ रो)

(3) लोभ काळो जिका सांसण लगावो, कुलां लागो तिकां वंस काळो।
(गीत किसनगढ़ रै राजा री)

(4) उदक लोपे जियां वंस डूबै अवस, उदक पाळै तियां वंस ऊवरै।
(वही)

किसी को हराना अपकीर्ति को प्राप्त करना व अपने सम्मान को सदा के लिए समाप्त करना है।[1] दगा देकर किसी योद्धा को अपनी सेना द्वारा घेर कर मारना निन्दनीय कार्य है।[2] इस प्रकार धोखे से किसी वीर का प्राणान्त करके कोई भी शक्तिशाली योद्धा अपने किए हुए कुकृत्यों को मिटा नहीं सकता।[3] छलाघात करने वाला अपनी वीरता की झूठी शेखी कुछ ही दिनों के लिए बघार सकता है।[4]

इस प्रकार का कुत्सित कर्म करने वाला चाहे हिन्दू हो या मुसलमान उसे ईश्वर के घर ऐसे कर्मों का जवाब देना ही पड़ता है।[5] अपने ताकतवर सामन्त को यदि कोई राजा धोखे से मरवा देता है, तो उसे उस समय पश्चात्ताप करना पड़ता है, जब प्रबल शत्रु सिंधू राग का घोष कर उसपर चढ़ आता है।[6] सामन्त भी जब अपने स्वामी को विकट परिस्थिति में धोखा देता है तो समाज में उसकी प्रतिष्ठा एक गणिका[7] अथवा भांड से अधिक नहीं रहती।[8]

(११) भाग्य तथा होनहार :

होनहार तथा भाग्य में वीरों का अटल विश्वास रहा है। योद्धा चाहे जितने संकटों का सामना करे, उसके भाग्य में मरना नहीं लिखा है तो उसका मारा जाना

---

(1) वसासघात सूं कांम कमायो बुराई वालो, माजनो गमायो नीवावतां रै महंत।
(गीत नींवावतां रै महंत रौ)

(2) दगो धारणो नहीं छो फैरे चौफेरे फिरंगी दोला,
सता बीज हारणो नहीं छो सवदेस।
(गीत महाराव रामसिंघ हाडा रौ)

(3) देवीदास मांजि दस सहसां, कोढ़ न वै ऊजला किया।
(गीत देवीदास जेतावत रौ)

(4) चूक करै मारै चाचिगदे, कूटी दह दिन बात कूड़ी।
(गीत मांडण सौढ़ा रौ)

(5) खोयो आसुरी धरम आयो बीगोयो मीरखांन,
जोयो नहीं तारकीन आगलो जवाब। (गीत मीरखां रै धोकै देण रौ)

(6) रागां सिंघू पांनां लगां पछतासी राव राजा,
चंद्रहासां वागां याद आसी चहुवांण। (गीत रावराजा रामसिंघ रौ)

(7) गायणी जैम निज धणी बदलै गया। (गीत मारवाड़ रै सामंता रौ)

(8) हमरकै बदलतां भांड सारा हुवा। (वही)

संभव नहीं है।[1] वह तभी मारा जाता है जब विधाता को उसकी मृत्यु मंजूर होती है[2]—केवल होनहार ही योद्धा की मृत्यु का कारण बनता है।[3]

(१२) अतिथि–सत्कार :

अतिथि-सत्कार भारतीय संस्कृति की प्रमुख विशेषता है। राजस्थान की बंजड़ धरती के निवासियों के हृदय में अतिथियों के प्रति आदर-भावना की अंतः-सलिला स्वाभाविक रूप से विद्यमान रही है—'घरै आयो नै मां जायो बराबर' यह कहावत राजस्थान की इस सांस्कृतिक परम्परा की प्रतीक है। अकाल पड़ने पर भी लाखा सोलकी जैसे साधारण गृहस्थ ने भी अपने घर पर आए हुए व्यक्ति को भूखा नही जाने दिया।[4] ऐसे उदार लोगों को 'रोटे राव' तथा 'पंथियां री प्रागवड' कहकर उनकी प्रशंसा की गई है।

अतिथि के सत्कार में किसी प्रकार की कमी न आ जाए, अतः वह चाहे जिस स्थिति में हो, सम्मान के साथ बांह पसार कर उससे मिलने में बड़े आदमी को भी कोई हिचकिचाहट नहीं होती थी।[5] ठिकानों तथा बड़े घरों में साधारण अतिथि की आवभगत सेवकों पर आधारित होती थी। अतः अतिथि का उचित ढंग से सत्कार करने वाला नौकर अच्छा सेवक माना जाता था, क्योंकि वह अपने स्वामी के यश में वृद्धि करता था।[6]

(१३) अमरता की अभिलाषा :

यश चिर-स्थायी है। बड़े-बड़े प्रासाद और किले तक विकराल काल की क्रूर-क्रीड़ा के सम्मुख ध्वस्त हो भूमिसात् हो जाते हैं, परन्तु मनुष्य की कीर्ति के गीत सदा अमर रहते हैं।[7] चाहे युद्धवीर हो या दानवीर, उसे यह संतोष होना स्वाभाविक

(1) मरता फिरै सो नाही मरै। (गीत सहसमल राठौड़ री)

(2) पौढ़ीनाथ ठगाणो वेह रै हाथ। (गीत सवाईसिंघ चांपावत री)

(3) होणहार मारियो सवाई लेखा हाथ। (वही)

(4) भेटे कीय गयौ नंह भूखो, परजा ची कीधी प्रतिपाल।
खोटे समय उणनै खांडप सौलंकी दरसियो सुकाल ॥
(गीत लाखा सोलंकी री)

(5) अंग रै रुधिर चुवंतां आचां, काचां देखत हिया कंपै।
सलख सुजाव दासियो सांप्रत, आव जैत कह मिला अपै ॥
(गीत राठौड़ जैतमाल सलखावत री)

(6) सिरदारां रजपूतां साखरां ठाकरां सको, सपूतां चाकरां तणा साँभली सौभाग।
स्याम री दिखावै भलो सरावै संसार। (गीत सपूत चाकर री)

(7) भींतड़ा भाजि ढ़हि जाइ धरती मिलै, गीतड़ा नह जाय कहै राव गांगो।
(गीत राव गांगा री कह्यो)

है कि उसके सुकृत्यों के कारण अर्जित अपार ख्याति वह विश्व में छोड़ जाएगा, जिसे स्मरण कर उसके वंशज भी गौरव का अनुभव करेंगे। इसलिए वीरों की कीर्ति का अंग्रेजों और मुसलमानों के देशों तक में फैलना,[1] तथा पृथ्वीलोक में ही नहीं, नक्षत्र-लोक तक में उसका पहुँचना[2] आदि मान्यताएँ गीतों में बड़े विश्वास के साथ व्यक्त की गई हैं।

कीर्ति को गीतकारों ने 'पंगुली' के नाम से अभिहित किया है। अतः कीर्ति वैसे पंगु कही जाती है परन्तु असाधारण त्याग करने वाले व्यक्ति उसे अपने कर्त्तव्य के विमान पर चढ़ाकर उसकी प्रदक्षिणा सर्वत्र करा सकते हैं। देश की गिरी हुई परिस्थितियों में जब कीर्ति योद्धाओं और समर्थ पुरुषों की सामर्थ्य में कमी जानकर उन्हें छोड़ती हुई पृथ्वी को त्याग, पाताल लोक में जाने का विचार करती है, तब विरले योद्धा ही उसका हाथ थामकर उसे इस धरा पर रख सकते हैं।[3]

वे लोग वास्तव में बड़े नासमझ और अज्ञानी हैं जो लोभवश असत्य और अस्थायी धन को खर्च न कर अपयश का संचय करते हैं।[4] अमृत रूपी यश के होते हुए भी अपने नाम को अमर न करना अविवेक का परिचायक है।[5] जो महापुरुष अपने यश पर रात दिवस दृष्टि रखते हैं, उनके यश को अपयश रूपी चोर कभी चुरा कर नहीं ले जा सकता।[6] इस प्रकार यशोपार्जन उस समाज का मूल-मंत्र और जीवन का सर्वोत्कृष्ट उद्देश्य मालूम होता है।

---

(1) कैद सूं डूगरौ लावताँ कीरती, फिरंग हिंदवाँण तुरकांण फैली।

(गीत डूंगजी जंवारजी रौ)

(2) रवि चंद जां उडयंद रेणां, रिधू रजवट नांम।

(गीत पिंगल सिरोमणी)

(3) झालै किसौ तो विनां पयाल् जाती काल् झांप,
लाडली पंगुली चंपा अंगुली लगाय।

(गीत आउवा ठाकर खुसालसिंघ रौ)

(4) अखई कहै जसऊ छतै, विख कांई संचौ लोभ वपि।

(गीत अखैराज सोनिगरा रौ)

(5) मणै अखौ कांई करौ नाम भंग, उखद जस लाधौ अपर।

(वही)

(6) अपजस चीर आसनो न आवै, जस पौहरे जागै जगमाल।

(वही)

(ख) धर्म—

धर्म भारतीय संस्कृति का मूल आधार है। व्यापक अर्थ में कुल-धर्म, जाति-धर्म, देश-धर्म आदि भी इसमें समाहित हो जाते हैं। सभी धर्मों का लक्ष्य ईश्वर की प्राप्ति अथवा मोक्ष की प्राप्ति है, किन्तु इस प्राप्ति के नाना मार्ग हैं। हमारी प्राचीन संस्कृति में इसीलिए अनेक धर्म और मत-मतान्तर प्रचलित रहे हैं। राजस्थान शताब्दियों से भारतीय संस्कृति का प्रमुख केन्द्र रहा है तथा मुगल सल्तनत के समय धर्म की रक्षा के लिए उसने बड़ी कुर्बानियां की हैं।

जहाँ तक डिंगल गीतों में धर्म का प्रश्न है, राम, कृष्ण, शिव, शक्ति आदि पर पर्याप्त गीत-रचना हुई है। रघुनाथ रूपक[1] तथा रघुवर जस प्रकाश[2] जैसे लक्षण ग्रंथ राम की कथा को लेकर ही लिखे गये हैं। राठौड़ पृथ्वीराज ने अपनी वेलि में रुक्मिणी और कृष्ण के विवाह की कथा ली है। किसना आढ़ा ने 'हर पारवती की वेलि'[3] में वेलियो गीत के माध्यम से शिव और पार्वती के विवाह का वर्णन किया है। व्रजदास ने अपनी भक्तमाल में दसों अवतारों का सुन्दर वर्णन गीतों में किया है। महाराजा मानसिंह और उनके समकालीन अनेक कवियों ने नाथों पर भक्तिपरक गीत लिखे हैं। विभिन्न अवतारों को लेकर आसा बारहठ, ईसरदास बारहठ, अजवा, ओपा आढ़ा, कान्हा बारहठ, करमसी आसिया, गुलजी आढ़ा, गोपालदास, चतुर्भुज, चंदूलाल भादा, जयमल बारहठ, जसा बारहठ, धना, नन्दलाल मोतीसर, नृसिंहदास खिड़िया, पृथ्वीराज राठौड़, परमानंद विठू, परसराम सिढ़ायच, बुद्धा सिढ़ायच, भगवानदान, रूपा बारहठ, वख्तराम आसिया, शक्तिदांन छाछड़ा, वेदा, सांया झूला, हरिदास जगावत, हम्मीर मेहडू आदि कवियों ने पर्याप्त भक्ति-गीत रचे हैं।[4] कहने का तात्पर्य यह है कि भक्ति-साहित्य के अन्तर्गत सनातन धर्म के विभिन्न मार्गों का सुन्दर दिग्दर्शन कवियों ने गीतों के माध्यम से किया है। सगुण तथा निर्गुण भक्ति-भावना सम्बन्धी चर्चा पहले भी प्रसंगानुसार हो चुकी है। अतः यहां कुछ विशिष्ट धार्मिक मान्यताओं पर ही प्रकाश डालना समीचीन होगा—

(१) संसार की असारता—

संसार से विराग तथा ईश्वर में आसक्ति का मुख्य कारण संसार की असारता का ज्ञान है। भक्त कवियों ने इस असारता को बड़े विश्वास के साथ व्यक्त किया है। यथा—

(1) रघुनाथ रूपक गीतां री : मंछाराम सेवग, ना० प्र० स०, काशी।
(2) रघुवर जस प्रकास : किसना आढ़ा, रा० प्रा० प्र०, जोधपुर।
(3) हर पारवती री वेलि : सं० रावत सारस्वत, चंडीदांन सांदू।
(4) प्राचीन राजस्थानी गीत, भाग १२, सा० सं०, उदयपुर।

एक परब्रह्म परमात्मा के अतिरिक्त इस संसार में सभी वस्तुएं नश्वर हैं। माता-पिता, बांधव, सुत, त्रिया आदि सभी का मोह केवल माया के आडम्बर से बंधा हुआ है।[1] यहाँ तक कि मनुष्य का यौवन भी क्षणस्थायी है।[2] उस यौवन रूपी रत्न को बुढ़ापा सहज ही में लूट लेता है।[3] इस बुढ़ापे ने अर्जुन और भीम जैसे योद्धाओं को भी निर्बल कर दिया था।[4] मनुष्य अपनी देह का गर्व व्यर्थ ही करता है, क्योंकि यह पांच तत्त्व का पुतला तो फिर से पांच तत्वों में मिल जाता है।[5]

अतः अपने कर्मों के वशीभूत होकर जो व्यक्ति नाशवान् वस्तुओं में आसक्ति रखते हैं, वे जीवन और मरण के चक्र में व्यर्थ फंसे रहते हैं।[6]

(२) नाम महिमा :

असार संसार से पार उतरने का प्रमुख साधन भक्तों ने राम-नाम को माना है। अपने गीतों में अनेक प्रकार से उसकी महिमा को व्यक्त किया है। उनकी यह धारणा है कि घोड़े, स्त्री, वस्त्र, सुगंधित पदार्थ, पेय पदार्थ, भोजन आदि का उपभोग जहर के उपभोग के समान है। अमृत रस का उपभोग तो केवल राम-नाम में ही निहित है।[7] जिस प्रकार सुगंध के विना पुष्प, अभ्यास के विना वार्त्ता, भुजाओं कें विना युद्ध, श्वास के विना देह और विश्वास के विना साथी व्यर्थ होते हैं, उसी

---

(1) मात पिता दौलत बंधव मद, सुत तरिया दैक संदाणो।
माया रा आडंबर मांहे, वंदा कैम वंदाणो ॥
(गीत ओपा आढ़ा रौ)

(2) जोवण कारमो विहांणै उठ जासी।
(गीत ईसर भकति रौ)

(3) लूटै तो विण कुण लाखीणो, जोवण सरखो रतन जुरा।
(वही)

(4) अरजण भीम जसा आलीजा, रैसे वैदल कीया रंग।
(वही)

(5) पवन तौ जाय पवन मे पैठे, माटी माटी मांय मिलै।
(गीत पृथ्वीराज राठौड़ रौ कह्यो)

(6) महारोग जामण मरण सदा सेवै मिनख, हुवा करमां वसीभूत हालै।
(गीत भगवानदांन रौ कह्यो)

(7) पवंग त्रिया रस वसत्र न परिमल, लहि जल अनस तलप लग।
माणै जीह सुधा जस माहव, जहर जिसौ माणिवौ लग ॥
(गीत कान्हा बारहठ रौ कह्यौ)

प्रकार भगवान के नाम विना इस संसार में जन्म लेना व्यर्थ है ।[1] इसीलिए सच्चे भक्त की यह सदैव मनोकामना रहती है कि ईश्वर के नाम रूपी मानसरोवर से उसका जीव रूपी हंस कभी विलग न हो ।[2]

(३) देवी पूजा :

शक्ति की उपासना हमारे देश में बहुत लंबे काल से चली आई है। राजस्थान में चारण जाति शक्ति की उपासक रही है । समय-समय पर इस जाति में शक्ति ने अनेक देवियों के रूप में अवतार ग्रहण किया है । उनके चमत्कारों एवं स्तुति आदि का वर्णन चारण कवियों ने स्फुट छंदों में किया है, जिनमें गीतों का भी प्रमुख स्थान है । वारहठ किशोरसिंह ने इन देवियों की संख्या चालीस के करीब वताई है ।[3] ये, देवियाँ राजपूतों के विभिन्न कुलों की कुल-देवियाँ भी मानी गई हैं ।[4] राजपूत समाज इनमें बड़ी आस्था रखता है । देवी की स्तुति करते समय उसको अत्यंत भव्य तथा नाना रूपों में कवि ने देखा है—तू समस्त संसार की जननी है फिर भी कुमारी है, तेरी माया अकथनीय है, भगवान शिव के घर में तू पार्वती है और इन्द्र के घर में तू ही इन्द्राणी के रूप में निवास करती है । तेरी कीर्ति चारों वेदों ने गाई है फिर भला तेरा पार कौन पा सकता है ?[5] ऐसे अनेक प्राचीन अवतरण गीतों में मिलते हैं, जहां कुलदेवी ने संकट के समय अपने सेवक की रक्षा की है । राठौड़ पृथ्वीराज ने अपनी पत्नी की रक्षा के हेतु जब देवी को याद किया तब वह तुरन्त उसकी रक्षा के लिए पहुँची ।[6] रिड़मल को उसकी कृपा से राज्य मिला,[7] सेखराव को उसी ने

---

(1) वास विण पुहप अभियास विण वारता, भुजा कालस विण करण भाराथ ।
सास विन देह वीसास विण संगायी, नांम विण जनम जगि जिसो जगनाथ ।।
(गीत हरिदास जगावत री)

(2) हरी नांउ मानसरोवर हूंता, हुए म दूरि अम्हीणो हंस ।
(गीत कान्हा वारहठ री)

(3) चारण मासिक : चारण जाति में शक्ति के अवतार, वर्ष १, अंक ३-४

(4) आवड़ तूठी भाटियां, करनल राठोडांह ।
श्री वरवड़ सीसोदियां, कांमेही गौड़ांह ।।

(5) जोनी सरूप जगत सोह जायी, कनिया अकथ कहाणी ।
जोगी संभु तणै घर जोगवि, इन्द्र घरै इन्द्राणी ।
पार कोण ताहरो पावै वेदे चहूँ वखाणी ।। (भावन देवी री)

(6) आई आवजै ज्यूं अन्न वाहर आवीजै ।

(7) कीवी तें कोप साजियो कानो, रड़मल ने दीवो तें राज ।
(गीत देवी री)

दुश्मनों के वन्धन से मुक्त कराया[1] और बीकानेर का राव जेतसी भी उसकी कृपा से ही कामरान को परास्त कर सका।[2]

आज भी राजस्थान में देवियों के मंदिर एवं थान बने हुए हैं, जहाँ पर नियमित रूप से आरती, धूप-दीप होता है। इन मंदिरों में करणीजी का देशनोक (बीकानेर) का मंदिर प्रसिद्ध है।

(४) गगा, वेद, गौ, गीता आदि का माहात्म्य :

हिन्दूधर्म में कुछ वस्तुओं का विशेष महत्त्व है। जिस प्रकार सब लोकों में वैकुण्ठ लोक श्रेष्ठ है, उसी प्रकार ज्ञान-ग्रंथों में गीता श्रेष्ठ है और तीर्थों में गंगा तीर्थ श्रेष्ठ है।[3] इसीलिए हरिद्वार को वैकुण्ठ लोक की पैड़ी कहा गया है। गंगा पाप के कपाट तोड़कर परम मुक्ति का द्वार खोलती है। अतः वह सभी के लिए वंदनीय है।[4] ब्राह्मण जहाँ वेदों का उच्चारण करते हैं,[5] गायों के अत्यन्त सुखी रहने के कारण उनके स्तनों में दूध स्रवित होता रहता, है,[6] उन राजाओं के राज्यों में धर्म की हानि नहीं होती।[7] अतः देवताओं, पुराणों, गायों व ब्राह्मणों के प्रति सभी लोगों का सेवा-भाव स्वाभाविक है।[8]

(५) धार्मिक कृत्य—

विधिवत् ढंग से मन्दिर की प्रतिष्ठा करवाना[9] तथा यज्ञ आदि करवाना महत्त्वपूर्ण धार्मिक कार्य माने गये हैं।[10] एकादशी जैसी पुण्य तिथियों पर व्रत आदि

---

(1) सेखराव नूं सुलतांन सपाहां, जड़ियौ सांकल जाली।
पाछौ जिकौ आणियौ पूंगल, देवी थें दाढ़ाली॥
(गीत करणी जी रौ)

(2) कँवी तें मांजे कनियाणी, जैतराव जीतायौ। (वही)

(3) गीता ज्ञान ग्रंथां लोकां वैकूंठ, तीरथां गंगा। (गीत गंगाजी रौ)

(4) जान्हवी हरद्वारी वैकूंठी पैड़ी जिका, पाप रा कपाट भांजै कीजिये प्रणांम।
महापाप काटै परा मुगति रा द्वार मिलै, करां जोड़ि नमौ मात ईसरा कहंत॥
(वही)

(5) अंब फलै विप्र वेद उचारै। (गीत महाराणा जैंसिंघ री)

(6) सुरभी अजै खीर थण स्रावै। (वही)

(7) अवपतियों नासत किम आवै। (वही)

(8) सुराणां पुराणां थैन ब्रह्माणां सेव। (वही)

(9) प्रथीनाथ मन्दिर परणायौ, वसुधा पर छायौ वाखांण।

(10) भांमी सकल जगन मेवल रौ, वेवल रौ जाहर क्रत वोल।
(गीत महाराणा सरूपसिंघ री)

करके दान देना महत्त्वपूर्ण समझा जाता था ।[1] गौ और ब्राह्मण की पूजा हिन्दू लोग अनिवार्यतः किया करते थे और अपने इस धार्मिक अधिकार के लिए प्राणों तक का मोह छोड़ने में भी सच्चे धर्मानुरागियों को हिचकिचाहट नहीं होती थी ।[2]

(6) **धर्म-रक्षा :**

धर्म-ग्रंथों, मन्दिरों, गायों आदि का सम्मान व रक्षा करना अपने धर्म पर अटल रहने का प्रमाण माना जाता था ।[3] मुसलमानों की राज्य-सत्ता के सामने इन धार्मिक उपकरणों की रक्षा करना तथा अपने धर्म के अनुसार आचार-व्यवहार करना बड़ा कठिन कार्य था । मुगलों की दृष्टि प्रायः गायों तथा हिन्दुओं की स्त्रियों पर रहती थी, परन्तु बहादुर व्यक्ति शरीर में प्राण रहने तक उन्हें मुगलों के हाथ में नहीं पड़ने देते थे । उनपर दुश्मनों का हाथ तभी पड़ता जब धर्म-परायण योद्धा के शरीर के टुकड़े-टुकड़े हो जाते थे । वीरों के खून में खुर डुबाने के बाद ही बिखरे हुए मांस-पिण्डों पर पैर रखकर गायें वहाँ से रवाना हो सकती थी ।[4]

ऐसी परिस्थितियों में देवता तक गायों की रक्षा के लिए चिन्तित हो जाते थे ।[5] इस प्रकार गौरक्षा धर्म का एक आवश्यक अंग माना जाता था और उसके लिए बलिदान हो जाना किसी भी धार्मिक पर्व से कम महत्त्व नहीं रखता था ।

अलाउद्दीन खिलजी, मुहमद गौरी तथा औरंगजेब आदि ने हिन्दू मंदिरों का खुले-आम विध्वंस करवाया था । उन अवसरों पर धर्म के सच्चे पुजारी राजपूत वीरों

---

(1) पह ऐकादशी करै पारणो, साखी सूर कहै संसार ।
राइ राठौड़ सांपिया रेवत, केल्हण इम दूजे किसन ।।
(गीत केल्हणरांम रौ)

(2) पूजूं गाय ब्रस हूं पुजूं, सिर जावतौ थको सहूं ।
(गीत कुसल्‌सिंघ ऊदावत रौ)

(3) अहाड़ों सूर मसीत न अरचे, अरचे देवल् गाय उभै ।
(गीत महाराणा प्रतापसिंघ रौ)

(4) खुंचती खुरी रुहिर खीची रैं, घणा असुर रहच्चै घण घाइ ।
कुंमड़ा रैं कुटके त्रंब घेनि गऊ त्रिया लहि गौरी राह ।।
(गीत कुंभा खींची रौ)

(5) अत करती सोच पहर अठटांई, तूं आगे नह चरत तण ।
प्रमब्रह्म सब ब्रह्म कूं पूछै, गऊ कुसी ही कसै कण ।।
(गीत राणा कुंभा रौ)

ने देवस्थानों की रक्षा करने का जी-जान से प्रयत्न किया। मंदिर पर आक्रमण होते समय उन्होंने यह प्रण किया कि सिर पड़ने के बाद ही मंदिर का कलश धरा पर पड़ेगा।[1] देवता स्वयं जब असुर यवनों से भयभीत हो उठते थे, तब वे भी वीरों का ही आव्हान करते थे।[2] धर्म-रक्षक वीर का धड़ कट पड़ने पर ही मंदिर की मूर्ति को असुर छू सकते थे।[3] इस प्रकार धर्म की रक्षा के लिए किए गए उत्सर्गों का वर्णन गीतकारों की सबल लेखनी ने अनेक घटनाओं को लेकर किया है।

(७) राज-धर्म :

प्रजा का पालन तथा शत्रुओं से उसकी रक्षा राजा का सबसे बड़ा धर्म माना गया है। आदर्श शासकों के कर्त्तव्य की प्रशंसा इस विषय को लेकर अनेक गीतों में हुई है—

वही राजा अपने वंश को उज्ज्वल करता है, जो पट्-वर्ण का भली-भाँति पालन-पोषण करता है[4] और प्रजा के हित के लिए कर्ण के समान दानशीलता दिखाकर[5] उसकी आर्थिक स्थिति सुधारने के लिए लाखों रुपयों का ऋण माफ कर देता है।[6] वह भील, मीने जैसी जंगली जातियों के अत्याचारों से प्रजा के जीवन और धन की रक्षा करने के लिए अपनी सेनाओं को भेज कर उनका अन्त करता है।[7]

जनता के वित्त पर डाका डालने वाले डाकुओं से वित्त छुड़ाने के लिए वह उसी तत्परता से उनका पीछा करता है, जिस प्रकार राजा विराट की गायें छुड़ाने

---

(1) उतमंग साथ उतरसी अंडो, अंडा साथ पड़े उतमंग।
(गीत सुजाणसिंघ राजसिंघ री)

(2) पड़तां भार प्रजा पीड़तां, श्री रंग कहियो सिवो सिवो।
(गीत सिवा वाढ़ेला री)

(3) पिंजर सिवा तणौ पग देने, हाथ लगाया पछै हरी। (वही)

(4) अर्क वंस उजवाळ पाळ पटवर्ण सो।
(झमाल महाराजा मंगलसिंघ कछवाहा री)

(5) बाजे न्रप वख्तेस कलु मझ करण सो।
(झमाल महाराजा वख्तावरसिंघ री।)

(6) न्रप रुपया नौ लाख करज माफी किया। (वही)

(7) बंका बाजता भीलड़ा देस लूटता गामड़ा वाळा,
चाळा कुण केवा न काळा झाळाचेट।
रोस अंगी वामीवंध रुखाळा देसरा राखूं। (गीत कुवेरसिंघ राठौड़ री)

के लिए भीम और अर्जुन ने किया था ।[1] डाकुओं के समूह से भिड़कर राजा के अनेक योद्धा वीरगति को प्राप्त हो यश अर्जित करते हैं । ऐसे शासकों के राज्य में चोरी तथा दरिद्रता के भय से कोई भयभीत नहीं होता ।[2] इस प्रकार की सुनीति से ही वह पिता के समान प्रजा का पालन करने वाला कहलाता है ।[3] प्रजा के सुखों के सामने उसके समस्त सुख गौण हैं । यहाँ तक कि नवविवाहिता पत्नी का आकर्षण भी उसकी इस कर्त्तव्य-परायणता में बाधा बनकर उपस्थित नहीं हो सकता ।[4]

(ग) गीतों में नारी

नारी का स्थान समाज में सदा महत्त्वपूर्ण रहा है । नारी की सामाजिक स्थिति और उसकी भावनाओं से किसी भी समाज की आन्तरिक दशा का सही अनुमान लगाया जा सकता है । सच तो यह है कि नारी और पुरुष समाज की इकाई के दो अविभाज्य पक्ष हैं । अतः राजनैतिक पृष्ठ-भूमि में जब हम सामाजिक ऊहापोह के बीच धर्म, संस्कृति और स्वतंत्रता की रक्षा के लिए पुरुष को निरंतर जूझता हुआ तथा प्राणोत्सर्ग करता हुआ देखते हैं तो हमारा ध्यान उस काल की नारी की ओर गए बिना नहीं रहता ।

गीतों में कवियों ने नारी के अनेक पक्षों का उद्घाटन किया है । वह माता, पत्नी, सहयोगिनी, सहधर्मिणी, वीरांगना एवं सती के रूप में समाज में प्रतिष्ठित रही है । नारी के अधिकार पुरुष के समान चाहे न रहे हों, परन्तु उसके स्थान तथा भावनाओं का बड़ा आदर किया जाता था । राजपूत, नारी की मर्यादा के बारे में

---

(1) धाड़े दोयसे धाड़वी घेरी तटाक घाट सूं बेतूं,
सुणे बांब हल्ले खत्रीवाट सूं स्वाराथ ।
वेरिया थाट सूं ताण वेल काज पुगा भूरा बाघ,
पुगा जांणे वेराट सूं भीमाण पाराथ । (गीत खंगारोत कछवाहां रौ)

(2) कोई दालद चोरा तणो भैम करो मत, आठ पहर उचर यम ।
जगमन राणा तणो करै जस, जग ऊपर तलियार जम ।।
(गीत महाराणा जगतसिंघ रौ)

(3) पिता समान प्रजा नै पालै, नेड़ी आंणे नको अनीत ।
(गीत महाराजा सादूलसिंघ रौ)

(4) लोडाऊवां तणे वंसि लागौ, काजि प्रजा तजि राज कंवारी ।।
(गीत दौलतखांन नारायणदासौत रौ)

कितने सतर्क रहते थे, इसका उल्लेख डा० तेस्सीतोरी तक ने किया है।[1] माता, पत्नी, सहधर्मिणी, गृहिणी आदि रूपों में नारी के सामाजिक महत्त्व और स्थान पर भारतीय साहित्य में बहुत कुछ कहा गया है। परन्तु वीरांगना और सती के रूप में गीतकारों द्वारा किया गया चित्रण बड़ा ही विलक्षण है, वह हमारे साहित्य और संस्कृति को निस्संदेह बहुत बड़ी देन है। अतः नारी के इन दो विशिष्ट रूपों पर ही यहाँ प्रकाश डालना समीचीन होगा।

(१) **वीरांगना :**

भारतीय नारी माता-पिता के घर से पातिव्रत-धर्म तथा सद्गृहिणी की शिक्षा लेकर पति के पूर्ण प्रेम को प्राप्त करने की मनोकामना से ससुराल आती है, परन्तु राजपूत नारी अपने पिता के घर से ही युद्धों की भी शिक्षा लेकर आती थी। अतः समय पड़ने पर वह अपने कुल की परम्परा के अनुकूल दोनों ही कुलों को उज्ज्वल करने वाली वीरांगना के रूप में शत्रुओं के सामने डट जाती है।[2] वह हाथी पर चढ़कर दुश्मनों को ललकारती हुई उन्हे हाथ दिखाती है।[3] अपने वीर पुरुषों की तरह वह इस बात से भली-भाँति परिचित है कि युद्ध-क्षेत्र से हटने पर मेरे कुल को कलंक लगेगा, इसलिए वीरों की तरह युद्ध-क्षेत्र में ही प्राण दे देना श्रेष्ठ समझती है।[4] अपने वीर पुत्र पर आपत्ति आते समय वह कुन्ती और गांधारी की तरह रोती नहीं,[5] अपितु दोनों हाथों में शस्त्र ग्रहण कर महादेवी की तरह शत्रुओं पर प्रहार करती है।[6] उसकी प्रेरणा से उसकी पुत्र-वधुएं भी वीरांगनाओं की तरह ही युद्ध

---

(1) The mere fact that Rajput women left the privacy of their zenana to appear at Court was enough to irritate the susceptibility of a rajput like Prithiviraja. Introduction to Veli. page 6.

(2) करण अखियात गुल चाल भूले किसूं, थेट सूं चौगणां विरद थावै।
उभै पख ऊजली रांण घर उजालग, जकी गढ़ छोड़ किण रीत जावै॥
(गीत अगरकंवरी जोधी रौ)

(3) हाथी चढ़ हलकारे हाडी, हाडी भलो दिखाड़ै हाथ।
(गीत महाराणी जसमादे हाडी रौ)

(4) काट लागै मनें कोट खाली कियां, मरै रण खेत रहूं कोट माथै।
(गीत अगरकंवरी जोधी रौ)

(5) जली नहीं सूनी कुंतां ज्यूं, रूनी गिनम गंधारी रात।
(गीत कछवाही किसनावती रौ)

(6) दहूं हाथां करे महादेवी, वीसां हाथां जिसी हथवाह। (वही)

में काम आकर सास के साथ स्वर्ग पहुँचती हैं ।[1] ऐसी वीरांगना के शीश के लिए उमा और शिव के बीच झगड़ा तक हो जाए तो इसमें आश्चर्य की क्या बात ?[2]

इन वीरांगनाओं का यह प्राणोत्सर्ग कायर पुरुषों में भी वीरत्व का संचार कर देता है, तो उनकी संतान में वीरोचित संस्कार उत्पन्न करने में उनकी कितनी देन रही होगी, इसका अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है ।

(२) सती :

राजस्थान के पुरुष जिस प्रकार वीर, दानी और चरित्रवान होते आए हैं, उसी प्रकार नारियां वीरांगनाएं, प्रेमिकाएं व सतियां होती आई हैं । क्षत्रिय जाति के पुरुष और नारियां दोनों ने कर्त्तव्य-पालन और धर्म-रक्षा के लिए बलिदान किया है । पुरुष जहाँ रणक्षेत्र में रिपुओं को हाथ दिखाकर वीरगति को प्राप्त होते थे, वहां वीर नारियां अग्नि-ज्वाला में स्नान कर अपने नैसर्गिक प्रेम और पतिव्रत-धर्म का परिचय देती थीं ।[3]

सती का प्राकृत अर्थ सत्य पर दृढ़ रहने वाली होता है । यह नाम अपेक्षाकृत आधुनिक है । प्राचीन ग्रंथों में इसके लिए सहमरण, सहगमन, अन्वारोहण और अनुगमन शब्द प्रचलित थे ।[4] वेदों में तथा मनुस्मृति में सती होने की व्यवस्था नहीं पाई जाती । विष्णु धर्म-सूत्र में इसका उल्लेख अवश्य है । महाभारत में राजवंश की स्त्रियों का सती होना पाया जाता है ।[5] अतः सती प्रथा हमारे देश में प्राचीन काल से ही चली आई है ।

जहाँ तक विवेच्य-काव्य में सती का प्रश्न है, उसके पीछे मुख्य दो धारणाएं काम करती हुई प्रतीत होती हैं । नारी का विश्वास रहा है कि पति के साथ सती होने वाली स्त्री अपने प्रिय को स्वर्ग में ले जाकर वहाँ सदा के लिए आनन्द का उपभोग करती है अथवा जन्म जन्मान्तर तक वह उसी पुरुष को पति के रूप में प्राप्त करती है ।[6] दूसरा कारण तत्कालीन राजनैतिक परिस्थितियों से सीधा सम्बन्ध रखता

(1) पुत्रां वहू समेत पधारै, सवली लाज वधारै स्रग ।
(गीत कछवाही किसनावती रौ)

(2) उभिया ईस बिनै आहुड़ियां, किसनावती तणा सिर काज । (वही)

(3) स्याम धरम पतिव्रत अति सावह, अंग आराण आसगइ आगि ।
सुजि मिलि जाइ जोत हूंतां स्रग, लोहां भड़ां लाकड़ां लागि ।।
(गीत क्षत्रिय संतान री प्रशंसा रौ)

(4) हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास (प्रथम भाग), पृ० १६५

(5) वही, पृ० १६५

(6) जनम जनम पाऊं प्रिय मूझ । (गीत कूंभै री सती रौ)

है। जब पुरुष केशरिया बाना पहन कर मुगलों से लोहा लेते हुए तलवारों की धाराओं में स्नान कर प्राणोत्सर्ग करते थे, तो विधर्मी शत्रुओं के हाथों में पड़कर कुल-ललनाएं अपने कुल को कलंकित न करें, इसलिए वे अग्नि की पवित्र ज्वाला से स्नान कर अपने नश्वर देह को भस्म कर देती थीं। इस प्रकार के प्राणोत्सर्ग की घटनाएं इतिहास में जौहर के नाम से प्रसिद्ध हैं। पति का शीश[1] अथवा पगड़ी[2] आदि को गोद में रखकर विधिवत् सती होने की प्रथा भी थी। ऐसे प्रसंग भी मिलते हैं जहाँ पति का कोई चिह्न सती होते समय वह अपने पास रखती थी।[3] यह सब अवसरानुकूल हुआ करता था।

आगे जाकर इसी प्रथा ने कुत्सित रूप ग्रहण कर लिया हो, यह अलग बात है, किन्तु उन परिस्थितियों में नारी का यह त्याग समय-सापेक्ष था। उनकी चिताओं की ज्वाला से हमारा धर्म प्रकाशमान हुआ है। नारी के इन संस्कारों ने ही योद्धाओं को प्राणों का बलिदान करके भी धर्म और स्वतंत्रता की रक्षा करने के लिए प्रेरित किया है।

डिंगल कवियों ने अनेक स्फुट छंदों में सती के भव्य-रूप और उसके चिता-रोहण का बड़ा ही मार्मिक चित्र प्रस्तुत किया है। इनमें उमादे भटियाणी रा कवित्त, राव रायसिंह री राणियाँ रा कवित्त, रूप नगर री सतियां रा कवित्त और महाराजा मानसिंह री सतियां रा कवित्त अति प्रसिद्ध हैं। गीतों में भी अनेक कवियों ने सतियों का चित्रण किया है, जिससे सती के स्वरूप तथा उसके सम्बन्ध में सामाजिक मान्यताओं आदि का हमें पता लगता है। सती का रूप द्रष्टव्य है —

वह सती होने समय अपने ललाट पर लाल तिलक लगा कर[4] सभी प्रकार के शृंगारों से सज्जित होती है।[5] मदमस्त चाल से चलती हुई जब चिता की ओर प्रस्थान करती है तो मानो प्रत्येक कदम के साथ अश्वमेध यज्ञ का पुण्य वह अपने साथ संगृहीत करती जाती है।[6] चिता के पास पहुँच कर वह उसी तरह उस पर जा

---

(1) मुहणोत नैणसी की ख्यात : सं० रामनारायण दूगड़, भाग २, ना० प्र० स०, काशी पृ० ३०५

(2) राठौड़ रतनसिंघ महेशदासोत री वचनिका : (भूमिका), राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।

(3) मुहणोत नैणसी की ख्यात : सं० रामनारायण दूगड़, भाग २, पृ० ३०३, ना० प्र० स०, काशी।

(4) सिर लाल काढ़ै तिलक। (गीत सती लालबाई रौ)

(5) सुतन परभा तणौ सिणगार सझ। (गीत सती हमीरां रौ)

(6) पूर तप सजै पग पग असमेद प्रव। (वही)

बैठती है, जिस प्रकार अपने पति के साथ सुमन शय्या पर बैठती थी ।[1] अग्नि प्रवेश करते समय उसके मुख से 'हर-हर' की ध्वनि ढोल आदि वाद्य यंत्रों के बीच सुनाई देती है ।[2] अपने पति के साथ पार्थिव देह को जला कर वह ससुराल और पीहर के दोनों कुलों को उज्जवल करती हुई[3] इन्द्रलोक के महलों में अपने पति के साथ आनन्द का उपभोग करती है ।[4]

(घ) उत्सव और पर्व :

भारतीय संस्कृति में उत्सवों और पर्वों का बड़ा महत्त्व रहा है । प्रकृति की अनुकूल पृष्ठ-भूमि में ये त्योहार बड़ी धूम-धाम से मनाए जाते थे । शासक व नागरिक सभी मिलकर सम्मिलित रूप से इन्हें मनाते थे । समाज के अनेक रीति-रिवाजों, मनोभावनाओं और प्रकृति-प्रेम का घनिष्ठ सम्बन्ध इन पर्वों के साथ जुड़ा हुआ है ।

गीतकारों ने प्रायः वसन्त, गणगौर, तीज, दशहरा आदि का सुन्दर वर्णन किया है । इन वर्णनों में कवियों ने अपनी सौन्दर्य-भावना को भी सुन्दर अभिव्यक्ति दी है । नारी और प्रकृति के सौन्दर्य पर तो वे अत्यधिक मुग्ध हैं । प्रकृति की अनन्त सुषमा के साथ-साथ ललनाओं की क्रीडाओं और हाव-भावों की मनोहारिता अनेक स्थलों में व्यक्त हुई है । यहाँ संक्षेप में कुछ उत्सवों पर प्रकाश डाला जा रहा है—

(१) गणगौर :

गौरी पूजन राजस्थान के प्राचीन त्योहारों में से एक है । मनोवांछित वर प्राप्त करने की कामना से कुमारियाँ उसकी पूजा करती हैं । राठौड़ पृथ्वीराज ने रुक्मिणी द्वारा गौरी पूजन करने का बड़ा भव्य चित्रण अपनी 'वेलि' में किया है ।[5] गणगौर पर्व का गीतों में सुन्दर चित्रण हुआ है । यथा—

---

(1) सेज पौहपां चढ़ी पीव साथे सदा, सेज पावक चढ़ी पीव साथै ।
(गीत सती लालबाई रौ)

(2) धुरां ढाव पतवरत हर हर रसण बावरी ।
बागतां ढोलड़ां पीव बांसे । (गीत सतीजी महाराज रौ)

(3) सासरो पीहर अंजजाय महासती, यलां सकीत अणपार ऊगी ।
(गीत सती हमीरां रौ)

(4) महेल इन्द्र-लोक रंग राज के मांणिया, मांणिया रंग सत लोक महलां ।
(गीत राणा भीमसिंघ री सतियां रौ)

(5) वेलि क्रिसन रुकमणी री, छंद १०३–११०

चैत्रमास में गणगौर का उत्सव पूरा नगर गाजों-बाजों के साथ धूमधाम से मना रहा है।[1] सोलह श्रृंगार-सज्जित नारियां गिरिजा के गीतों से नगर को गुंजित कर रही हैं।[2] वे लूहर नृत्य के साथ तालियां बजाती हुई 'गींदोली' का गीत गा रही हैं।[3] गौरी की सवारी के चारों ओर उसकी परिचर्या के लिए दासियाँ हंसों की पंक्ति के समान शोभायमान हो रही हैं।[4] राजा स्वयं अपने सुभटों के साथ अश्वारूढ़ हो, उत्सव की शोभा बढ़ाता है।[5] झरोखे में बैठी हुई कुल-ललनाएं राजा पर 'वारफेर' कर अपनी शुभ कामनाएं प्रकट करती हैं।[6]

ऐसे आनन्ददायक पर्व पर विवाहिता नारियां अपने प्रवासी पतियों से मिलने की कामना प्रकट करती हैं।[7] वे उन्हें इस अवसर पर आने के लिए यह कहकर संदेश भेजती हैं कि धार्मिक यात्रा पर गए हुए पुरुष, लोभी वणिक, वृद्धावस्था को प्राप्त पुरुष अथवा पत्नी से रुष्ट लोग ही ऐसे अवसर पर घर नहीं पहुँचते, तुम्हें तो अवश्य ही आजाना चाहिये।[8]

(२) सावणी तीज :

राजस्थान में वर्षा ऋतु बड़ी आनन्ददायक होती है। उसमें भी सावन का महीना अत्यन्त सुहावना होता है। इस समय प्रकृति मरुभूमि के खेतों, सरोवरों

---

(1) मास चैत्र उत्सव महा, हुव गणगौर हंगाम ।
हुवै घमल् मंगल् हरख, तिण वर सहर तमांम ।।
(अलवर री झमाल्)

(2) गावै गिरिजा गीत गहर सुर गूंजवै ।
सजि सोलह सिणगार, नारि नव नागरी ।। (वही)

(3) लूहरियां सारंग गींदोली गावती । (गिरजा उछव री झमाल्)

(4) टोली हंसां तेम क दोली दासियां । (अलवर री झमाल्)

(5) होवै नृप तिण दिन हरखि, असि ऊपर असवार ।
लियां सुभट्टां लार, अखाड़ै ऊतरै । (अलवर री झमाल्)

(6) विहद झरोखै बैस से नरेस निहारवै । लखि छवि राई लूण अस्व पर वारवै ।।
(वही)

(7) आज्योजी गणगोर्‌यां प्रीतम पांवणा । (गिरजा उछव झमाल्)

(8) गहर ईं दन गणगौर कै आवै खलक उमाह ।
नह आवै जात्रीक नर कै नह आवै साह ।।
कै नह आवै साह लोभ रा लागिया । कै नह आवै जिकै व्रद्ध पद वागिया ।।
कै नह आवै जिकां नमेलू नार छै । अवर आवजै आज त्रियांण तुहार छै ।।
(वही)

व टीलों पर क्रीड़ा करती हुई दृष्टिगोचर होती है। इस मास में तीज का पर्व आज भी उल्लास के साथ मनाया जाता है। गीतों में इसका बड़ा ही रोचक वर्णन मिलता है। यथा—

स्त्रियों के समूहों के समूह प्रकृति की गोद में क्रीड़ाएं करते हैं।[1] रेशम की डोरियों से झूले बांधकर बड़े आनन्द के साथ उनमें झूलती हुई नारियाँ अपने कोकिल कण्ठों से गीत गाती हैं।[2] अपने घुटनों पर जोर देती हुई सामने की सहेली से जब ठिठौली करती हैं तो उनकी पायल से सुमधुर ध्वनि सहसा निकल पड़ती है।[3]

एक ओर सामन्त लोग ठाट-बाट के साथ संगीत व वाद्य यंत्रों का आनन्द ले रहे हैं।[4] दूसरी ओर पत्नियों के मुख से अपने पति का नाम कहलाने के लिए हास-विलास के साथ नव-विवाहिताओं को बाध्य किया जा रहा है।[5] वे अपनी सखियों के चाबुक सहने को तैयार हैं, किन्तु लज्जा के मारे नाम नहीं लेतीं।[6] जहाँ संयोगिनी स्त्रियाँ भाँति-भाँति के पुष्प चुनकर अपने पतियों के लिए माला पिरोने में व्यस्त हो जाती हैं,[7] वहाँ वियोगिनियाँ खड़ी होकर उत्सुकता के साथ अपने पति की बाट निहारती हैं।[8] वे मन ही मन उनसे विनती करती हैं–तुम कहीं इस अवसर पर भी

---

(1) जुड़ै त्रियां घणा झूहरा, घाट घाट पर फेर।
वां घाटां पर वे त्रियां, नरखे उदिया नेर ॥
(सावणी तीज री झमाल़)

(2) मंडे हींडा मखतूल, मचोल़ै मौह के।
रील़ै हार रलक्क, छंद छछोह कै ॥ (सांवणी तीज री झमाल़)

(3) तीज गल़ै तिण वार ठठौल़ी ठोल़की।
झुक झुक गोडी लार, झमंक रमझोल़ की ॥
(महाराणा भीमसिंघ री झमाल़)

(4) अलवेला असवार, झलूसी साझियां।
सुणै अलाप संगीत, वाजत्रां वाजियां ॥ (सांवणी तीज री झमाल़)

(5) निज निज मुख सौ नांम, कहावण कंत रौ।
वढ़ि हम हास विलास, मदन महमंत रौ ॥ (अलवर री झमाल़)

(6) नाम परत लेहस्या नहीं सहस्यां साटकियांह।
सहस्यां साटकियांह, लपेटी लाज हूं ॥ (वही)

(7) भांत भांत रा फूल, उमंदा जोय नै।
पहरास्यां गल़ बीच, उमंदा पोय नै ॥ (बारह मास री झमाल़)

(8) लगन लगावै लाख, न आया राज रै।
ऊभी जोवूं वाट, बधाई आज रै। (सांवणी तीज री झमाल़)

न आकर तीज के इस पर्व को व्यर्थ मत कर देना।[1] ऐसा न हो कि भूल में सौतिन के वहाँ जा पहुँचो,[2] भला यह तीज तो मेरे साथ ही मनाना।

अतः स्त्रियों के अत्यन्त महत्त्वपूर्ण त्यौहार के रूप में इसे चित्रित किया गया है। नारी का सौतिया डाह भी ऐसे अवसर पर स्वाभाविक रूप से व्यक्त हुआ है, जो उस समय की बहुविवाह प्रथा की ओर संकेत करता है।

(३) दशहरा :

दीपमालिका के पहले विजयादशमी का पर्व आता है। यहाँ की रियासतों में यह पर्व बड़े उत्साह के साथ मनाया जाता था। दशहरे के दिन भगवान राम ने रावण का वध कर विजय प्राप्त की थी। उसी घटना की स्मृति में यह पर्व राजघरानों की ओर से मनाया जाता था, जिसमें जनता पूर्ण उत्साह से भाग लेती थी।

दुर्गाष्टमी के पश्चात् राजा अपना दरबार लगाते थे, जहाँ उनके उमराव सम्मान प्रकट करने के लिए 'नजर न्यौछावर, करते थे।[3] बादलों की घटा के समान घोड़ों के झुण्ड[4] तथा हाथियों पर फहराते हुए निशानों[5] सहित सजे हुए योद्धागण भैंसे की बलि चढ़ाते थे।[6] अनेक प्रकार की बन्दूकें दाग कर 'रावण-वध' की रस्म पूरी की जाती थी।[7] इस प्रकार विजयोत्सव पूरा कर हर्षोल्लास के साथ सभी लोग वापिस लौटते थे।[8]

असुरों पर देवताओं की विजय का यह उत्सव यहाँ की हिन्दू जनता के धार्मिक संस्कारों को सुदृढ़ बनाने तथा उस काल की मुगल सत्ता से संघर्ष लेने के लिए आत्मबल प्रदान करता था।

---

(1) राजंद म्हारी तीज, अहल मत राखज्यौ। (सांवणी तीजरी झमाल)

(2) सौत घरे मत जाज्यो, भूले भावणी।
सैणां म्हांरी तीज, मनाज्यौ सांवणी॥ (वही)

(3) निस अस्टमी नरेस सभा फिर साजवै। अड़ाभीड़ उमराव, विचै न्रप भ्राजवै।
+ + +
करि न्यौछावरि नजर, होय भड़ हाजरी। (अलवर री झमाल)

(4) घोड़ां घण घमसांण, जांण घणहर घटा। (वही)

(5) फील फरक्कि निसांण मंगल मघवांण रा। (वही)

(6) भैंसो महा मयान काटि वटका करै। (वही)

(7) जगी लंका ज्वाल जेहि, लगी दगण लुकमांन। (वही)

(8) विजै वाग करि विजै, पधारै छत्रपती। (वही)

(४) होली :

होली का पर्व यहां के किसी भी पर्व से कम महत्त्वपूर्ण नहीं माना गया है। गीतकारों ने जनता का सर्वाधिक उल्लास इस पर्व को लेकर व्यक्त किया है। यथा — वसन्त ऋतु में तरुओं पर फूल, तड़ागों में कमल और बगीचों में बेलें फूलती हैं, उस समय कोकिल, कीर, भ्रमर तथा शुक–सारिकाओं के मन भी प्रफुल्लित हो उठते हैं।[1] जब केवड़ा, कुन्द, केतकी आदि की सौरभ को अपने पर ढोकर थकित पवन मंदगति से बहता है,[2] तब प्रकृति की रम्य छटा में प्रजा-जन इत्र से सुरभित रंग-बिरंगे वस्त्र पहन कर उल्लास के साथ फाग खेलते हैं।[3] सामन्त लोग रंग की पिचकारियाँ भर कर हर्षित होते हुए एक-दूसरे पर छोड़ते हैं।[4] बड़े उल्लास के साथ वहाँ ढेरों गुलाल उड़ाई जा रही है।[5]

गायिकाओं की टोली भी होली खेलने के लिए आ पहुँचती है। परन्तु लवंग-लता सी नाजुक नारियों पर ज्योंही पिचकारी की बार पड़ती है, वे बड़ी अदा के साथ लड़खड़ाने लग जाती हैं।[6] फिर सरस रागिनी में संगीत प्रारंभ होता है। मृदंग और वीणा भी उनके कोमल स्वरों का साथ देते हैं।[7] युवक गण सिर पर तुर्रे बाँधे तथा हाथों में रंगे हुए दण्डक लिए 'डांडियारास' खेल रहे हैं।[8] इस बीच में नृप को फाग खेलते हुए देखने की अभिलाषा से पतिव्रता नारियां मुख पर घूँघट डाले गवाक्षों

---

(1) बेलां फूलै बाग, फूल भर भार का। फूलै कोकिल कीर, भ्रमर सुक सारिका ॥
(गिरिजा उछब झमाल)

(2) केवड़ा कुसुम कुंद तणा केतकी, स्रम सीकर निरझर स्रवति ।
ग्रहियौ कन्धै गन्ध भार गुरु, गन्धवाह तिणि मन्दिगति ॥
(वेलि क्रिसन रुकमणी री)

(3) महावर अनै मजीठ रा, केसर रंग एकैक। मिलै अतर खसबोय, ऊझलै हौज अनेक
ऊझलै हौज अनेक क गंज गुलाल रा। (अलवर री झमाल)

(4) पिचकारी रंग री प्रथम, निजकर धार नरेस।
नखवै सुभटाँ ऊपरै, बरखै रंग विसेस ॥ (वही)

(5) गोट सूं उड़ै गुलाल, तठै अणतोलिया। (वही)

(6) टोली हूर तवायफां, होली खेलण हार।
लवंग लता ज्यूं लड़खड़ै, पड़ै धार पिचकार ॥ (वही)

(7) गहकै सारंग गांन, तांन सहतार मैं।
मधुर सुर मिरदंग, क वीणा वाजवै। (वही)

(8) सिर बादल तुरराह, टंकण केई सेलियां।
डींडोहड़ रंगियाह, हथां बिच झेलियां ॥ (बारह महीनां री झमाल)

से बाहर झांकती हैं, उनके अप्रतिम सौन्दर्य को देखकर मुनियों के मन भी वश में नहीं रहते, भला साधारण मनुष्यों की तो बिसात ही क्या ?[1]

इस प्रकार रसभरी प्रकृति के प्रांगण में राग-रंग, नृत्य और हास-विलास के साथ होली के पर्व का चित्रण गीतकारों ने किया है, जो उस समय के उल्लास और सामन्त वर्ग के मदोन्माद की झलक हमें देता है।

(५) विवाहोत्सव :

राजस्थान की सांस्कृतिक परम्परा में विवाहोत्सव का अपना महत्त्व है। प्राचीन काल से चले आने वाले स्वयंवर का वर्णन मध्यकालीन गीतों में नहीं मिलता। क्योंकि उस काल के पहले ही यह परम्परा समाप्त हो गई थी। अन्य प्रकार के विवाह भी यहां की परम्परा के अनुकूल नहीं थे। अतः लड़के और लड़की के माता-पिता की ओर से ही विवाह रचाया जाता था। बड़े-बड़े राजा महाराजाओं तथा सामन्तों का विवाह धूमधाम के साथ होता था। प्रायः वह एक बहुत बड़े उत्सव का रूप ले लेता था। इस प्रकार के विवाहोत्सवों के कुछ गीत हमें मिलते हैं, जिनमें उस काल की वेष-भूषा तथा रीति-रिवाज का सुन्दर चित्रण भी हुआ है। यथा—

विवाह के अवसर पर मंगल-गीत गाए जा रहे हैं तथा तरह-तरह के वाद्य बज रहे हैं। सभी के हृदय में विशेष प्रकार का आनन्द और उत्साह उमड़ता प्रतीत होता है।[2] अनेक घोड़े, हाथियों और बरातियों के झुण्डों से घिरा हुआ तथा सिर पर मेघवर्णीय मेघाडंबर से सुशोभित दूल्हा, दुलहिन के घर पहुँचता है।[3] दूल्हा सिरपेच, मोड़, तुर्रे, जरी के जामे आदि से अलंकृत इन्द्र के समान दिखाई दे रहा है।[4] मोतियों का मेघ बरसाकर सुंदरियां ऐसे दूल्हे का स्वागत करती हैं।[5] दूल्हे के शरीर व वस्त्रों में से केसर, चन्दन अगरु आदि की सुगन्ध चारों ओर महकती

---

(1) पतव्रत पट घूंघट पटकि, गोखां काढ़ै गात।
देखि जिकां मुनि मन डिगै, मानुस कितीक वात।।

(अलवर री झमाल)

(2) धवल गाविजै मंगल, वाजां गड़ै दीध कनि, मनि आणंद रलि कोड़ि प्रमाण।

(3) मेघ मेघाडंबर किए महिरांण, हैमरे हाथिये साथिये हूंकलां।
घणा भड़ झूमरां घूमरां घेर। (गीत सोहलो)

(4) लपेटे पनां सिर पेच आडो लगो, थिरा ठाढ़ो दियण कतव वांगो।
घेर जाडो फव जरी जामे घणो, खतम लाडो वणै वीर खांगो।।

गीत प्रतापसिंघ कछवाहा रो)

(5) मोतियां मेघ वाधाविय कांमणी। (गीत सोहलो)

है।[1] गढ़ की बड़ी-बड़ी तोपें छूटती हुई चारों ओर विवाहोत्सव की सूचना गंभीर गर्जना के साथ देती है।[2] महामाया तथा कुलदेवी की अभ्यर्थना कर दूल्हे और दुलहिन का हथलेवा जोड़ा जाता है।[3] पश्चात् वे चंवरी के चारों ओर भांवरे लेते हैं।[4] चंवरी से उतरते समय कन्या-पक्ष की ओर से गो-धन आदि का दान दिया जाता है।[5] वरातियों के लिए तरह-तरह के भोजन, मिठाइयां तथा मदिरा आदि का पूरा प्रबन्ध होता है।[6]

सुहागरात विताने के बाद दूल्हा महल से उतरता है तो याचकों आदि को भरपूर द्रव्य दान करता हुआ अपने स्थान पर पहुंचता है।[7] लड़की के घर से दहेज में अनेक दास-दासियां, घोड़े, रथ, ऊंट, आभूषण और रुपये देकर वरात को विदा किया जाता है।[8]

इस प्रकार के उल्लेखों से यह प्रमाणित होता है कि उस काल में विवाह के अवसर पर खूब धन खर्च किया जाता था। दान-पुण्य भी खूब होता था तथा दास-दासियों को दहेज में देने की प्रथा प्रचलित थी।

---

(1) अगर केसर चंदण गात ओपे,
इंद जिम विंद उणिहार छेले इला। (गीत सोहलो)

(2) कोट री कराळी तोपां चौखलं व्याव नैं कहंती,
पुरंतां वधायां देती गावती गंभीर। (गीत खेजड़ला ठाकर री)

(3) माया नागणेचां महा मोह री वंधाणी सांमै,
हेत थी संधाया हतलेवा वाळा हाथ। (वही)

(4) फिरेवा लागिया चौक चंवरी कंवरी फेरा। (वही)

(5) करेवा लागिया दान गोधनां अपार कूंपा। (वही)

(6) भोजनां मिठायां मेवां घूपटां हंगामा होवै,
सुरा आहू जांम आसा पीवणा सुरंगा सोहैं। (वही)

(7) पदमण महल पौढ़तां पहली, ऐरावत देते इक आग।
इळ-पत रासै चित आलोझे, नग नग पेड़ी दीना नाग॥
(गीत म० रायसिंघ वीकानेर रौ)

(8) घोड़ां रथां जाखोड़ां रोकड़ां दासी-दास घरां,
आभूषणां सोना चांदी आनन्दी उघोत।
मोतियां जड़ाव गहणां मोहणां मना नै माहै,
दायजा सोहणां घणां कीमती देसीत॥
(गीत खेजड़ला ठाकर रौ)

(६) सालगिरह :

राजाओं और बड़े सामन्तों के जन्म-दिवस पर सालगिरह मनाने की प्रथा का वर्णन गीतों में मिलता है। राजा की सालगिरह पर प्रजा में मंगल बधाइयां बंटती थीं, नौबतों की मंगल ध्वनि होती थी, सारा वातावरण रसमय हो जाता था।[1] ऐसे शुभ अवसर पर प्रजा ही क्या, मानो पृथ्वी स्वयं हर्षित हो उठती थी।[2] उस समय उसकी सभा की शोभा इन्द्र की सभा के समान जान पड़ती थी।[3] उसके दर्शन कर प्रजाजन उसे दीर्घकाल तक राज्य करने का आशीर्वाद देते थे।[4]

इस प्रकार के उत्सव राजा तथा प्रजा के आपसी सम्बन्धों पर प्रकाश डालते हैं तथा तत्कालीन संस्कृति में जन्म-दिवस का कितना महत्त्व था, इसका अनुमान भी लगता है।

(७) मरण-पर्व :

प्राकृतिक एवं सामाजिक पर्वों के पीछे मानव के विकसित होते हुए संस्कारों की परम्परा हमें दृष्टिगोचर होती है, उनमें समाज के आनन्द, उल्लास, सौन्दर्य-बोध आदि का प्रतिबिम्ब रहता है। भारतीय संस्कृति में ऐसे पर्वों की कमी नहीं है, किन्तु शताब्दियों से जीवन का उत्सर्ग कर अपने स्वाभिमान, स्वतंत्रता व भूमि की रक्षा करने वाले राजस्थानी वीरों की वंश-परम्परा ने अपने कर्तव्य और कुल-गौरव के लिए प्राणोत्सर्ग करने की भावना को विशेष प्रकार के अनुराग से रंजित कर 'मरण-पर्व' का रूप दिया है। यह अपने आप में बहुत ही भव्य, मौलिक एवं अप्रतिम है। इस अवसर के हर्षोल्लास की अभिव्यक्ति एक दोहे में इस प्रकार की गई है—

आज घरे सासू कहै, हरख अचाणक काय।
बहू बल़ेवा हूलसै, पूत मरेवा जाय।।[5]

पर्व की जो उल्लासमयी कल्पना मरणोत्सर्ग के साथ जोड़ी गई है, उसके अनुरूप ही कवियों ने योद्धाओं के जीवनोत्सर्ग का वर्णन किया है यथा —

---

(1) बरसगांठ औछाह मंगल़ बधाई,
बजै जोधाण गढ़ नौबतां बधावा,
वांण मंगल़ धमल़ सुधा बरसै। (गीत महाराजा मानसिंघ जोधपुर रौ)

(2) हिंदवाथान री धरा हरखै। (वही)

(3) छमा सुरपत छमा मोद छाजै। (वही)

(4) करंतां दरस अवचल़ तपौ जग कहै। (वही)

(5) वीर सतसई : सूर्यमल्ल मिश्रण।

जो व्यक्ति युद्ध स्थल में जूझकर प्राण देता है, उसका मरण अवश्य ही मांगलिक है।[1] इसीलिए वह इत्र, चंदन आदि सुगंधित पदार्थों का लेप कर[2] पहले तो सेना रूपी विष-कामिनी का वरण करता है,[3] फिर युद्ध रूपी पलग पर उसका उपभोग भी करता है।[4] यहाँ तक कि इस महोत्सव के अवसर पर उसकी पत्नी भी वार-वार ऐसे पर्व मनाकर अपने पति को खड्ग-रस-पान कराने की इच्छा व्यक्त करती है।[5] वीरगति प्राप्त करने के पहले ही अप्सराएं उसके लिए पुष्पों की मालाएं गूंथने लग जाती हैं।[6] वीरगति को प्राप्त योद्धा अपने वीर साथियों सहित अप्सराओं द्वारा वरे जाकर स्वर्ग लोक में पहुंच, स्वर्गिक आनन्द का उपभोग करते हैं।[7] उनके इस मरण पर घर में शोक किस वात का,[8] शोक प्रकट करे भी कौन—उनके पति यदि इस प्रकार मरण-पर्व का आनन्द लूट सकते हैं तो वीर पत्नियाँ भी उस आनन्द से वंचित कैसे रह सकती हैं, वे भी अपने पति से स्वर्ग में जा मिलने के लिए सोलह शृंगार सजाकर[9] हंसते-हंसते चिता में प्रवेश कर जाती हैं।[10] उनके इस मरण-पर्व पर कुल को गर्व होता है और विश्व में उनकी ख्याति सदैव वनी रहती है।[11]

इस वर्णन से स्पष्ट है कि जीवन के समस्त उत्सवों और पर्वों में मरण-पर्व का सर्वाधिक महत्त्व है। वह जीवन-आदर्श तथा इह-लोक व परलोक के प्रति उस समाज की धारणाओं का एक अद्भुत प्रतीक है। मरण-पर्व राजस्थानी संस्कृति की

---

(1) हुवै मरण तिम मंगल होई। (गीत पृथ्वीराज जैतावत री)
(2) मेछ भीने अंतर समर विन मूछ रै। (गीत महता सांवलदास री)
(3) ऊठ रयण वर परणण आवी। (वेलि राठौड़ रतनसिंघ री)
(4) रंग पिलंग पौढ़ियौ रतनौ। (वही)
(5) रिम चतुरंगणि कमंघ खडगरस,
प्रवि प्रवि परणौं मूझ प्री। (गीत रायसिंघ री सतियां री)
(6) हूरां रंभा चौसरां गूंथवा लागी हार। (गीत ठाकर महेसदास आसोप रौ)
(7) भूलर झलहलतै भूंझारै,
कूंत हयौ पौहतौ वैकूंठ। (वेलि राठौड़ रतनसिंघ री)
(8) पीयल तणौ म करि दुख पछि पछि,
सार मरण घण घणौ सुख। (गीत राठौड़ पृथ्वीराज जैतावत रौ)
(9) सोलह सणगार मन भावता सजाऊं। (गीत भीमसिंघ री सतियां री)
(10) वलण धौमग लपट वीच वैठी। (वही)
(11) कुलां चाढ़ि पांणी करमावती,
इला नांवि कीधौ अखियात। (गीत सती करमावती री)

एक अद्वितीय वस्तु है, शायद ही किसी देश में मरण को पर्व के रूप में ग्रहण किया गया हो ।

(ङ) मनोरंजन के साधन

गीतों में प्रायः सामन्त वर्ग के मनोरंजन के चित्र ही हमें उपलब्ध होते हैं । शिकार, हाथियों की लड़ाइयाँ, मदिरा व अफीम का सेवन तथा संगीत, नृत्य आदि का उल्लेख स्थान-स्थान पर हुआ है । आखेट तथा हाथियों की लड़ाई पर तो स्वतंत्र रूप से भी गीत-रचना हुई है । संगीत, नृत्य, मद्यपान आदि का उल्लेख प्रायः उत्सव व विवाह आदि के वर्णनों में मिलता है ।

(१) आखेट :

सामन्त लोग प्रायः सिंह और वाराह की आखेट किया करते थे । मृगया का भी प्रचलन रहा है परन्तु उसका उल्लेख गीतों में नहीं मिलता । इन वन्य पशुओं की शिकार से जहां एक ओर प्रजा की भलाई होती थी, वहां दूसरी ओर शिकार करने वालों का मनोरंजन भी हो जाता था । यहां के शासकों में शिकार खेलने की यह परम्परा अंग्रेजों के शासनकाल तक भी विद्यमान थी ।

यहां के अधिकांश राजा इस प्रकार की शिकारों के आयोजन अनुकूल मौसम व उपयुक्त स्थानों पर किया करते थे, जिनमें प्रजा का भी बहुत सहयोग लिया जाता था । तासे, ढोल आदि वादित्र बजाकर तथा चारों ओर से बहुत से लोग हल्ला करके शिकार को जंगल में से एक निश्चित स्थान की ओर निकलने के लिए बाध्य करते थे ।[1] प्रजा द्वारा किया जाने वाला यह प्रयत्न 'हाका'[2] कहलाता था ।

सिंह तथा सूअर की शिकार का वर्णन करते समय कवियों ने इनकी विभिन्न चेष्टाओं का भी सुन्दर वर्णन किया है,[3] जिनमें वीर भावनाओं को भी

---

(1) तासा बाजतां हंगामा ज्यूं खेड़ियो लोग चौतरफौ,
ऊचेड़ियो ज्वाळ चवलां क्रोधंगी आदूल ।
जांण पूंछ तेड़ियो आछवे वेध लागो जिसो,
सेवे क्रोध लागौ इसो छेड़ियो सादूल ।। (गीत सिवसिंघ चौहाण रौ)

(2) उठी सुणि हाको उठे सिंहणी वचां समेत । (अलवर री झमाळ)

(3) घूणि छटा रिसधार तड़ित जिम तूटियो,
सजि घण गरज सबद्द क नट्ट निघात रौ ।
तूटो जांण नखत उलकां-पात रौ ।।
झड़ नयण आतस झळां, वर्ण रूप विकराळ ।
केहरी छायो क्रोध रौ किनां रुठायौ काळ ।।
किनां रुठायौ काळ क आयो ऊपरां ।
अडै उसषि असमांन, भुजाडंड भूप रा ।। (वही)

अच्छी अभिव्यक्ति मिली है।[1] सिंह और सिंहनी,[2] व शूकर तथा शूकरी के दर्पोक्ति भरे संवाद भी करवाए गए हैं।[3] सिंह की शिकार प्रायः हाथियों पर चढ़कर तथा शूकर की 'मचान' पर बैठकर बन्दूक से की जाती थी। सिंह को शिकार के लिए निश्चित स्थान पर बुलाने के उद्देश्य से भैंसे आदि बांध दिये जाते थे।[4] शिकार में नवहत्थे शेर को मारना गौरवपूर्ण माना जाता था।[5] शिकार के पश्चात् राजा शिकारियों, हाका देने वालों और अन्य सहयोगियों को पुरस्कार आदि देकर प्रसन्न किया करते थे।[6]

(२) हाथियों की लड़ाई :

शिकार की तरह हाथियों की लड़ाई भी बड़ी रोचक हुआ करती थी। राजा एवं प्रजाजन सुरक्षित स्थान पर बैठकर इस लड़ाई को देखते थे। हाथियों की लड़ाई का एक चित्र देखिए—

---

(1) मरण तणो भय मति भौम तजि भागवै।
वाघ जनम वेकाज, लाज कुळ लाजवै।। (अलवर री झमाल)

(2) सीह हूत प्रमणै इम सिंहणी, भूम चपेटै सांझ प्रभात।
ऊठै रजक जमै आखेटां, रहै अजक तागी दिन रात।।
(गीत रामसिंघ बूंदी रौ)

(3) निरखि इसा कंवळा नरिंद गिरंद लियां गिरदाय।
भूंडण कह भूंडा सुगन आज वरतिया आय।।
आज वरतिया आय नगारो नीघसै।
कलहलिया कैकांण हरखि जंबुक हंसै।।
घणं भयानक घाट, दीह दुरसावियौ।
घर रोस क वार अणी घणी सज आवियौ।।
चहै उवार्‌यां चील्हरा, जै तूं बचावण जीव।
मालो छोड़ महीप रौ, पुलि हवि चालो पीव।।
भूंडण नै भूंडो भणै, काचा वयण म काढ़।
वेद कहै वाराह जै, दुनिया ढ़विया दांढ़।।

(4) वन खंड भैंसा वांधिकर सौयो जल्दी सेर। (अलवर री झमाल)

(5) साझतां वंदूक चार पड़ियौ नौहथो सेर। (गीत सिवसिंघ हाडा रौ)

(6) वकसि इनामां वेस, करांल सिकारियां।
किय टहला दिस कूच, क साज सावारियां।। (अलवर री झमाल)

हाथियों को शराब पिलाकर[1] जब लोह शृंखलाओं से खोला जाता है तो वे अत्यन्त क्रुद्ध होकर धूल उछालते हुए आपस में भिड़ पड़ते हैं।[2] अनेक प्रकार की चेष्टाएँ करते हुए अत्यन्त भयंकरता के साथ एक-दूसरे पर झपटते समय ऐसे मालूम होते हैं, मानो भगवान दत्तात्रेय की समाधि ही टूट पड़ी हो, अथवा आकाश से मेघ-धारा छूटी हो या आकाश मार्ग से नक्षत्र टूटे हों।[3] वे तलवार की सी तीक्ष्ण धारा जैसे पैने दांतों से आपस में प्रहार करते हैं। क्रोधातिरेक के कारण उनके नेत्रों से आग बरसती है।[4] अन्त में चर्खीदार, डाकदार, मालादार और फौजदार उन्हें अनेक प्रकार के प्रयत्नों द्वारा शान्त करके अलग करते हैं।[5]

(३) **पोलो :**

अंग्रेजों के समय में पोलो के खेल का प्रचलन यहाँ की रियासतों में हो गया था। महाराजा जयसिंह अलवर, महाराजा हरीसिंह कश्मीर, महाराजा प्रतापसिंह ईडर और महाराजा गंगासिंह बीकानेर की गणना विश्व के माने हुए खिलाड़ियों में होती थी। सवाई मानसिंह जयपुर तथा रावराजा हणवंतसिंह जोधपुर अभी तक

---

(1) पतंगां पूत सा जूटा प्याला हाला पाय ।

(गीत प्रतापसिंघ रै हाथियां रौ)

(2) खुलातो लंगारां पाव डुलातो झाटकां खंभ,
चलातो भुमुंडा झाल् सलातो–चडील
छातो सीस रजी भौम उड़ाती गैणाग छवै,
फवै रीस रातो आग जौम मातो फील ।

(गीत राणा भीमसिंघ रै हाथियां रौ)

(3) दत्ता ताल़ी सा खूटिया अन्नधारा सा छूंटिया डांणां,
मत्ता रोस तारा सा तूटिया गेणभाग ।
आहुड़ता चौड़े पव्वे काल़ा नथी आहुटिया,
पत्ता छत्रधारी वाल़ा काल़ा जूटिया पिनाग ।

(गीत प्रतापसिंघ रै हाथियां रौ)

(4) दूठतां दुधारा दाव रद्दां व्है करद्दां दोहूं,
ऊठतां लोथरणां चहूं भारा भीम आग । (वही)

(5) चरखी हजारां हाक माला डाकदारां चलै,
खहंता अचल्ले मारां बिछूटा खतंग ।
वापूकारा बोल फौजदारां नीठ बाधा,
महाजंगां जेतवारां खंभारां मतंग ॥ (वही)

अच्छे खिलाड़ियों में माने जाते थे। पोलो का यह नया खेल भी सामन्त वर्ग व जनता के लिए मनोरंजन का साधन रहा है।

ठाकुर प्रतापसिंह संखवास के पोलो खेलने का वर्णन कवि ने एक गीत में किया है, जिसमें घोड़े को तीव्रगति से दौड़ाना,[1] मोलट के प्रहार से गेंद को आगे बढ़ाना और अंग्रेजों को हराना[2] आदि वर्णित हैं। खेल के इस कौशल द्वारा ऐसे खिलाड़ियों के नाम कलकत्ता, दिल्ली तथा विदेशों तक में लोग जानने लग जाते थे।[3]

(४) संगीत-नृत्य, मद्यपान, अफीम सेवन आदि :

विभिन्न उत्सवों, विवाह, सालगिरह आदि अवसरों पर संगीत व नृत्य का आयोजन किया जाता था।[4] ये दोनों कलाएं परस्पर अन्योन्याश्रित हैं। अतः इनका वर्णन प्रायः एक साथ मिलता है। गीतों में इन कलाओं के जो भी उल्लेख मिलते हैं, उससे यह प्रतीत होता है कि उत्सवों व पर्वों के अवसरों पर नर्तकिएं उपस्थित होकर लोगों का मनोविनोद किया करती थीं।[5] तीज, गणगौर आदि उत्सवों पर स्त्री समाज सुन्दर लोकगीत गाकर मनोरंजन करता था।

मद्यपान की प्रथा का राजस्थान में अत्यधिक प्रचलन रहा है। पुत्रोत्सव, विवाहोत्सव, दावतें, तथा अन्य उत्सवों का आनन्द पूर्ण मस्ती के साथ लेने के लिए मद्यपान किया जाता था। युद्ध में तथा शिकार जाते समय भी इसका प्रयोग सामन्त लोग करते थे। प्रसंगानुसार इस प्रकार के वर्णन पहले आ चुके हैं।[6] अफीम सेवन की प्रथा भी राजस्थान में खूब रही है। युद्ध में जाते समय योद्धा लोग उत्साह एवं शक्ति के लिए उसका उपयोग किया करते थे। शान्ति के समय

---

(1) पोलो खेलवा उड़ावै घोड़ा चड़ो रा निघात पोड़ा।
(गीत संखवास ठाकर परतापसिंघ रौ)

(2) वाजै घौक मोलटां दड़ी रा वार-वार। (वही)

(3) जोव कल्लकत्ता रा सतारा दिल्ली लगा जांणै। (वही)

(4) द्रष्टव्य अलवर री झमाल (दशहरा उत्सव का वर्णन)

(5) वही– (होली का वर्णन)

(6) द्रष्टव्य-अलवर री झमाल।

सामाजिक रीतिनीति के निर्वाह, मनोरंजन और कामोत्तेजना के लिए उसका सेवन किया जाता था।[1]

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि गीत-साहित्य में तत्कालीन समाज की सामाजिक मान्यताओं, धार्मिक आस्थाओं, नारी की भावनाओं और त्यौहारों आदि को कवियों ने अनेक प्रसंगों के बहाने व्यक्त किया है। गीत समाज की हलचलों, मान्यताओं और आदर्शों से किस प्रकार स्पन्दित होते रहे हैं, इसका प्रमाण हमें इस प्रकार के चित्रों से सहज ही मिल जाता है।

---

(1) रंजे हंगामां होकवा हुवै रंग राग रा।
विकट सिंधू वागां आग बजराग रा॥
अजब चंदाबदन मंत्र अनुराग रा।
कठा लग करां बाखाण किसनागरा॥ (गीत अमल री सोभा रो)

सप्तम अध्याय

●

गीत-रचना करने वाली प्रमुख जातियां और महत्त्वपूर्ण कवि

गीत-रचना करने वाली प्रमुख जातियाँ और महत्त्वपूर्ण कवि | ७

(क) गीत-रचना करने वाली प्रमुख जातियाँ

राजस्थान की संस्कृति में कवियों और विद्वानों का विशेष महत्त्व रहा है। यहां के शासकों ने जहां धरती और धर्म की रक्षा के लिए बहुत बड़ा त्याग किया है वहां साहित्य के सृजन और उसकी रक्षा को भी कम महत्त्व नहीं दिया है।

जहां तक डिंगल साहित्य का प्रश्न है उसके सृजन में कुछ जातियों का विशेष योगदान रहा है। यहां के राजवंशों के साथ उनके सम्वन्ध, सामाजिक स्तर, आचार-व्यवहार, जीविका के साधन तथा धार्मिक मान्यताओं आदि की जानकारी के अभाव में उनके कृतित्व का सही मूल्यांकन करना बड़ा कठिन है। इसलिए डिंगल गीत-काव्य की रचना और उसके प्रसार में योग देने वाली कुछ विशिष्ट जातियों पर यहां प्रकाश डालना वांछनीय है।

(१) चारण

डिंगल साहित्य की रचना में चारण जाति का बहुत बड़ा योग है। गीतों की रचना करने वाले अधिकांश कवि भी चारण ही हुए हैं। इन्होंने गीत और दोहे की कला के माध्यम से न केवल काव्य-नायक को ही अमर किया है, वरन् वे स्वयं भी अमर हो गए हैं।

चारणों की उत्पत्ति :

चारणों की उत्पत्ति के सम्वन्ध में अनेक वाद-विवाद चारणों द्वारा ही प्रचलित किए हुए हैं और कुछ अन्य विद्वानों ने उन विवादों को ज्यों का त्यों सामान्य हेर फेर के साथ अपनी पुस्तकों में उद्धृत कर दिया है। मुंशी देवी प्रसाद ने मारवाड़ की मर्दुम-शुमारी रिपोर्ट में विभिन्न जातियों का परिचय देते हुए चारणों के परिचय में उनकी उत्पत्ति के सम्वन्ध में कविराजा मुरारिदान के मत को सविस्तार प्रकट किया है। कविराज सूर्यमल्ल मिश्रण ने भी अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'वंश-भास्कर' में चारणों की उत्पत्ति पर प्रकाश डाला है। सूर्यमल्ल के अनुसार चारणों का मूल पुरुष सूत है। आर्यमित्र नामक सूत ने नंदिकेश्वर को चराकर उसके वरदान से अवरी नामक

नाग-कन्या से विवाह कर सूत पद को त्यागा और चारण पद धारण किया। उस नाग-कन्या से १२० पुत्र पैदा हुए, जिनसे इस जाति की शाखाएं बनीं।[1]

कविराजा मुरारिदान के मतानुसार चारण देवयोनि से उत्पन्न हुए हैं। उन्होंने अपने मत की पुष्टि के लिए प्राचीन ग्रंथों के कई उद्धरण भी प्रस्तुत किए हैं। उनकी धारणा है कि हिमालय पर ईश्वर ने पुरुष और स्त्री का एक जोड़ा सृष्टि की उत्पत्ति के लिए छोड़ा। उस आदिपुरुष मनु और शतरूपा की संतान में से जो विद्या का अनुभव करने वाली संतान हुई वे देवता कहलाए। इन देवताओं के अष्ट प्रकार हुए, जिनमें सातवाँ प्रकार चारण था।[2] ये चारण इन्द्र आदि राजाओं की कीर्तिगाथा गाते थे। अतः कीर्ति का संचार करना इनका मुख्य कार्य था, इसीलिए ये चारण कहलाए।[3] वाल्मीकीय रामायण तथा महाभारत आदि में भी चारणों का उल्लेख आया है।

राजस्थान की ओर चारणों के आगमन का कारण बताते हुए उन्होंने यह बताया है कि महाभारत में क्षत्रियों का विध्वंश हो जाने के बाद जब बचे-खुचे क्षत्रिय विदेशियों के हमले सहन नहीं कर सके तो वे वहाँ से दक्षिण समुद्र तथा पश्चिम समुद्र की ओर आ गए। जो चारण उनके संरक्षण में रहे वे तो बच गए और बाकी सब नष्ट हो गए। पश्चिमी समुद्र की ओर बसने वालेमरु-प्रदेश के राजपूतों के साथ रहे, इसलिए मारू कहलाए। दक्षिण समुद्र वाले कच्छ भूभाग में रहने के कारण काछेला नाम से प्रसिद्ध हुए।[4]

हमारे देश में जातियों की उत्पत्ति आदि के सम्बन्ध में प्रायः देवकथात्मक प्रसंगों का आश्रय लिया गया है क्योंकि अधिकांश जाति के लोग अपने कुल की उत्पत्ति देवताओं अथवा उच्च कुलों से बताने का प्रयत्न करते रहे हैं। चारणों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में प्रकट उपरोक्त धारणाएं भी देवकथा के तत्त्व से रहित नहीं हैं।

जहाँ तक राजस्थान की सामाजिक व्यवस्था में चारणों के स्थान का प्रश्न है, उनकी गिनती षट् दर्शन के अन्तर्गत की जाती है और वह उचित भी जान पड़ती है, क्योंकि ब्राह्मणों की पूज्य जाति भी इसी षट् दर्शन के अन्तर्गत है। इस कथन की पुष्टि के लिए यहाँ कुछ प्रमाण प्रस्तुत किए जा रहे हैं। प्रसिद्ध चारण कवि

---

(1) वंश भास्कर राशि ३, मयूख ६७

(2) रिपोर्ट मरदुमशुमारी राज मारवाड़ : मुंशी देवीप्रसाद, भाग, ३, पृ० ३२८

(3) चारयन्ति कीर्तिम् इति चारणाः।

(4) रिपोर्ट मरदुमशुमारी राज मारवाड़ : मुंशी देवीप्रसाद, भाग ३, पृ० ३३३

गणेशपुरी ने वीरविनोद (कर्ण पर्व) में प्रसंगानुसार षट् दर्शन का वर्णन करते हुए चारणों को इनके अन्तर्गत माना है। यथा—

पिछली भुव नांहिन पर्सन की,
दिल मानि मनौ षट दर्शन की।
जति जोगि सन्यासिय जंगम है,
द्विज चारन एषट दरसन हैं॥[1]

कविराजा सूर्यमल्ल मिश्रण ने जहाँ वंशभास्कर की ७ वीं राशि के १३ वें मयूख में 'खट दरसन' शब्द का प्रयोग किया है, उसका अर्थ करते हुए टीकाकार कृष्णसिंह सौदा ने ब्राह्मण व चारण आदि को इन्हीं के अन्तर्गत माना है।[2] कविया मुरारिदान अयाचक तथा महताब चंद्र खारैड़ भी इनसे सहमत हैं।[3] मुंशी देवी-प्रसाद ने भी अपनी मर्दुमशुमारी रिपोर्ट में षट् दर्शन न्यायालय का उल्लेख किया है, जिसमें विशेष कर चारणों के आपसी झगडे निपटाए जाते थे और चारण ही उसका अफसर होता था।[4] इस न्यायालय की स्थापना कविराजा मुरारिदान के ही समय में हुई थी। इससे भी चारणों का षट्-दर्शन के अन्तर्गत होना ही प्रमाणित होता है।

चारणों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में चाहे जो मत हो, इसमें कोई सन्देह नहीं कि राजस्थान में लगभग हजार वर्ष से इस जाति का बड़ा महत्त्व रहा है तथा शासक वर्ग और समाज ने उन्हें अनेक प्रकार से सम्मानित किया है।

धर्म और रीति रिवाज :

चारण शाक्त मतानुयायी हैं। वे देवी की पूजा करते है। तथा जोगमाया के नाम से धूप-ध्यान आदि का भी प्रचार इनमें अधिक है। चारण जाति में अनेक देवियों ने अवतार भी लिया है, जिनमें बरवड़ीजी, आवड़जी, करणीजी, आदि प्रसिद्ध हैं। करणीजी का दर्जा इनमें विशेष माना जाता है।

राजपूतों के अनेक वंश इन देवियों को अपनी कुल देवियाँ भी मानते हैं और उनमें बड़ी आस्था रखते हैं—

आवड़ तूठी भाटियां, करनल राठोड़ांह।
श्री बरवड़ सीसोदियां, मां मेही गौड़ांह॥

चारणों की १२० शाखाएं मानी गई हैं। उनमें से राजस्थान में ५३ खांपें पाई जाती हैं। विवाह आदि के रीति-रिवाज राजपूतों से मिलते-जुलते हैं। इनमें

(1) वीर विनोद : स्वामी गणेशपुरी, पृ० १३८
(2) वंश भास्कर, पृ० २७०४
(3) बांकीदास-ग्रंथावली, तीसरा भाग, पृ० ४
(4) रिपोर्ट मरदुमशुमारी राज मारवाड़, भाग ३, पृ० ३४२

नाता (लड़की का पुनर्विवाह) नहीं होता। बहु-विवाह प्रथा अवश्य प्रचलित रही है। इनका रहन-सहन तथा खान-पान भी राजपूतों से मिलता-जुलता है। पिता की मृत्यु के पश्चात् इनमें जमीन का बंटवारा सभी पुत्रों में समान रूप से होता है, जो चारणिया वंट कहलाता है।

यहां के राजवंशों से सम्बन्ध :

यह प्रारंभ में ही कहा जा चुका है कि इनका सम्बन्ध क्षत्रिय जाति के साथ बहुत पुराना है। इनके आपसी सम्बन्ध बड़े घनिष्ठ रहे हैं। राजपूतों और चारणों की कुछ शाखाओं का परस्पर विशेष सम्बन्ध भी रहा है क्योंकि राजपूतों की कुछ शाखाओं ने इन्हें अपना पोलपात भी बना लिया था। इस विशेषता को प्रकट करने वाला एक दोहा बड़ा प्रसिद्ध है।

सोदा ने सीसोदिया, रोहड़ ने राठोड़ ।
दुरसावत ने देवड़ा, ठावा ठावा ठौड़ ।।

चारण कवि प्रायः राजपूत शासकों व योद्धाओं में अपनी काव्य-चातुरी के द्वारा वीरता और उत्साह का संचार किया करते थे और उनके आश्रयदाता लाख-पसाव, करोड़-पसाव, जागीर तथा कुरब-कायदा देकर उन्हें सम्मानित करते थे।[1] उन्हें दी जाने वाली जागीर सांसण कहलाती थी।[2] चारणों को दी जाने वाली उस जमीन से कोई कर वसूल नही किया जाता था।

खाग तियागां वाहिरा, जांसूं लाग न वाग ।

प्राचीन चारण कवि अपनी सत्यवादिता, धर्मनिष्ठता और अभिव्यक्ति की सचाई के लिए प्रसिद्ध थे। राजपूत राजाओं के साथ उनका घनिष्ठ सम्बन्ध होने से वे उन्हें खरी-खरी सुनाने में भी नहीं चूकते थे। राजाओं पर विपत्ति पड़ने पर ये उनका साथ भी नहीं छोड़ते थे। जालौर के घेरे में महाराजा मानसिंह के साथ १७ कवि भी थे।[3] कवि मेरूदान ने तो उनकी अनेक प्रकार से बड़ी सहायता की थी, जिससे महाराजा ने उसे भाई कहकर सम्बोधित किया था—

भाइयां सरीखौ भैर भाई ।[4]

---

(1) रिपोर्ट मरदुमशुमारी राज मारवाड़, पृ० ३३७
(2) द्रष्टव्य : मारवाड़ रा परगनां री विगत : सं. नारायणसिंह भाटी
(3) ठौड़ पड़े त्रंबक टहठहिया, भड़ थहिया पग रोप भव ।
वाली लाज तजै के वहिया, सतरे जद रहिया सकव ।।
(महाराजा मानसिंह)
(4) चारण कुल प्रकाश : कृष्णसिंह सौदा, पृ० ६५

चारणों और राजपूतों में वैवाहिक सम्बन्ध नहीं होते। चारण लोग राजपूतों की स्त्रियों को सम्मान व श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं।[1]

याचक वृत्ति :

चारण लोग राजपूतों के ही याचक रहे हैं और उन्हें अनेक प्रकार से बहुत-सा द्रव्य मिलता रहा है, परन्तु अन्य किसी जाति से दान अथवा पारितोषिक ग्रहण न किया हो सो बात नहीं है। क्योंकि अकबर, शाहजहां जहांगीर आदि से जाडा मेहडू, सूराचंद टापरिया, लक्खा बारहट, पीरा आसिया, दुरसा आढ़ा, रामां सांदू आदि ने जागीर व सम्मान प्राप्त किया था।[2] जोधपुर के लाडूनाथजी महाराज के हाथ से २५ कवियों को लाखपसाव दिया गया था।[3] आधुनिक काल में भी साधारण राजपूत तक इन्हें भोजन आदि करवाते हैं और अपनी हैसियत के अनुसार 'सीख' भी देते हैं।

जो जातियाँ राजपूतों की विशेष शाखाओं की पोलपात होती थी उन्हें विवाह के अवसर पर दूल्हे के कपड़े तथा उसकी सवारी का घोड़ा आदि भी पोलपात चारण को मिलता था। विवाह में उपस्थित होने वाले अन्य चारणों को भी खूब द्रव्य दिया जाता था, जो त्याग के नाम से प्रसिद्ध था।

विशिष्ट प्रथाएं :

शासक तथा सामन्त लोग चारण कवियों का सत्कार करने के लिए प्रायः उन्हें जागीर और द्रव्य दिया करते थे और चारण उनकी कद्रदानी से प्रसन्न होते थे। परन्तु उन्हें किसी कारणवश यदि नाराज कर दिया जाता था या द्रव्य के द्वारा सन्तुष्ट नहीं किया जाता था तो वे अपनी कविता के माध्यम से उस पात्र की बुराई करने से भी नहीं चूकते थे, जिसे 'भूंडा' या 'हिजो' कहते हैं।

शादी के अवसर पर निमंत्रित न होने पर भी बहुत से चारण शामिल हो जाया करते थे और त्याग से संतुष्ट न होने पर धरना देकर लड़की के पिता को तंग और अपमानित किया करते थे। उनकी यह प्रवृत्ति राजपूत समाज में अच्छी नहीं समझी जाती थी। ऐसे भी उदाहरण मिलते हैं, जहाँ स्वयं चारण-समाज में इस प्रथा को कुछ लोगों ने हेय समझा है[4] क्योंकि कुछ लोग चारणों के इस अशिष्ट-

(1) रजपूत परणी जिकी करणी मात समान।
(2) रिपोर्ट मरदुमशुमारी राज मारवाड़, पृ० ३३८
द्रष्टव्य—मारवाड़ रा परगना री विगत।
(3) बांकीदास री ख्यात: पं० नरोत्तमदास स्वामी, एम० ए०, पृ० १७२
(4) रिपोर्ट मरदुमशुमारी राज मारवाड़ पृ० ३३९—३२७

व्यवहार की कल्पना से भयभीत होकर लड़कियों को जन्मते ही मार भी दिया करते थे। जोधपुर के महाराजा मानसिंह ने नाथों और चारणों को बहुत अधिक सम्मान दिया था। नाथों की तरह ही चारणों ने भी उनके सौजन्य का बड़ा अनुचित लाभ उठाते हुए शासन-व्यवस्था में अराजकता फैला दी थी, जिससे राज्य-कर्मचारी बड़े दुःखी थे।[1] आधुनिक काल में इस प्रकार की याचकता से ऊपर उठने वाले समृद्ध चारण लोग इसीलिए अपने नाम के पहले अयाचक शब्द का प्रयोग करते हैं।

जब कोई राजा किसी चारण पर रुष्ट होकर उसकी जागीर ज़ब्त कर लेता था तब वह अपना विशिष्ट अधिकार जताने के लिए उचित स्थल पर 'धरना' दे दिया करता था और उसकी सहायतार्थ बहुत-से चारण उसमें शामिल हो जाते थे। राजा द्वारा सुनवाई न होने पर वे किसी वृद्ध चारण स्त्री या पुरुष को तेल से कपड़े भिगोकर जला दिया करते थे तथा अन्य लोग अपने शरीर पर कटारी से घाव लगाकर जाजम पर खून छिड़का करते थे। इसे वे 'चांदी' करना या 'त्रागा' करना कहते थे। इस प्रकार के धरनों में महाराजा उदयसिंह द्वारा कुछ चारणों की जागीर ज़ब्त कर लेने पर आउवा नामक स्थान पर दिया गया 'धरना' प्रसिद्ध है।[2]

चारण जाति के कवियों में कुछ कवि बड़े प्रभावशाली भी हुए हैं और उनका दखल राजनैतिक मामलों में भी रहा है। इस प्रकार के कवियों में आशा बारहट, शंकर बारहट, लक्खा बारहट, दुरसा आढ़ा, किसना भादा, करणीदांन मूंदियाड़, बांकीदास, मुरारिदान, श्यामलदास आदि के नाम गिनाए जा सकते हैं।

(२) भाट

भाटों की उत्पत्ति :

भाट शब्द भट्ट से बना है जिसका अर्थ पंडित होता है। भाटों की उत्पत्ति के विषय में चार प्रकार के मत प्रचलित हैं—

(क) भाटों के मूलपुरुष को महादेव ने नंदि को चराने के लिए भस्मी से पैदा किया था, परन्तु वह नंदि के चराने पर ध्यान कम देता था और इधर-उधर भटकता रहता था, इसलिए शिव ने उसे 'भोंरां भाट' कहा और शाप दिया कि तेरी औलाद इसी तरह घूमती फिरेगी।

---

(1) चारण मरसी मुलकरा, प्रोहित पड़सी पार।
निरवंस जासी नाथड़ा, जद होसी निस्तार॥

(मुसाहिब शंभूदत्त जोसी)

(2) रिपोर्ट मरदुमशुमारी राज मारवाड़, पृ० ३३६-३३७
तथा मारवाड़ रा परगना की विगत पृ०

(ख) ये लोग क्षत्रिय पिता और वैश्य माता की संतति हैं।

(ग) इनका वंश क्षत्रिय पुरुष और विधवा ब्राह्मणी से पैदा हुआ है।

(घ) ब्राह्मण की शूद्र पत्नी से पैदा होने वाली सतान भाट कहलाई।[1]

उपरोक्त चारों मतों में से प्रथम मत, चारणों की उत्पत्ति की तरह ही देव-कथात्मक तत्त्व से परिपूरित है। शेष तीन मतों में कौनसा मत सही है, यह कहना बड़ा कठिन है।

भाटों की नौ 'न्यातें' मानी गई है, जो इस प्रकार है–ब्रह्मभट्ट, चंडीसा, बड़वा, जागा, तूरि, सांसणी, बूना, केदारी, मारू या जांगड़ा। ये 'न्यातें' विभिन्न हिन्दू जातियों की भाट कहलाती हैं। राजपूतों की पीढ़ियाँ लिखने वाले भाट मारू या जांगड़ा हैं। भाटों की कुल ४५ खांपें मानी गई हैं। इनमें से पुर्नविवाह की प्रथा भी कुछ खांपों में प्रचलित है।

ब्रह्मभट्ट अपने आपको साधारण भाटों से बहुत ऊंचा मानते हैं तथा अपनी उत्पत्ति ब्रह्मा के यज्ञ से बताते हैं।[2] उनका रहन-सहन तथा आचार-व्यवहार कान्यकुब्ज व सारस्वत ब्राह्मणों से मिलता-जुलता है। चंदवरदाई तथा सूरदास जैसे कवियों को यहाँ के भाट अपना पूर्वज बताते हैं। राजस्थान में रावजी, कविरावजी आदि इनके सम्मान-सूचक शब्द हैं।

यहाँ के राजवंशों से सम्बन्ध :

भाट लोग मुख्यतया पिंगल में ही रचना किया करते थे तथा यहाँ के शासकों द्वारा इन्हें भी सम्मान दिया जाता था। चारणों की तरह ही इन्हें भी पुरस्कार के रूप में लाखपसाव, जागीर, सोना पहिनने का अधिकार तथा दरबार में बैठक आदि दी जाती थी। इस जाति के कवियों ने भी डिंगल में काव्य रचना की है। कुछ कवि अच्छे गीतकार भी हुए हैं। डिंगल के प्रसिद्ध कवियों में बाघा,[3] महेसदास[4] कल्याणदास,[5] मालीराम, किसना,[6] मोहनदास,[7] नान्हूराम, हरिदास, गुलाब, कविराव

---

(1) रिपोर्ट मरदुमशुमारी राज मारवाड़, भाग ३, पृ० ३५६

(2) वही, पृ० ३५६

(3) द्रष्टव्य–राव जाति के डिंगल कवि (वागर), वर्ष १, अंक ३

(4) शोध पत्रिका, वर्ष १३, अंक १, पृ० ६४–७२ (उदयपुर)

(5) वही पृ० ६४

(6) अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर ग्रंथांक १३८, पत्रांक १५०

(7) वही, ग्रंथांक १३७, पत्रांक २५

बख्तावर,[1] कविराव मोहनसिंह[2] और कविराव गुमान आदि हुए हैं। भाट कवि पिंगल भाषा के अधिकारी विद्वान माने गए हैं और चारण डिंगल के। परन्तु जिस प्रकार नरहरिदास, सूर्यमल्ल, कृपाराम, शिवबक्स, मुरारिदान आदि चारण कवियों का पिंगल पर भी पूर्ण अधिकार था, उसी प्रकार कुछ भाट कवियों का भी डिंगल पर पूर्ण अधिकार दृष्टिगोचर होता है। इस कथन की पुष्टि के लिए मुख्यतया बाघजी भाट और महेशदास राव की कृतियाँ देखी जा सकती हैं।

चारणों और भाटों की प्रतिस्पर्धा :

चारणों और भाटों की प्रतिस्पर्धा और वैमनस्य को प्रकट करने वाली यह कहावत 'एक वृत्ति सदा वैर' राजस्थान में बहुत प्रचलित है। ये दोनों ही जातियां मुख्यतया कविता करने वाली थीं, इसलिए राजघरानों में तथा सामन्तवर्ग में अपना प्रभुत्व जमाने के लिए एक-दूसरे पर आक्षेप भी किया करती थी।[3] भाट लोग चारणों को कवित्त रचने की कला से शून्य बताते थे।

> भाटारो खोह ईलियां, चारणां रौ खोह चूल।
> कलस बिगाड़ण कागलो, कवित बिगाड़ण कूल॥

चारण लोग भाटों का स्थान समाज में साधारण बताकर उनका तिरस्कार किया करते थे।

> भाट घाट अरु गाडरी, सब काहू के होय।
> चारण तो है चतर नर, गढ़पतियां में जोय॥

इनकी यह प्रतिस्पर्धा काफी लम्बे समय तक चलती रही, परन्तु यहां के शासकों और राज्यवंशों ने चारणों को अधिक आश्रय दिया जिससे भाटों की अपेक्षा चारणों का यहां विशेष महत्त्व बना रहा। परन्तु, डिंगल काव्य को इस जाति की भी बहुत बड़ी देन है।

(३) मोतीसर

मोतीसर चारणों की याचक जाति है तथा उनका परस्पर बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है। स्वतंत्र काव्य रचना करने के अतिरिक्त ये लोग चारणों की प्रशंसा में काव्य बनाते हैं तथा चारण लोग इन्हें खाना खिलाकर व रुपये आदि देकर इनका

---

(1) राजस्थानी भाषा और साहित्य : डा० मोतीलाल मेनारिया, पृ० २४७

(2) राजस्थान का पिंगल साहित्य : डा० मोतीलाल मेनारिया, पृ० २४१

(3) रिपोर्ट मरदुमशुमारी राज मारवाड़ भाग ३, पृ० ३५८

वड़ा सम्मान करते हैं। इनके सम्मान को प्रकट करने वाली एक पंक्ति चारण समाज में वड़ी प्रचलित है।

मोतीसर म्हांरे सिर ऊपर, हूं वारे चरणां रे हेट।

मोतीसरों की उत्पत्ति :

चारणों और भाटों की उत्पत्ति की तरह ही इनकी उत्पत्ति के वारे में भी कई किंवदंतियां प्रचलित हैं। कुछ लोग सिद्धराज जयसिंह के दरवार में रहने वाले कवि माउलजी वरसड़ा (चारण) की ६ वेटियों से उत्पन्न होने वाली संतान को मोतीसर मानते हैं। कविराजा मुरारिदांन का मत है कि आवड़जी देवी के प्रति अत्यधिक आस्था रखने वाले झाला, खींची, पड़िहार आदि कुछ राजपूत थे, जिनका आवड़जी ने वड़ा उपकार किया था, अतः उन्हें कविता का वरदान देकर चारण जाति की प्रशंसा करने का कार्य दिया। आवड़जी उन्हें मोतियों की लड़ी कहा करती थीं, इसलिए ये मोतीसर कहलाए।[1]

इनका आचार-व्यवहार तथा रीति-रिवाज तथा पहिनाव आदि चारणों से मिलता-जुलता है। इनकी कुल आठ खांपें मानी गई हैं,[2] जिनमें से कुछ लुप्त हो चुकी हैं। ये लोग प्रायः दशहरे के वाद चरणों के गांवों में घूमकर जीविकोपार्जन के साधन जुटाते हैं। इनके सम्मान व खान पान में असावधानी वरतने पर ये चारणों को आड़े हाथों लेने में भी नहीं चूकते।

राजवंशों से सम्वन्ध :

मोतीसर जाति के कुछ कवि वड़े विख्यात हुए हैं। काव्य-चातुरी के कारण उनका सम्पर्क शासक-वर्ग से भी हो जाता था। चतरा,[3] वुडजी,[4] पनांराम[5] आदि इस जाति के विशिष्ट कवियों में से हैं। जिस प्रकार चारणों के कृतित्व से कई वार शासक लोग अभिभूत हो जाया करते थे, उसी प्रकार चारण भी उन मोतीसरों के काव्य-चमत्कार के आगे नतमस्तक हो जाया करते थे। इसीलिए राजपूतों के यहां से विवाह के अवसर पर जो त्याग (दान) चारणों को दिया जाता था उसमें इनका भी हिस्सा हुआ करता था।

प्राचीन गीतों को स्मरण रखने तथा गीत का पाठ करने में मोतीसर वड़े निपुण माने गए हैं, अतः गीत-रचना और उनके प्रचार में इनका महत्वपूर्ण योग रहा है।

---

(1) रिपोर्ट मरदुमशुमारी राज मारवाड़ भाग ३।
(2) वालण खीला विजमला, रामहिया पड़िहार।
मांगलिया ने चांदगा, मांणक रा सरदार॥
(3) डिंगल गीत : रावत सारस्वत, चंडीदांन सांदू, टिप्पणी, पृ० ७–८
(4) राजस्थांनी सवद–कोस, भूमिका, पृ० १८३
(5) राजस्थांनी सवद कोस : निवेदन 'ऊ'

(४) सेवग

सेवगों का भी डिंगल साहित्य को अच्छा योगदान रहा है। प्रसिद्ध छंद ग्रंथ रघुनाथ रूपक का रचयिता मंछाराम सेवग ही था।

ये लोग अपने आपको ब्राह्मण मानते हैं तथा अपना आदि-निवास ओसियां ग्राम बताते हैं। रत्नप्रभ सूरि ने ब्राह्मणों के कुछ लड़कों को वृत्तिकार बनाकर मंदिर की सेवा का काम उन्हें दिया था, तबसे ये सेवग कहलाए।[1] इनकी १६ खांपें मानी गई हैं। जयपुर, जैसलमेर, बीकानेर, जोधपुर के राजमंदिरों में पूजा करने वाले 'अबोटी' कहलाते हैं। ओसवाल (वैश्यों) के विवाह आदि में ये लोग काम-काज भी किया करते हैं। सेवग कवियों की कविता राजपूतों, ओसवालों व जैन यतियों की प्रशंसा में लिखी हुई प्राप्त होती है। इनमें कुछ कवियों के नाम इस प्रकार हैं—

मनोहर,[2] वृन्द,[3] तिलोक,[4] दौलतरांम,[5] बक्सीराम,[6] कधरो[7] सीरु,[8] कुंभ[9] आदि।

इन प्रमुख जातियों के अतिरिक्त राजपूत, ओसवाल, जैनयति, ब्राह्मण, साध, ढाढ़ी आदि अन्य जातियों के कवियों ने भी गीत-साहित्य-रचना में योग दिया है, जिनमें राजपूत जाति के कवि सर्वाधिक हैं, परन्तु इस जाति का इतिहास सर्व-विदित होने से यहां प्रकाश डालना आवश्यक नहीं है। कुछ उल्लेखनीय राजपूत गीतकार इस प्रकार हैं।

करमसी सांखला, राठोड़ पृथ्वीराज, दुर्गादास राठोड़,[10] रावल हरराज, मोहकमसिंह मेड़तिया,[11] महाराजा बहादुरसिंह, मदनसिंह चूंडावत,[12] गोपालसिंह मेड़तिया,[13] गोरधनसिंह खीची,[14] हमीरसिंह चूंडावत,[15] महाराजा मानसिंह राठोड़, राव देवीसिंह[16] राव गांगो,[17] ईसरदास राठोड़,[18] डूंगरसिंह भाटी, खेतसिंह भाटी मुकंदसिंह बीदावत[19] आदि।

(1) रिपोर्ट मरदुमशुमारी राज मारवाड़, भाग ३
(2) अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, ग्रंथांक १३८, पत्रांक १४२
(3) राजस्थानी भाषा और साहित्य : पं० मोतीलाल मेनारिया, प्र० सं०, पृ०१८६
(4) रघुनाथ रूपक गीतां रौ: नागरी प्र० सभा काशी, पृ० ११ (भूमिका)
(5) वही।
(6) वही।
(7) अभयजैन ग्रंथालय, बीकानेर का संग्रह।
(8) वही।
(9) राजस्थानी भाषा और साहित्य : डा० हीरालाल माहेश्वरी, पृ० १६२
(10) डिंगल के कुछ राजपूत कवि (वरदा, वर्ष ५, अंक १): सौभाग्यसिंह, पृ०२८
(11) वही।
(12) वही, पृ० २६
(13) वही।
(14) वही, पृ० ३०
(15) वही, पृ० ३१
(16) वरदा वर्ष ४, अंक ४ पृ० १
(17) राजस्थानी शोध संस्थान, जोधपुर का संग्रह।
(18) वरदा, वर्ष ३, अंक २, पृ० १
(19) द्रष्टव्य-संतान सुयस; सवाईसिंह धमोरा।

(ख) गीत–रचना करने वाले महत्वपूर्ण कवि

गीत डिंगल-काव्य का प्रमुख छंद रहा है, यह प्रारंभ में ही कहा जा चुका है। सैकड़ों ज्ञात तथा अज्ञात कवियों ने गीतों की रचना की है। जिस प्रकार डिंगल के दोहों और उनके रचयिताओं का अनुमान लगाना कठिन है उसी प्रकार गीतों तथा गीतकारों का पता लगाना भी सहज नहीं है। मौखिक परम्परा पर जीवित रहने वाले गीत वहुत बड़ी संख्या में परिलुप्त हो चुके हैं, जो भी हस्तलिखित पोथियों में लिपिवद्ध किए हुए है उनपर नायक का नाम तो फिर भी मिल जाता है परन्तु रचयिता के नाम के दर्शन वहुत कम होते हैं। उपलब्ध नामों में से भी अधिकांश कवि ऐसे हैं जिनका अन्य कोई परिचय अथवा परिचय का स्रोत भी नहीं मिलता। किसी भी रचनाकार के केवल नाम का मिलना उसके परिचय के लिए अपर्याप्त ही नहीं, एक ही नाम के अनेक कवि होने से भ्रम भी पैदा करता है। ऐसी स्थिति में केवल दो–चार गीतों के आधार पर ही कवि के परिचय के सम्वन्ध में धारणा वनाना उचित नहीं जान पड़ता। स्थानाभाव के कारण हम भी यहाँ केवल उन्हीं कवियों को ले रहे हैं जिन्होंने अपनी गीत-रचना के माध्यम से डिंगल गीत-साहित्य को अत्यंत महत्त्वपूर्ण देन दी है।

अध्ययन की सुविधा के लिए प्रमुख गीत-रचयिताओं को तीन श्रेणियों में विभक्त कर रहे हैं—

(अ) प्रवन्धात्मक शैली में गीत-रचना करने वाले कवि
(आ) स्फुट गीत-रचना करने वाले कवि
(इ) छंद-शास्त्रों का निर्माण करने वाले कवि।

(अ) प्रबंधात्मक शैली में गीत-रचना करने वाले कवि :

काल-क्रम से प्रबंधात्मक गीतकारों और उनके कृतित्व का परिचय यहाँ दे रहे हैं।

(१) दूदो विसराल :

यह कवि मारवाड़ के प्रतापी राजा राव मालदेव का समकालीन था, क्योंकि इसने अपने जिस काव्य-नायक पर गीत रचना की है, वह मालदेव का ही सामंत था।

इस कवि की एक मात्र रचना 'राठौड़ रतनसिंघ री वेलि'[1] उपलब्ध होती है। यह वेलियो गीत में रचित ७२ छंदों की रचना है, जिसका रचना काल १६१५ वि० के आसपास माना जा सकता है, क्योंकि वेलि में वर्णित युद्ध तथा

---

(1) राठौड़ रतनसिंघ री वेलि : (परम्परा भाग १४)।

उसमें रतनसिंह का वीरगति प्राप्त करना आदि घटनाएं इतिहासकारों द्वारा सं० १६१४ की मानी गई हैं।[1] इस वेलि का वर्ण्यविषय बादशाह अकबर का अजमेर के सूबेदार हाजी खां पर फौज भेजना, हाजीखां का भयभीत होकर गुजरात की ओर भाग जाना और शाह कुलीखां की अध्यक्षता में फौज का जैतारण पर चढ आना व जैतारण के स्वामी राठौड़ रतनसिंह का बड़ी बहादुरी के साथ फौज से लड़ते हुए वीरगति को प्राप्त होना आदि है। इस वेलि में कथा का सूत्र तो बड़ा ही सूक्ष्म है, परन्तु युद्ध का वर्णन खूब विस्तार के साथ किया गया है।

यह रचना छोटी-सी होते हुए भी अनेक दृष्टियों से बड़ी महत्त्वपूर्ण है। डा० तेस्सितोरी ने भी इसके महत्त्व को स्वीकार किया है।[2] मुख्यतया यह कृति वीर-रसात्मक है किन्तु इसमें स्थान-स्थान पर रौद्र, भयानक तथा वीभत्स रस का भी परिपाक हुआ है। रतनसिंह के उत्साह, शौर्य तथा वीरोचित हाव-भाव का कवि ने बडा ही अनूठा वर्णन किया है। उदाहरणार्थ कुछ चित्र यहां प्रस्तुत किए जाते हैं।

युद्ध में प्रविष्ट होते समय वीरत्व की भावना से दीप्त रतनसिंह की ओजपूर्ण कान्ति निम्नलिखित पंक्तियों में दर्शनीय है—

तप उल्हास तरसि मुखि सातन,
चढ़ि वर सोह चढ़ै धू चीत।
वीरत रयण तणै तिण वेला,
ऊगा मुहि बारह आदीत॥

असाधारण वीरता के साथ लड़ते हुए रतनसिंह ने शत्रुओं की फौज को छिन्न-विच्छिन्न कर दिया—

फेरि अफरि फिरणी सी फेरी,
वींद रतनसी बांध वड़।
घक घूणी फुरली धौ फुरली,
घेर मिली सुरतांण धड़॥

उसने युद्ध में दुश्मनों का संहार कर लाशों का ढेर-सा लगा दिया—

खड़खट थट लाखावट खल खट,
गजगति वर कीधो गजगांह।
रातल सावज ध्रवियां रतने,
पूजवियो पल प्रघल प्रवाह॥

---

(1) नींवाज का इतिहास: रामकर्ण आसोपा, पृ० ४८

(2) A Descriptive catalogue of Bardic and Historical MSS. Part 1, Page 70.

इस रचना का अभिव्यक्ति-पक्ष अत्यंत ही सबल है। भाषा में सर्वत्र प्रवाह और ओज है। कवि शब्द-चयन में बड़ा ही निपुण है। कविता को पढ़ते समय ऐसा लगता है मानो कवि के भाव ने शब्दों को अपने-आप चुन लिया हो। आदि से अन्त तक भाषा की परिनिष्ठता का निर्वाह भी बड़े ही सहज ढंग से किया गया है।

इस कविता की बहुत बड़ी विशेषता रूपक का आदि से अन्त तक सफल निर्वाह है। अकबर की फौज को विष-कामिनी बताकर और रत्नसिंह को दूल्हा बताकर विवाह की रस्मों को चामत्कारिक रीति से युद्ध पर घटित किया है। कहीं-कहीं कवि ने बड़ी भव्य कल्पना भी की है। उसने आकाश को थाल तथा नक्षत्रों को एक स्थान पर अक्षत बताया है।

उडियण थाल आवधे आखे,
+ +
वधाविजे रतनसी वींद।

मृत्यु के महलों में रण रूपी चंवरी में बैठ कर वह विवाह करता है।

रहियो विचे खडगहथ रतनो,
म्रत्य-मंदिर रिण चंवरी मांह।

इस प्रकार भाव, भाषा, शैली, अलंकार आदि सभी दृष्टियों से यह रचना डिंगल की एक प्रौढ़ रचना कही जा सकती है। वीर-रस सम्बन्धी अनेक गीतों मे कितने ही प्रकार के रूपक देखने को मिलते हैं, परन्तु ऐसे सांगोपांग और विस्तृत रूपक के दर्शन हमें इस कृति में ही होते हैं। वीर और शृंगार का अद्भुत सम्मिश्रण इसमें दूध और पानी की तरह मिला हुआ प्रतीत होता है, फिर भी इस कृति के पाठ से पाठक के हृदय में न केवल रतनसिंह के प्रति श्रद्धा ही उत्पन्न होती है अपितु उसका मानस वीर भावनाओं से उद्वेलित हो उठता है।

(२) अखो भाणोत :

यह जोधपुर के राजा उदयसिंह का समकालीन था। उसके पिता भाण-राव मालदेव का कृपापात्र था। बचपन में ही पिता की मृत्यु हो जाने के कारण जोधपुर के राजघराने द्वारा ही इसका पालन-पोषण किया गया था।[1] यह अपने समय के प्रसिद्ध एवं प्रभावशाली कवियों में से था।[2] राजा उदयसिंह ने जब क्रुद्ध होकर मारवाड़ के कुछ चारणों की जागीर जब्त करली थी तब चारणों ने आउवा ठिकाने में उनके विरुद्ध धरना दिया था। धरना देने वालों से सुलह करने के लिए उदयसिंह ने अपनी

(1) राठौड़ रतनसिंघ री वेलि, परिशिष्ट पृ० १०६
(2) द्रष्टव्य—द्वारकादास दधवाड़िया री दवावैत।

ओर से अखा को भेजा था, परन्तु सुलह कराने की वजाय यह स्वयं वरने में शामिल हो गया। तव उदयसिंह ने कहलवाया कि इस प्रकार का स्वामिद्रोह करने से तो कटार खाकर मर जाना ही अच्छा था। इसने ऐसा ही किया। यह घटना संवत् १६४३ की है।[1] अतः इसका रचनाकाल संवत् १६४३ तक माना जा सकता है।

'देवीदास जेतावत री वेलि' इस कवि की महत्त्वपूर्ण प्रबंधात्मक रचना है, जिसमें कवि ने देवीदास जेतावत के वीरतापूर्ण कृत्यों का वर्णन किया है। देवीदास ने अपने भाई पृथ्वीराज का वदला लेने के लिए मेड़ते के शासक राव जयमल पर हमला किया था। वि० सं० १६१३ के आसपास महाराणा उदयसिंह, राव कल्याणमल आदि की अध्यक्षता में आने वाली अकवर की सेना को भी देवीदास ने पराजित किया था।[2] २३ छंदों[3] की इस रचना में इस प्रकार के अनेक वीर कृत्यों का वर्णन कवि ने किया है। डा० हीरालाल माहेश्वरी ने इसका रचनाकाल सं० १६२० के लगभग माना है।[4]

गीतों के विशिष्ट शब्द-विन्यास, चित्रोपमता तथा ओज-प्रधान भाषा-शैली की दृष्टि से इस काल की कुछ अन्य काव्य कृतियों की तरह ही इस कृति का भी अपना महत्त्व है। काव्य शैली के उदाहरण के लिए कुछ छंद प्रस्तुत हैं।

मांडाया जु तैं प्रथीनल भ.गिण,
वसुधा ताह सांचा वाखाण।
माल कलोधर हियो मेड़ते,
तैं मालदे तणा मेल्हांण।।

\+ + +

दलनाइक अगड़ तुहारी देदा,
कोइ न हाले अड़स करि।
पाखर रोद्र लगे पतिसाही,
प्रघट पंचाहण तणि परि।।

\+ + +

उदियागिर पवे कुल आंणे,
महि वांमण विण कमण मिणे।

(1) आउवा रा धरना रा कवित्त।

(2) मिलो जैमिल रांण कल्याण मेड़ते, घणूं ज वेहतां विरद घण।
वल छंडियो तुहारे वोले, त्रिहुं, ठाकरे जेत तण।। (वेलि छंद सं० ११)

(3) अ० सं० ला०, वीकानेर, ग्रंथांक १३६

(4) राजस्थानी भाषा और साहित्य : डा० हीरालाल माहेश्वरी, पृ० १२०

कमध प्रवाड़ा गांन करे कुण,
गयण तणा कुण नखित गिणै ।।

इस वेलि के अतिरिक्त कवि ने स्फुट रचनाएं भी की है, परन्तु अभी तक इनके बहुत कम गीत प्राचीन संग्रहों में उपलब्ध होते हैं। उनकी जो भी स्फुट रचना उपलब्ध होती है, उसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि कवि प्रौढ़ कल्पना और सशक्त अभिव्यक्ति का धनी है। उदाहरणार्थ राठौड़ ईसरदास पर लिखे गए गीत के दो द्वाले प्रस्तुत हैं—

ताकंती फिरे हिंदुवां तुरकां,
जुड़ै न भरता मांत जुई ।
मरण तुहारे चंद मछर गुर,
अकबर फौज सचीत हुई ।।१।।
कसै न जूसण राग कलासै,
विलखी फिरै न पूछै वात ।
एकण कमंध मरण उतरिया,
असपत फौज तणै अहेवात।। २।।

(३) माला साँदू :

मध्यकालीन राजस्थानी साहित्य को महत्त्वपूर्ण देन देने वाले कवियों में माला साँदू का नाम भी लिया जाता है। यह कवि बीकानेर के राजा रायसिंह का समकालीन था। डा० हीरालाल माहेश्वरी ने संवत् १६७० तक इसका रचनाकाल माना है।[1] राजा रायसिंह से इसे दो गाँव पुरस्कार के रूप में मिलने का उल्लेख दयालदास की ख्यात में हुआ है।[2] इनके अतिरिक्त जोधपुर के राजा शूरसिंह ने भी इसे गूंदीसर नामक ग्राम दिया था जिसका उल्लेख बांकीदास ने अपनी ख्यात में किया है।[3] बांकीदास ने इसकी वंश परम्परा इस प्रकार बताई है—'साँदू चाँगा रौ गौयंद, गौयंद रौ ऊदौ, ऊदा रौ मालौ। माला रै चार बेटा हुआ—जसवंत, साँवतसी, ईसरदास, आसकरण [4]।

कवि की कृतियों और ख्यातों से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि उसका सम्पर्क उसके समकालीन अनेक शासकों से रहा है, परन्तु बीकानेर के

(1) राजस्थानी भाषा और साहित्य : डा० हीरालाल माहेश्वरी, पृ० १०७
(2) दयालदास री ख्यात : भाग २, पृ० १२३
(3) बांकीदास री ख्यात : पृ० १७८
(4) वही।

राजा रायसिंह की इस पर विशेष कृपा थी। सबसे अधिक काव्य-रचना उसने इन्हीं पर की है और डिंगल की सुज्ञात चारण कवयित्री पदमा साँदू जो माला साँदू की बहिन बताई जाती है, रायसिंह के छोटे भाई अमरसिंह की रानियों के पास रहती थी। इन तथ्यों से भी उपरोक्त कथन की पुष्टि होती है।

इस कवि ने अनेक प्रबंधात्मक एवं स्फुट रचनाओं का सृजन किया है। गीत-विधा की दृष्टि से रायसिंह की वेलि इसकी महत्त्वपूर्ण कृति है। अन्य कृतियाँ निम्न प्रकार हैं—

(१) झूलणा महाराज रायसिंघजी रा
(२) झूलणा दिवाँण श्री प्रतापसिंघजी रा
(३) झूलणा अकबर पातसाहजी रा
(४) स्फुट गीत छंद।

डा० हीरालाल माहेश्वरी ने अपने प्रबंध 'राजस्थानी भाषा और साहित्य' में इन कृतियों का विस्तृत परिचय प्रस्तुत किया है।[1]

विवेच्य कृति (रायसिंह री वेलि) वेलियो गीत में रचित ४३ छंदों की एक प्रबंधात्मक कृति है।[2] इसमें कवि ने रायसिंह के बचपन और यौवन के साहसपूर्ण कार्यों का चामत्कारिक वर्णन किया है। रायसिंह के शौर्य को प्रकट करना कवि का अभीष्ट रहा है, इसलिए आदि से अन्त तक रचना में ओज तथा वीर भावनाओं को उद्वेलित करने वाला आवेग दृष्टिगोचर होता है। भाषा में सहज प्रवाह तथा प्रसाद गुण इस रचना की उल्लेखनीय विशेषताएं हैं। दो छंद इस दृष्टि से दर्शनीय हैं—

सत दीप् रायसंघ वरस सात में,
परवत कुल् आठ में प्रवेस।
नवमें वरस बज बजियो नव खंड,
दसमें वरस बंदे देस।,
रायकुमार राजथंभ रतन रायसंघ,
सुरतांणी फौजां सरस।
असपत घड़ा लोहड़ै आड़ौ,
वाजियौ पनरहमें वरस ॥[3]

---

(1) राजस्थानी भाषा और साहित्य : डा० हीरालाल माहेश्वरी, पृ० १०६–११२
(2) अ० सं० ला० बीकानेर, ग्रंथांक १२६
(3) वही।

(४) राठौड़ पृथ्वीराज

राठौड़ पृथ्वीराज बीकानेर के राजा रायसिंह के छोटे भाई तथा राव कल्याणमल के पुत्र थे। सं० १६०६ में उनका जन्म हुआ था।[1] ये अपने समय के प्रसिद्ध कवि, योद्धा और राजनीतिज्ञ रहे हैं। अकबर के नव-रत्नों में तो उनका उल्लेख नहीं मिलता परन्तु वे अकबर के कृपा-पात्र अवश्य थे। मुहणोत नैणसी की ख्यात में गागरोन की जागीर उन्हें मिलने का भी उल्लेख है।[5] पृथ्वीराज ने दो विवाह किए थे। उनकी प्रथम पत्नी का नाम लालादे बताया जाता है। उसकी मृत्यु के पश्चात् उनका विवाह जैसलमेर के रावल हरराज की पुत्री चंपादे के साथ हुआ था।[3] चंपादे रूप, रस और गुण की साक्षात् प्रतिमा थी, जिससे पृथ्वीराज उसमें अत्यधिक आसक्त थे। चंपादे स्वयं अच्छी कवियित्री थी जिसका प्रमाण उसकी कुछ स्फुट रचनाओं से मिलता है।[4] पृथ्वीराज के सम्बन्ध में कुछ घटनाओं के उल्लेख प्राचीन ख्यातों में मिलते हैं और कुछ किंवदंतियां भी प्रचलित हैं। इनमें निम्नलिखित घटनाएं प्रसिद्ध हैं—

(अ) अकबर ने धोखे से चंपादे को मीना बाजार में बुलवा लिया था, तब पृथ्वीराज ने देवी राजबाई को याद किया और उन्होंने सिंह का रूप धारण कर अकबर को भयभीत किया जिससे नौ-रोजे की प्रथा बंद हुई।[5]

(आ) राणा प्रतापसिंह ने जब अकबर की आधीनता स्वीकार करने का विचार किया था तब पृथ्वीराज ने कुछ दोहे लिखकर प्रतापसिंह को भेजे थे, जिसके फलस्वरूप प्रतापसिंह में स्वाभिमान जागा और वे अपने प्रण पर अडिग रहे।[6]

(इ) पृथ्वीराज जब तीर्थयात्रा पर जा रहे थे तो रास्ते में किसी अपरिचित नगर में ठहरे। वहां एक वैश्य दम्पति ने प्रस्तुत होकर पृथ्वीराज से वेलि का पाठ सुनाने की याचना की। पृथ्वीराज ने उन्हें वैष्णव भक्त समझ कर वेलि का पाठ सुना दिया और वहां से आगे रवाना हुए। शीघ्रता में वे पोथी वहीं भूल गए इसलिए एक आदमी को पुस्तक लाने के लिए वापस भेजा। पुस्तक तो मिल गई परन्तु उस स्थान पर न तो कोई नगर था और न ही कोई आदमी दिखाई दिए।

---

(1) राजस्थानी सबद कोस : सीताराम लालस, भूमिका, पृ० १३८

(2) नैणसी की ख्यात : ना० प्र० स०, काशी, भाग १, पृ० १८८

(3) राजस्थान भारती, बीकानेर, भाग ७, अंक ३, पृ० ५५

(4) वही।

(5) द्रष्टव्य—दयालदास री ख्यात, भाग २

(6) राजस्थानी भाषा और साहित्य : डा० हीरालाल माहेश्वरी, पृ० १५४

पृथ्वीराज को जब यह सूचना दी गई तो वे समझ गए कि वैश्य दम्पति और कोई नहीं, स्वयं कृष्ण और रुक्मिणी ही थे।[1]

(ई) पृथ्वीराज का छोटा भाई अमरसिंह बड़े हौसले वाला स्वतंत्र प्रवृत्ति का योद्धा था। वह प्रायः शाही खजाने व इलाकों को लूट लिया करता था। अकबर ने उसे जीवित पकड़ लाने वाले सेना-नायक को बहुत बड़ा पुरस्कार देने की घोषणा की। यह सुनकर पृथ्वीराज ने कहा कि अमरसिंह को जिन्दा पकड़ना असंभव है। उसे पकड़ने के लिए जो भी सेना-नायक जायेगा उसे मारकर ही वह (अमरसिंह) वीरगति को प्राप्त होगा। जब अराबखां सेनानायक की अध्यक्षता में अकबर की फौज अमरसिंह पर चढ़ आई तो अमरसिंह ने उसका बड़ी बहादुरी से मुकाबला किया और अंत में सेनानायक को मारकर स्वयं काम आया।[2]

(उ) एक बार चकवे और चकवी को पींजरे में बन्द कर एक आदमी अकबर के दरबार में लाया जिस पर रहीम ने दोहे की एक पंक्ति कही—

सज्जन वारूं कोड़ धा, या दुर्जन की भेंट।

वहाँ अन्य कवि बैठे हुए थे परन्तु दूसरी पंक्ति कहकर कोई भी दोहे की पूर्ति नहीं कर सका, तब इस अधूरे दोहे को लेकर एक आदमी पृथ्वीराज के पास भेजा गया और उन्होंने यह पंक्ति लिखकर दोहे को पूरा कर दिया—

रजनी का मेला किया, वेह रा अच्छर मेट।[3]

(ऊ) अकबर पृथ्वीराज की भक्ति-भावना से अच्छी तरह परिचित था। उसने पृथ्वीराज से पूछा कि तुम पहुँचे हुए भक्त कहलाते हो, क्या यह भी बता सकते हो कि तुम्हारी मृत्यु कब और किस स्थान पर होगी? इस पर पृथ्वीराज ने कहा कि मेरी मृत्यु अमुक दिन मथुरा के विश्रान्त घाट पर होगी और उस दिन एक सफेद कौवा उस स्थान पर दिखाई देगा। कहते हैं कि पृथ्वीराज की मृत्यु सं० १६५७ में ठीक इसी प्रकार हुई थी।[4]

इन जनश्रुतियों में कितना तथ्य है, यह कहना बड़ा कठिन है, परन्तु इनमें प्रकट तथ्यों को आंशिक सत्य के रूप में भी ग्रहण किया जाय तो भी पृथ्वीराज के उदात्त और भव्य चरित्र का चित्र हमारे सामने उपस्थित हो जाता है। नाभादास की भक्तमाल और इसी प्रकार के अन्य ग्रंथों में उनका उल्लेख उच्च-कोटि के वैष्णव भक्तों में किया गया है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि भक्त का आत्म-बल,

---

(1) क्रिसन रुकमणी री वेलि: सं० ठाकुर व पारीक, भूमिका पृ० २६-२७
(2) दयालदास री ख्यात, भाग २, पृ० १३१
(3) क्रिसन रुकमणी री वेलि : ठाकुर व पारीक, भूमिका पृ० २८
(4) वही।

कवि की वाणी-साधना और वीर की निर्भीकता से उनका समस्त जीवन अलंकृत रहा है। कर्नल टाड ने उनकी इन चारित्रिक विशेषताओं को इस प्रकार व्यक्त किया है—"Prithivi Raj was one of the most gallant chieftains of the age and like the Troubadour princes of the west, could grace a cause with the soul inspiring effusions of the muse, as well as aid it with his sword; nay in an assembly of the bards of Rajasthan the plan of merit was unanimously awarded to the Rathore cavalier.[1]

पृथ्वीराज डिंगल और पिंगल दोनों भाषाओं के रस-सिद्ध कवि थे। उनकी रचनाएं निम्न प्रकार हैं—

(१) वेलि क्रिसन रुकमणी री
(२) दसरथरावउत रा दूहा
(३) वसुदेवरावउत रा दूहा
(४) गंगाजी रा दूहा
(५) कल्ला रायमलोत रा कुंडलिया
(६) भक्ति रा छप्पय
(७) वीरता एवं भक्ति विषयक गीत
(८) स्फुट दूहा, सोरठा, कुण्डलिया, कवित्त आदि।

उपरोक्त रचनाओं में 'वेलि' इनकी सबसे प्रसिद्ध रचना है। इनके जीवन काल में ही इस रचना ने पर्याप्त ख्याति पाली थी। दुरसा आढ़ा ने उसे पाँचवाँ वेद और उन्नीसवाँ पुराण कह कर पृथ्वीराज की प्रतिभा का बखान किया था—

पाँचवो वेद प्रथु भाख्यो, पुणियो उगणीसवों पुराण।

'वेलि' की कथा का आधार भागवत का दसम स्कंध है। भागवत से कथा-सूत्र लेकर कवि ने अपनी कल्पना के बल पर उसे संवारा है। प्रो० नरोत्तमदास स्वामी ने वेलि और भागवत की कथा में कोई पच्चीस अन्तर बताए हैं। वेलि भक्ति-भाव से प्रेरित रचना होते हुए भी मुख्यतया शृंगार-रसात्मक है। वीर और भक्ति रसों का उसमें सुंदर संम्मिश्रण हो जाने से यह इन तीनों रसों की त्रिवेणी और मध्यकालीन राजस्थानी साहित्य की प्रतिनिधि रचना कही जा सकती है।

वेलि के भाव—पक्ष और अभिव्यक्ति—पक्ष पर डा० तेस्सितोरी, सूर्यकरण पारीक व रामसिंह, प्रो० नरोत्तमदास स्वामी आदि ने पर्याप्त प्रकाश डाला है। अतः वेलि के काव्य—सौन्दर्य यर यहाँ विचार करना उतना आवश्यक नहीं जान पड़ता जितना कि उनके अन्य स्फुट गीतों पर जो प्रायः उपेक्षित ही रहे हैं।

---

(1) Annals and Antiquities of Rajasthan-James Tod.

अनुमानतः उनके स्फुट गीतों की संख्या सौ के करीब होनी चाहिए, परन्तु सभी गीत उपलब्ध नहीं होते। राजस्थानी ग्रंथों के विभिन्न संग्रहालयों में अद्यावधि उपलब्ध गीतों की सूची निम्न प्रकार है—

(१) गीत रतनसी रौ[1]
(२) गीत उदै मेहावत रौ[2]
(३) गीत जोधे सौलंकी रौ[3]
(४) गीत सादूल मालावत पंवार रौ[4]
(५) गीत राव रायसिंघ देवड़े रौ[5]
(६) गीत राणां प्रतापसिंघ रौ[6]
(७) गीत जगमाल उदैसिंघौत सिसौदिया रौ[7]
(८) गीत राजा रायसिंघ कल्याणमलोत रौ (दो गीत)[8]
(९) गीत मंडला अचलदासोत रौ[9]
(१०) गीत दौलतखांन नारायणदासोत रौ[10]
(११) गीत दलपत रायसिंघौत रौ[11]
(१२) गीत सारंगदे मांडणौत रौ[12]
(१३) गीत रामसिंघ कल्याणमलौत रौ (४ गीत)[13]
(१४) गीत भोपति चहुवांण रौ[14]

---

(1) राजस्थानी शोध संस्थान, जोधपुर का संग्रह।
(2) अ० सं० ला०, बीकानेर, ग्रंथांक १३७
(3) बारहठ देवकरण इंदौकली का संग्रह।
(4) सीतारांम लालस, जोधपुर का संग्रह।
(5) साहित्य संस्थान उदयपुर का संग्रह।
(6) राजस्थानी वीर गीत : सं० नरोत्तमदास स्वामी, बीकानेर, पृ० ७५
(7) कविराव मोहनसिंह, उदयपुर का संग्रह।
(8) अ० सं० ला०, बीकानेर, ग्रंथांक १३७–१३८
(9) सीतारांम लालस, जोधपुर का संग्रह।
(10) अ० सं० ला०, बीकानेर, ग्रंथांक १३७
(11) वही।
(12) राजस्थानी शोध संस्थान, जोधपुर का संग्रह।
(13) अ० सं० ला०, बीकानेर, ग्रंथांक १३७–१३८
(14) वही।

(१५) गीत राव कला रायमलौत रौ[1]
(१६) गीत खंगार जैमलोत रौ[2]
(१७) गीत अचलदास वलभदासौत कछवाहे रौ[3]
(१८) गीत फहीम पूंजावत रौ[4]
(१९) गीत सेरखांन रौ[5]
(२०) गीत मोटै मोहिल रौ[6]
(२१) गीत वैसल प्रथीराजौत रौ[7]
(२२) गीत रांम मांनमलोत रो[8]
(२३) गीत सेखा सूजावत राठौड़ रौ[9]
(२४) गीत मंडले दूदे संसारचंद्रोत रौ[10]
(२५) गीत जसै चारण रौ[11]
(२६) गीत पाहू भीमा रो[12]
(२७) गीत गोपालदास मांडणोत रौ[13]
(२८) गीत रामां सांदू रौ[14]
(२९) गीत रायसिंघ भाटी रौ[15]
(३०) गीत कुंभा गहिलोत रौ[16]

---

(1) द्रष्टव्य—राव कल्ला रायमलोत : सं० रामदीन पाराशर ।
(2) राजस्थानी शोध संस्थान, जोधपुर का संग्रह ।
(3) साहित्म संस्थान, उदयपुर का संग्रह ।
(4) अ० सं० ला०, बीकानेर, ग्रंथांक १३७
(5) वही
(6) वही
(7) साहित्य संस्थान, उदयपुर का संग्रह ।
(8) बारहठ देवकरण, इंदोकली का संग्रह ।
(9) वही ।
(10) वही ।
(11) अ० सं० ला० बीकानेर, ग्रंथांक १३८
(12) राजस्थान-भारती-बीकानेर, भाग ७, पृ० ५२
(13) वही ।
(14) वरदा : सं० मनोहर शर्मा, बिसाऊ, वर्ष ५, अंक १, पृ० १
(15) राजस्थान भारती : बीकानेर, भाग ७, पृ० ५२
(16) अ० सं० ला०, बीकानेर, ग्रंथांक १३८

(३१) गीत भीम राजपाल रौ[1]
(३२) गीत उदैभान रौ[2]
(३३) गीत सूरसिंघजी रौ[3]
(३४) भक्ति व शान्तरस का गीत[4]

पृथ्वीराज के इन गीतों के मुख्य विषय दो हैं—वीरता और भक्ति। पृथ्वीराज ने इन गीतों का निर्माण करते समय गीत के विभिन्न भेदों के प्रयोग करके अपना पांडित्य-प्रदर्शन करने का लोभ नहीं किया हैं। दो-चार गीतों को छोड़कर अन्य सभी में वेलियो गीत का ही प्रयोग किया है। वीर पुरुषों से सम्बन्धित गीतों में उनका भावावेग संयमित काव्य-कला के सहारे निखर कर बाहर आया है। उन्होंने अपनी जिस शैली विशेष में वेलि की रचना की है, उसी प्रकार की शैली के दर्शन इन गीतों में भी देखने को मिलते हैं। गीत का एक द्वाला पढ़ने से ही पृथ्वीराज के शब्द-चयन और भाषा के प्रवाह का अनुमान डिंगल के अच्छे पाठक के लिए लगा लेना कठिन नहीं है। वीर-रसात्मक गीत प्रायः उन्होंने अपने सम-सामयिक आदर्श पुरुषों को ही लेकर कहे हैं।

यहाँ यह कहना अप्रासंगिक न होगा कि पृथ्वीराज की स्थिति चारण कवियों से भिन्न होने के कारण उनके इन गीतों की प्रेरणा बड़ी गहरी और अन्य प्रभावों से अछूती है। उन्होंने अपने तीन भाइयों—रायसिंह, अमरसिंह और रामसिंह पर भी गीत कहे हैं, परन्तु उन गीतों में अपनत्व होते हुए भी अतिशयोक्तिपूर्ण प्रशंसा नहीं है, इससे यह सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि वे अपने कवि-धर्म के प्रति कितनी सत्यता बरतते थे। जीवन का व्यावहारिक पक्ष उनके कवि पर कभी हावी न हो सका। इसका सबसे बड़ा प्रमाण एक गीत में की गई राणा प्रतापसिंह की प्रशंसा और अन्य सभी शासकों तथा अकबर की निन्दा से ही मिल जाता है। गीत इस प्रकार है—

नर जैथ निमांणा निलजी नारी, अकबर गाहक बट अबट।
चौहटै तिण जाय र चीतोड़ौ, वेचै किम रजपूत वट॥
रोजायतां तणै नव रोजे, जेथ मुसाण जणै जण।
हिन्दूनाथ दिलो चे हाटे, पतो न खरचे खत्री पण॥
परपंच लाज दीठ नह व्यापण, खोटो लाभ अलाभ खरो।

(1) अ० सं० ला०, बीकानेर, ग्रंथांक १३८
(2) वही।
(3) वही।
(4) राजस्थानी शोध संस्थान, जोधपुर का संग्रह।

रज वेचवा न आवै राणौ, हाटै मीर हमीर हरो ॥
पेखे आप तणा पुरसोत्तम, रह अणियाल तणै बल राण ।
खत्र बेचिया अनेक खत्रियां, खत्रवट थिर राखी खूमाण ॥
जासी हाट बात रहसी जग, अकबर ठग जासी एकार ।
रह राखियौ खत्री ध्रम राणै, सारा ले वरतो संसार ॥

यहाँ यह कहने की आवश्यकता नहीं कि अकबर जैसे शक्तिशाली सम्राट और अन्य शासकों की अप्रसन्नता की परवाह न करते हुए अपनी भावनाओं को ऐसी स्पष्ट व सशक्त अभिव्यक्ति देना पृथ्वीराज के ही वश की बात थी ।

जिस समय हल्दीघाटी के मैदान में राजस्थान की स्वतन्त्रता की एक मात्र ज्योति राणा प्रतापसिंह को समाप्त करने के लिए अकबर की विशाल सेना आ डटी थी, उस समय बहुत से चारण कवि अपने सांसण (जागीर) प्राप्त करने के लिए आउवा में धरना देकर बैठ गए थे, रामां सांदू भी उनके साथ था, परन्तु विपत्ति का समाचार मिलते ही वह स्वयं धरना छोड़कर युद्धभूमि में आ उपस्थित हुआ और मातृभूमि की रक्षा के लिए उसने प्राणोत्सर्ग किया । पृथ्वीराज ने रामां सांदू की चारित्रिक उज्ज्वलता और अन्य चारण कवियों की लोभ-वृत्ति तथा कर्तव्य-विमुखता बड़े ही सबल शब्दों में व्यक्त की है, जो उनके देश-प्रेम को भी प्रमाणित करती है । गीत इस प्रकार है—

गयो तूं भलां भलां तूं न गयो, धिन धिन तूं सांदवां धणी ।
जाडा अणी मां हैडो जा कल, अणी करण पातला अणी ।
तैं लिय आहव राण त्रजड़ हथ, ले लांघण सांसण न लिया ।
सोहे ससत्र सालिया सात्रव, कंठ सोहै न खालिया किया ।
दल आप रो नत्रीठो दीनो, धाये लीना प्रसण घणा ।
आंबाहरा न बीजा ओपम, तागा वाला नसा तणा ।
चारण जाणै मांय चारणां, अबै समै विच नथ अनथ ।
धरमा तणो न बैठो धरणै, रामो बैठो रंभ रथ ।

उनके भक्ति-सम्बन्धी गीतों में उनकी भाव-विह्वलता और अनन्य-निष्ठा बड़े ही सहज रूप में व्यक्त हुई है—

जारिया वारिया हेक ऊवारिया, राखिया मारि वैसारिया राजि ।
जियाड़ै अम्रत दे हेक जीवाड़िया, क्रिसन करि क्रुपा निज सेवगां काजि ।

संसार की असारता को अनेक कवियों ने अपने-अपने ढंग से व्यक्त किया है, परन्तु पृथ्वीराज के वर्णन में संसार की असारता के प्रति एक तरह की जो पीड़ा और कसक पाई जाती है, वह उनकी भावुकता और अनुभूति की परिचायक है—

सुख रास रमंतां पास सहेली, दास खवास मोकला दाम ।
न लिया नाम पखै नारायण, कलिया उठ चलिया वेकाम ।।
माया पास रही मुलकंती, सजि सुन्दरी कीधा सिणगार ।
वहु परिवार कुटम्ब चौ वाधो, हरि बिन गयो जमारो हार ।।
हास हसंतां रह्या धोलहर, सुख में रासत ज्यूं संसार ।
लाखां धणी प्रयाणै लाम्बे, जातां नह भेजिया जुहार ।।
भाई वंध कडूंबो भेलो, पिंड न राखो हेक पुल ।
चापरि करै अंग सिर चाढ़ो, काढ़ो काढ़ो कहै कुल ।।
असिया रह्या पग आफलता, मदझर खलहलता मैमंत ।
वहलो धणी सिघासण वालो, पालो होय हालियो पंथ ।।

पृथ्वीराज ने वेलि की रचना करके तो डिंगल को बहुत बड़ी देन दी ही है परन्तु उनके स्फुट गीत भी उन मुक्ताओं के समान हैं जिनकी कान्ति वेलि की कान्ति की तरह ही काल के अन्धकार को सदैव विदीर्ण करती रहेगी ।

(५) कल्याणदास मेहडू—

कवि कल्याणदास चारणों की मेहडू शाखा के कवि थे । ये बादशाह अकबर के दरबार में सम्मान-प्राप्त प्रसिद्ध कवि आसकरण अपरनाम जाडा मेहडू के पुत्र थे । कल्याणदास का अन्य परिचय तो प्राप्त नहीं है, पर उनके रचित काव्य से अन्तःसाक्ष्य के आधार पर इनका काव्य-रचना-काल संवत् १६८५ के लगभग माना जाना चाहिए ।[1] इनके प्राप्त गीतों से यह निश्चित है कि इनका राजस्थान के सम-सामयिक सभी राजाओं से अच्छा परिचय था । जोधपुर के राजा गजसिंह ने तो इनके काव्य पर मुग्ध होकर अन्य कतिपय कवियों के साथ इनको भी लाखपसाव प्रदान कर सम्मानित किया था ।[2]

वेलियो गीत में रचित 'राव रतन री वेलि' इनकी प्रसिद्ध काव्य-कृति है । इसके अतिरिक्त अपने सम-सामयिक अनेक वीर पुरुषों पर भी इन्होंने स्फुट काव्य-रचना की है । कुछ काव्य रचनाएं इस प्रकार हैं ।

(१) गीत सार्दूल परमार रो[3]
(२) गीत मानसिंघ परमार रौ[4]

---

(1) राजस्थानी सबद कोस : सीताराम लालस, भूमिका, पृ० १४८
(2) वीर विनोद : कविराजा श्यामलदास, द्वितीय भाग, पृ० ८२०
(3) साहित्य संस्थान, उदयपुर का संग्रह ।
(4) वही ।

(३) गीत राजा भावसिंघ कछवाहा रौ[1]
(४) गीत दलपति सकतावत रौ[2]
(५) गीत राजा गजसिंघ रौ[3]
(६) गीत करमसेन अगरसेनौत रौ[4]
(७) गीत राजा भीम सीसोदिया (टोडा) रौ[5]
(८) गीत कल्ला परतापौत रौ[6]
(९) गीत रावत नराइणदास रौ[7]
(१०) गीत राउ अगरसेन रौ[8]
(११) गीत राउ भोज (बूंदी) रौ[9]

'राव रतन री वेलि' कवि की अत्यन्त प्रौढ़ तथा ओजगुण-प्रधान रचना है। यह रचना १२१ वेलियो गीत के द्वालों और तीन छप्पयों में पूर्ण हुई है। इस छोटी-सी काव्य-कृति में कवि ने न केवल अपने चरित्र-नायक रतनसिंह का ही यश वर्णन किया है अपितु उसके पूर्वजों के वीर-कृत्यों का भी स्मरण वेलि के प्रारंभ में किया है। राव रतनसिंह के पिता भोज पर भी कवि ने अच्छा प्रकाश डाला है। रतनसिंह बादशाह अकबर और जहांगीर के शासन-काल में विद्यमान थे। अतः इन शासकों से रतनसिंह के सम्बन्ध को व्यक्त करने वाले अनेक काव्य-स्थल इस कृति में हैं। काशी के निकट चरणाद्रि नामक स्थान पर शाही सूबेदार शरीफखां को परास्त कर मारने और खुर्रम के विद्रोह का दमन करने में रतनसिंह ने जो शौर्य और असाधारण वीरता दिखाई थी, उसका वर्णन प्रमुख रूप से इस रचना में किया गया है।

कवि ने काव्य-नायक के उदात्त चरित्र को बड़ी से बड़ी उपमाएं देकर प्रकट किया है। उसे दानियों में कर्ण, राजाओं में इन्द्र, देवों में कुबेर तथा भीष्म के समान ब्रह्मचारी और अर्जुन के समान वीर बताया है।

---

(1) कविराव मोहनसिंह, उदयपुर का संग्रह।
(2) राजस्थानी शोध संस्थान, जोधपुर का संग्रह।
(3) वही।
(4) साहित्य संस्थान, उदयपुर का संग्रह।
(5) वही।
(6) वही।
(7) बं० हि० मं०, कलकत्ता का संग्रह।
(8) रा० प्रा० प्र०, जोधपुर का संग्रह।
(9) वही।

करणदोरे भीखम अरिजण करगे,
मुख नें धरम दुजोअण मांण।
दानि करन विक्रम पर दुख में,
वडिम मार जिम सेष वखांण।।
देवापति इंद्र कुबेर देव में,
अंस अगनि वजवजियौ सार।
ईस क विसन व्रहमरा आरिख,
आखि रयण केहो अवतार।।

अपने आश्रयदाता को समस्त गुणों से विभूपित कर आदर्श रूप में स्थापित करने के लिए कवि ने उसे चारों वेद, पट् भापा तथा व्याकरण का पूर्ण ज्ञाता और पुराणों, स्मृतियों, ज्योतिप ग्रंथों तथा अनेक विद्याओं का जानकार वताते हुए छत्तीस लक्षणों से युक्त, अत्यन्त पराक्रमी और साहसी शासक के रूप में चित्रित किया है।

चत्रवेद राग पट भापा चित में,
गमि नवधा करणा दस ग्रंथ।
रीति चतुर-दस गुणां चौरासी,
प्रीति पुरांण अठारह पंथ।।
सासित्र में च्यारि अठारह संम्रित,
जोति कलां वहत्तरी जांण।
लखण छतीस छत्रीसइ लोहां,
चितधारिया राउ चहूवांण।।

इस कृति में युद्ध का वर्णन वर्षा के साथ रूपक वांधकर बड़ी सजीव शैली में किया गया है। एक उदाहरण दर्शनीय है—

धारू जलधार वलकि सिरि घड़ घड़,
वल् वल् किरि वादल् में वीज।
ऊजल् छंट रयण ओवड़ियो,
भूतल् खल् रहिया रत भींज।।

युद्ध स्थल पर शिव और शक्ति को उपस्थित करने की परम्परा प्रायः वीर-काव्य में देखी जाती है, परन्तु इस कवि ने शक्ति को पनिहारिन और शिव को माली के रूप में उपस्थित कर काव्य में अद्भुत चमत्कार उत्पन्न कर दिया है—

पणीहारी सकति मालो ऊमापति,
करिवा कमल् माल् वै काम।

एकाध स्थल पर तो कवि ने जड़ में चेतना का आरोप भी बड़े सुन्दर ढंग से किया है—

हाडां तणा पहाड़ हरखिया,
कुलगर बे ऊछाह किया ।

अकबर बादशाह ने समस्त रजवाड़ों को अपने अधीन कर लिया था फिर भी राणा प्रतापसिंह जैसे स्वतन्त्रता प्रेमी वीरों का बखान कर उस काल के कवियों ने अपनी राजनैतिक चेतना को प्रकट किया है, उनमें कल्याणदास का भी अपना स्थान है। उसने राव भोज को अकबर के विस्तृत शासन समुद्र में वाडवाग्नि की तरह दीप्त बताकर उसके स्वातन्त्र्य प्रेम की प्रशंसा की है—

अकबर पतसाह महण जल आरिख,
अनि पह तप वोलिया अनीति ।
मांहे थको भोज मांटीपण ।
राउ रहियो वड़वानल रीति ।।

उपरोक्त विवरण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि कल्याणदास न केवल अपने समय के महत्त्वपूर्ण कवियों में थे अपितु गीत-रचना को भी उनकी विशेष देन रही है।

(६) किसना आढ़ा (प्रथम)—

किसना आढ़ा की गिनती डिंगल के प्रमुख कवियों में की जाती है। वेलियो गीत छंद में लिखित महादेव पारवती री वेलि[1] इनकी सुप्रसिद्ध रचना है। इसमे कुल ३८२ छंद हैं। रचना का आधार शिवपुराण की कुछ उपकथाएं हैं। शिव के योगीश्वर रूप से कवि ने कथा का प्रारंभ किया है। इसके पश्चात् गंगावतरण, राजा दक्ष के यहाँ सती का अवतार, सती और शिव का धूमधाम से विवाह, सती का राजा दक्ष पर कोप, वीर-भद्र द्वारा दक्ष का संहार, सती द्वारा पार्वती के रूप में पुनः अवतार लेना, पार्वती द्वारा शिव की आराधना करना, शिव का प्रसन्न होकर विवाह की स्वीकृति देना राजा हिमाचल के यहाँ शिव का धूमधाम से विवाह करना, कुमार कार्तिकेय का पुत्र रूप में जन्म लेना तथा उसके द्वारा दैत्यों का संहार करना आदि प्रमुख रूप से इसमें वर्णित हैं।

प्रो० नरोत्तमदास स्वामी के अनुसार आढ़ा किसना ने 'हर पार्वती री वेलि' की रचना कर पृथ्वीराज की 'क्रिसन रुकमणी री वेलि' की सफल स्पर्धा की है।[2] इस

---

(1) महादेव पारवती री वेलि : सं० रावत सारस्वत: सा० रा० रि० इ० बीकानेर।
(2) राजस्थानी साहित्य : एक परिचय, पृ० ३०

कृति का बारीकी से अध्ययन करने पर पता चलता है कि क्या भाव, क्या भाषा, क्या छंद और क्या शैली सभी दृष्टियों से यह कृति पृथ्वीराज की वेलि से बहुत प्रभावित है। यहां यह बताना अप्रासंगिक न होगा कि पृथ्वीराज ने जब अपनी वेलि का निर्माण किया था और उसके साहित्यिक गौरव की चर्चा सर्वत्र हुई थी तब उस काल के कुछ प्रसिद्ध कवियों ने यह शंका प्रकट की थी कि एक चारणेतर कवि चारण-शैली में इतनी उच्चकोटि की काव्य-रचना कैसे कर सकता है, क्योंकि डिंगल में उच्चकोटि की काव्य-रचना तब तक प्रायः चारणों ने ही की थी और डिंगल काव्य-रचना पर वे अपना एकाधिकार मानते थे। बात यहाँ तक बढ़ गई थी कि माधोदास, दुरसा आढ़ा आदि कवियों ने वेलि की मौलिकता और पृथ्वीराज के कृतित्व आदि को परखने की दृष्टि से उसकी जांच भी की थी। अतः चारण कवियों में जागृत इस प्रतिस्पर्धा के फलस्वरूप ही किसना आढ़ा ने, संभव है, आगे जाकर इस वेलि का निर्माण किया हो।

डिंगल काव्य में अभी तक इस कृति की बहुत कम चर्चा हुई है। यह कृति भी डिंगल की अन्य श्रेष्ठ कृतियों की तरह यहाँ की कई सांस्कृतिक मान्यताओं, नारी-सौन्दर्य तथा भाषा की चित्रोपमता व प्रौढ़ता की दृष्टि से अपना विशिष्ट महत्त्व रखती है। सती के विवाह के अवसर पर उसके वस्त्रों आदि का वर्णन करते समय कवि ने राजस्थान की संस्कृति को ध्यान में रखते हुए बाजूबंद, बाहुरखा आदि शृंगारिक उपकरणों को अपनाया है यथा—

बांधिया चिहूँ करे बाजू-बंध,
घर आगलि बहुरखा धर।
कांमण हाथ विराजई कांकण,
ग्रोंचां ऊपर अवज पर ॥ (१४१)

पार्वती के सौन्दर्य को व्यक्त करने वाली कुछ पंक्तियां भी दर्शनीय हैं—

मृग मणधर की मणाल मोढ़ंतां,
सिंह लीक ओपमां किसी।
अपछर किसुं सकत रह आगइ,
जग अंचरिज जोवतां जिसी ॥ (२४२)

पार्वती की पायल की ध्वनि का कवि ने बड़ा ही भव्य चित्रण प्रस्तुत किया है। उसकी उपमा भाद्रपद में समुद्र के गर्जन तथा पर्वत शिखरों पर होने वाली बादलों की गूढ़ ध्वनि से दी है—

पग पहरी सकत बाजणी पायल,
ने प्रांचइ आगली नद।

गांडीरव भाद्रपइ तणी गति,
सेहरां ऊपरि साण सद ।। (३२६)

शिव अज हैं । इन्हें न तो किसी स्त्री ने खिलाया है और न उन्हें गोद में बैठाकर स्तन-पान करवाया है—इसकी सहज अभिव्यक्ति कवि ने सरल भाषा में दी है

रमाड़ियउ न रंग भरि रामा,
घवराड़ियउ न गोद धरि ।। (७)

भाषा में अइ और अउ के प्रयोग अधिक देखने में आते हैं, जिसका कारण किसी जैनी विद्वान द्वारा इसकी प्रतिलिपि करते समय ऐसे परिवर्तन कर देना जान पड़ता है, अन्यथा इस समय की चारण-शैली में लिखित रचनाओं में इस प्रकार के प्रयोग बहुत कम मिलते हैं । वैण-सगाई का सर्वत्र सफल निर्वाह डिंगल भाषा पर कवि के अच्छे अधिकार को प्रमाणित करता है ।

यद्यपि किसना आढ़ा ने पृथ्वीराज की प्रतिस्पर्धा करने का पूरा प्रयास किया है परन्तु वह न तो पृथ्वीराज की तरह अनेक विद्याओं का ज्ञाता जान पड़ता है और न ही उसके पास उतनी सूक्ष्म पर्यवेक्षण दृष्टि तथा भावों को गुंफित करने की कला ही है । यहां आलोच्य वेलि और पृथ्वीराज की वेलि के कुछ स्थलों की तुलना करने से यह बात स्पष्ट हो जायगी ।

राठौड़ पृथ्वीराज ने रुक्मिणी की तरुणाई का वर्णन बड़े संयमित और संजीदा ढंग से किया है—

पहिलौ मुख राग प्रगट थ्यो प्राची,
अरुण कि अरुणोदय अम्बर ।
पेखे किरि जागिया पयोहर,
सन्झा वन्दण रिखेसर । (१६)

किसना आढ़ा पार्वती के यौवन का वर्णन करते समय इस प्रकार की संजीदगी नही बरत सके और उसे गजगामिनी आदि बताने के साथ-साथ काली घटाओं के प्रभाव से उन्मत्त मयूर के साथ उसकी उपमा दी है, जो जगन्माता पार्वती के लिए सर्वथा उपयुक्त न होकर साधारण नायिका के यौवनगत उन्माद और चांचल्य को व्यक्त करने वाली है । किसना आढ़ा की पंक्तियां इस प्रकार है—

चढ़ंती वय उपमा चढ़ती,
म्रगलोचनी कलाइंर मौर ।
गति आसति मति गयंद तणि गति,
जोवन तणउ दिखायउ जोर ।। (२४०)

राठौड़ पृथ्वीराज के वर्णन में जैसी सूक्ष्म चित्रोपमता है वैसी चित्रोपमता इस कृति में नहीं पाई जाती। सद्यःस्नाता रुक्मिणी के केशों से जल-बिन्दुओं के चूने का चित्रण बड़ी बारीकी के साथ किया है—

कुमकुमे मंजण करि धौत वसत धरि,
चिहुरे जल् लागौ चुवण।
छीणे जाणि छछोहा छूटा,
गुण मोती मखतूल गुण॥ (८१)

किसना आढ़ा ने पार्वती सम्बन्धी इस प्रसंग का वर्णन निम्न प्रकार किया है—

ऊठी ताइ करे मांजणउ उमया,
वेणी भर अंबग्रह वड़।
बादल् स्वास तणउ ताइ वरसइ,
भीणी बूंदां केर भड़॥ (३२७)

इस पद्यांश की अन्तिम दो पंक्तियों में बादल से भीनी बूंदों की झड़ी लगने की उपमा उस बारीकी को व्यक्त नहीं करती, जो रेशम के काले धागों में से मोतियों के सरक कर गिरने की उपमा देकर पृथ्वीराज ने की है।

ऋतु-वर्णन, युद्ध-वर्णन तथा मनःस्थितियों का वर्णन भी किसना आढ़ा से पृथ्वीराज का कहीं श्रेष्ठ है। अतः 'महादेव पारवती की वेलि' को पृथ्वीराज की वेलि के समकक्ष तो नहीं माना जा सकता, परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि डिंगल के उत्कृष्ट काव्यों में इसकी भी गणना की जा सकती है।

(७) शिवबक्स पाल्हावत—

डिंगल में जिस प्रकार वेलियो गीत के द्वारा अनेक कवियों ने सुन्दर प्रबंधात्मक काव्य-रचनाएं की हैं, उसी प्रकार झमाल् गीत को अपनाकर भी शिवबक्स पाल्हावत, बीदावत, महादान मेहड़ू, बांकीदास आशिया, सिवदांन सांदू, बख्तावर राव आदि ने भी सुन्दर रचनाएं की हैं। इन झमालों में शिवबक्स द्वारा रचित अलवर की झमाल् बड़ी प्रसिद्ध है।

शिवबक्स पाल्हावत भूतपूर्व अलवर रियासत के गजूकी ग्राम के निवासी थे। उन्होंने स्वयं अपना परिचय अलवर के छंदोबद्ध इतिहास में इस प्रकार दिया है—

इलाके जो अलवर के गजूकी गांव।
कि है बारहठ कौम सिवबक्स नांव॥[1]

---

(1) मत्स्य प्रदेश की हिन्दी साहित्य को देन : डा० मोतीलाल गुप्त, पृ० २१६

इनके पूर्वज हणूतियां ग्राम के निवासी थे, वहीं इनका जन्म सं० १८९९ में हुआ। डिंगल के प्रसिद्ध कवि रामनाथ कविया इनके मामा वताए जाते हैं। उन्हीं से वचपन में इन्होंने काव्यशिक्षा आदि प्राप्त की। अलवर के थाना ठिकाने के ठाकुर हनुवंतसिंह के पुत्र मंगलसिंह के ये कृपा-पात्र थे और जब वे अलवर गोद आए तव से ये भी इनके पास ही रहने लगे। इनका अनेक रियासतों में आना-जाना था और कई प्रतिष्ठित व्यक्तियों से घनिष्ठता भी थी। इनकी मृत्यु सं० १९५६ में अलवर में हुई।[1]

ये डिंगल तथा पिंगल दोनों ही भापाओं में रचना करते थे और इतिहास के भी अच्छे ज्ञाता थे। इन्होंने पिंगल में 'अलवर राज्य का इतिहास' तथा 'वृन्दावन शतक' आदि लिखे हैं। डिंगल में 'अलवर की झमाल' तथा कुछ स्फुट काव्य का निर्माण भी किया है।

१२८ झमाल छंदों में रचित इस रचना का मुख्य विपय अलवर की छह ऋतुओं की पृष्ठ-भूमि में अलवर-नरेश के ऐश्वर्य तथा विभिन्न कार्य-कलाप आदि हैं। कवि ने एक ओर जहां विभिन्न ऋतुओं में अलवर की प्राकृतिक सुपमा, उत्सव, त्योहार और जनता के भावोल्लास आदि का वर्णन रसपूर्ण शैली में किया है, वहाँ दूसरी ओर राजभवन के वैभव, राजसी सवारी और सामन्तों के प्रभाव आदि को भी अलंकृत रूप में प्रकट किया है। कवि प्रायः अलवर-नरेश के साथ ही रहता था इसलिए उसने सिंह तथा सूअर आदि की शिकार आदि का भी विस्तृत वर्णन वड़े प्रभावोत्पादक ढंग से किया है। उदाहरणार्थ दो छंद दर्शनीय हैं—

फोंफर कालिज हुय फड़ड़ दड़ड़ रुधिर घर डाक।
सड़ड़ गजां मद सूं किया हड़ड़ वीर हुय हाक।।
हड़ड़ वीर हुय हाक गिरव्वर गाजवै।
भमर अणी रौ भूप समर इम साजवै।।
रह्यो थरक रथ थामि अरक उण ठाहरां।
खरौ विलोकै खेल नरिंद अरु नाहरां।।
अंत्रावलि पावां उलझि घण छकि घावां घूमि।
पड़ि ऊठै लोटै पड़ै भड़ै भ्रुसुंडां भूमि।।
भड़ै भ्रुसुंडा भूंमि भूमि इण भाव सूं।
खरो हड्डू खेल इमें महाराव सूं।।
दूजी वर दिल पसंद झालि कर झोकवी।
चुकै न तिण री चोट रुकै नही रोकवीं।।

(1) वं० हि० मं०, कलकत्ता के कवि परिचय संग्रह से।

आधुनिक काल की डिंगल गीत रचनाओं में उक्त झमाल एक प्रतिनिधि रचना कही जा सकती है।

(आ) स्फुट गीत-रचना करने वाले कवि

(१) हरिसूर वारहठ—

हरिसूर के जन्म-संवत्, स्थान आदि का पता नहीं चलता। डा० हीरालाल माहेश्वरी ने उनकी रचनाओं के आधार पर उनके रचनाकाल की अन्तिम सीमा सं० १५४५ के लगभग मानी है।[1] हरिसूर के गीतों को देखने से पता चलता है कि वे दीर्घजीवी हुए हैं, क्योंकि उनके गीत एक ओर राणा कुंभा की मृत्यु (सं. १४६०वि.) पर लिखे हुए मिलते हैं[2] तो दूसरी ओर सूरजमल हाडा पर भी उनकी गीत-रचना मिलती है। सूरजमल की मृत्यु संवत् १५८८ वि० में हुई थी।[3] इसलिए उनके रचनाकाल की अन्तिम सीमा १६वीं शताब्दी के अन्तिम चरण के लगभग मानी जा सकती है।

हरिसूर का कोई बड़ा ग्रंथ अभी तक देखने में नहीं आया, परन्तु उनकी अनेक स्फुट रचनाएं ग्रंथ-भंडारों में विखरी हुई मिलती हैं। डिंगल को सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण देन उन्होंने उत्तम कोटि की गीत-रचना के द्वारा दी है। गीत छंद पर उनके अधिकार को प्रमाणित करने वाले एक प्राचीन छंद की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

> कांविते 'अलू' दूहे करमाण दे, पात 'ईसर' विद्या चो पूर।
> छंद 'मेहो' झूलणे 'मालो', सूरपदे गीते 'हरसूर'॥

उनके उपलब्ध गीतों की सूची निम्न प्रकार है—

(१) गीत देवीजी रो[4]
(२) गीत राठौड़ राव रिड़मल चूंडावत रो[5]
(३) गीत राव जोधा रिड़मलोत रो[6]
(४) गीत राठौड़ दीदा जोधावत रो[7]
(५) गीत पड़िहार राजसी रो[8]

---

(1) राजस्थानी भाषा और साहित्य : डा० हीरालाल माहेश्वरी, पृ० ११७
(2) राजस्थान भारती, कुंभा विशेषांक, वीकानेर, पृ० १२७–१२८
(3) वीर विनोद : कविराजा श्यामलदास, भाग २, पृ० ७–८
(4) अ० सं० ला०, वीकानेर, ग्रंथांक १३८
(5) राजस्थानी वीर गीत : नरोत्तमदास स्वामी, वीकानेर, पृ० २१
(6) वही, पृ० २६
(7) वही, पृ० ३१
(8) वही, पृ० १५६

(६) गीत महाराणा कुंभा रा (तीन गीत)[1]
(७) गीत सता लूणकरणोत रौ[2]
(८) गीत सेखा उदैसिंघोत रौ[3]
(९) गीत मांडण सोढा रौ[4]
(१०) गीत राव चूंड़ै री तारीफ रौ[5]
(११) गीत चांपा रिड़मलोत रौ[6]
(१२) गीत अखै पंवार रौ[7]
(१३) गीत सूरजमल हाडा रौ[8]
(१४) उदा सीसोदीया रौ गीत[9]
(१५) गीत रायसिंघ गहलोत रौ[10]
(१६) गीत प्रतापसिंघ कूंपावत रौ[11]
(१७) गीत राम सिवावत रौ[12]
(१८) गीत कैलण (भाटी) रौ[13]
(१९) गीत सादूल राणावत रौ[14]
(२०) गीत सादूल सलखावत रौ[15]

---

(1) राजस्थान भारती, महाराणा कुंभा विशेषांक, पृ १२२-१२७
(2) साहित्य संस्थान, उदयपुर का संग्रह ।
(3) साहित्य संस्थान, उदयपुर का संग्रह ।
(4) वही ।
(5) वही ।
(6) अ० सं० ला०, बीकानेर, ग्रंथांक १३७
(7) वही ।
(8) वही ।
(9) वही ।
(10) वही ।
(11) वही ।
(12) वही ।
(13) वही ।
(14) वही ।
(15) वही ।

(२१) गीत वने गोपालोत रो[1]

(२२) गीत चूंडेजी रो[2]

हरिसूर के गीत उच्चकोटि की साहित्यिक रचनाएं हैं। राठौड़ पृथ्वीराज के पहले के कवियों में गीत-रचनाकार के नाते हरिसूर का स्थान सर्वोच्च माना जा सकता है। जथाओं का समुचित निर्वाह, शब्द-सम्पति, वैणसगाई का सुन्दर निर्वाह आदि कुछ विशेषताओं के आधार पर हरिसूर ने अपने प्रत्येक गीत में अपने व्यक्तित्व की छाप अंकित करने का सफल प्रयास किया है।

राठौड़ राव रिड़मल अपने शत्रुओं से लोहा लेने के लिए सदैव उद्यत रहता है, उसका चित्रण निम्नलिखित पंक्तियों में देखिए—

सिंह संपत्ति संग्रहे निहसै नित–प्रति,
करिमर निय साहिये करि।
रेवंत पूठ वसै जइ रिणमल,
वास म गणि ताइ वैर हरि॥

राठौड़ वीदा जोधावत के दान की प्रशंसा कवि ने वड़ी ही भव्य-शैली में की है—

सरवर नदि सघण कोडि बहु करिसण,
मांडे माप अधिक मंडल।
वीर किसूं जोवे सउं वसुधा,
जलिहर लेखौ तणौ जल॥

राव जोधा की वीरता और उसके शत्रुओं के पराजित होकर भागने का वर्णन एक गीत मे कवि ने वड़े ही व्यंग्यात्मक ढंग से किया है। दो छंद दर्शनीय हैं—

वहु रावां राणां वाद विवरजित,
जोध कलह–क्रित जिका जुई।
वैराइयां तुहालां भगवट,
हव जाणै कुल-वाट हुई॥१॥
मारग वीरमहर कुल मंडण,
मिलियौ जहां तूं त्रिमेमण।
मुड़ियां तणौ हुवौ रण मांहे,
परियां गत जाणै प्रिसण॥२॥

(1) अ० सं० ला० वीकानेर, ग्रंथांक १३७

(2) अ० सं० ला०, वीकानेर, ग्रंथांक १३८

कवि के गीतों का साहित्यिक स्तर देखते हुए यह अनुमान लगाना अनुचित नहीं होगा कि उनकी रचनाओं से उनके समसामयिक कवि और परवर्ती कवि भी प्रभावित हुए होंगे।

(२) नांदण बारहठ :

१६वीं शताब्दी के गीतकारों में नाँदण बारहठ का प्रमुख स्थान है। यह जैसलमेर के नांदणयाई गांव का निवासी था। अकबरी दरबार का प्रसिद्ध कवि लक्खा बारहठ इन्हीं का पुत्र था। इनके जीवन-वृत्त के सम्बन्ध में विशेप जानकारी उपलब्ध नहीं होती। इनकी स्फुट काव्य-रचना प्राचीन वीरों तथा भक्ति आदि विपयो पर मिलती है। कुछ रचनाएं निम्न प्रकार हैं—

(१) चहुवाँण गोगे रा छंद
(२) भक्ति-सम्बन्धी कवित्त
(३) विविध गीत

अद्यावधि इस कवि की उपरोक्त रचनाएं अज्ञात ही थीं। साहित्य संस्थान, उदयपुर के हस्तलिखित संग्रह में ये रचनाएं विद्यमान हैं। उनके उपलब्ध गीतों की सूची निम्न प्रकार है—

(१) गीत परवत राँदा रौ
(२) गीत पंचायण चहुँवाण साँगावत रौ
(३) गीत राठौड़ बाहड़मेरा अखा हींगोला रौ
(४) गीत रावत भीमा रौ

इनकी भाषा उच्च-स्तर की एवं भावानुकूल है। वैण-सगाई का निर्वाह सर्वत्र देखने को मिलता है। उदाहरणार्थ एक गीत प्रस्तुत है, जिसमें अखा हींगोला के भाले का रूपक सर्प के साथ बाँधा गया है—

तें ध्रवियौ घणां भडां वलि ताकै,
रिणवट कूंपा रूप रखा।
वरलक करै फिरै वीरारसि,
अहि जिम थारौ कूंत अखा॥
हाथि हूवौ संग्राम तणीहर,
थियै कलह तौ प्रकट थियौ।
लागू वांभ प्रादियंतां लागै,
कमधज सावल पनंग कियौ॥
तीखै कियै वलै औड़ै तण,
असिमर हृथ वहतां अनड़।

अरियण उस हूवै दल् आगलि,
भालो भूअंग सरोस भड़ ।।
पूगी भाट तिता रिणि पीढ़े,
अणी चढ़ै ता अरि ।
जुधि हींगोल् तणा प्रगडो जगि,
वल्कि छडालो नागवरि ।।[1]

(३) ईसरदास वारहठ :

वीर-रस और भक्ति-रस पर समान रूप से अधिकार रखने वाले महाकवि ईसरदास का जन्म मारवाड़ के भाद्रेस गाँव में संवत् १५६५ में हुआ था । इनके जन्म-संवत् की पुष्टि करने वाला निम्नलिखित दोहा वड़ा प्रसिद्ध है—

पनरासौ पच्याणवै, जन्मो ईसरदास ।
चारण वरण चकोर में, इण दिन हुवो उजास ।।

चारण जाति में इस कवि का नाम वड़ी ही श्रद्धा के साथ लिया जाता है । इनके भक्ति-सम्बन्धी प्रसिद्ध ग्रंथ हरिरस का प्रचार सभी शाखाओं के चारणों में रहता आया है । राज्य-वर्ग और साधारण समाज में कवि की वड़ी मान्यता थी, यह बात उनके सम्बन्ध में प्रचलित अनेक प्रकार की किंवदंतियों से प्रकट हो जाती है ।[2] कवि की प्रमुख रचनाएं निम्न प्रकार हैं—

(१) हरिरस
(२) छोटा हरिरस
(३) गुण भागवत हंस
(४) गरुड़पुराण
(५) वाल्लीला
(६) निंदा-स्तुति
(७) देवियांण
(८) गुण आगम
(९) गुण वैराट
(१०) समापर्व
(११) रास कैलास
(१२) हालां—झालां रा कुण्डलिया तथा
(१३) दांण लीला ।

(1) साहित्य संस्थान, उदयपुर का संग्रह ।
(2) द्रष्टव्य—हालां-झालां रा कुण्डलिया : भूमिका : सं० मोतीलाल मेनारिया ।

साहित्यिक दृष्टि से हालां-झालां रा कुण्डलिया छोटी-सी रचना होते हुए भी डिंगल की वीररसात्मक काव्य कृतियों में सर्व-श्रेष्ठ मानी जाती है। काव्य-कला की दृष्टि से इनके द्वारा रचे गए स्फुट गीत भी साधारण महत्त्व के नहीं हैं। उनके कुछ उपलब्ध गीतों के नाम इस प्रकार हैं—

(१) गीत सरवहिया वीजा दूदावत रा (तीन गीत)[1]
(२) गीत करण वीजावत रा (२ गीत)[2]
(३) गीत जाम रावल लाखावत रा (३ गीत)[3]
(४) गीत जाड़ेजा जसा हरधमलौत रा[4]
(५) गीत झाला रायसिंघ मानसिंघौत रा (३ गीत)[5]
(६) गीत गंगाजी रौ[6]
(७) गीत रावत सांवतसिंघोत रौ[7]
(८) गीत लाखा धमलौत रौ[8]
(९) गीत राव लाखण रा (६ गीत)[9]
(१०) गीत रड़मल बणहल रौ[10]
(११) गीत साहिब जाड़ेचा रौ[11]

ईसरदास उन गीत रचयिताओं में से हैं, जो अपने भावों को विद्वत्तापूर्ण ढंग से प्रकट करते हुए भी व्यर्थ के शब्द-जंजाल तथा पाण्डित्य-प्रदर्शन से दूर रहे हैं। ईसरदास का रचना काल १६वीं शताब्दी का प्रथम चरण है। इस समय में पुरानी पश्चिमी-राजस्थानी से आधुनिक राजस्थानी ने अपना स्वतंत्र रूप निर्माण कर लिया था। अतः भाषा के अध्ययन की दृष्टि से उनकी स्फुट गीत-रचनाएं बड़ा महत्त्व रखती हैं। ईसरदास मुख्यतया भक्तकवि हैं, इसलिए उन्होंने अपनी वीर

---

(1) राजस्थानी वीरगीत : नरोत्तमदास स्वामी, पृ० ४९-५०
(2) वही, पृ० ५१
(3) अ० सं० ला०, वीकानेर, ग्रंथांक १३७
(4) राजस्थानी वीरगीत : नरोत्तमदास स्वामी, पृ० ५८
(5) अ० सं० ला०, वीकानेर, ग्रंथांक १३७
(6) पिंगल सिरोमणी (परम्परा, भाग १३), पृ० १६३
(7) अ० सं० ला०, वीकानेर, ग्रंथांक १३७
(8) वही।
(9) वही।
(10) वही।
(11) वही।

रसात्मक रचनाओं में किसी प्रकार के अर्थ-लाभ का व्यावहारिक लगाव न रखते हुए सर्वथा स्वतंत्र और सच्ची अभिव्यक्ति प्रदान की है। उदाहरण के लिए एक गीत की कुछ पंक्तियां द्रष्टव्य हैं—

नक्र तोह निवाण निबल दाय नावै,
सदा वसे तटि जिके समंद।
मन वीजै ठाकुरै न मानै,
रावल ओलगिये राजिंद॥
मेट्यो जैह घणी भाद्रेसर,
चक्रवत अवर चढ़ै नह चीत।
वास विलास मलैतर वासो,
परिमल वीजै करै न प्रीत॥
सेवग ताहरा लखा समोभ्रम,
अधिपति वीजा थया अकूप।
रइ किम करै अवर नदि रावल,
रैवा नदी तणा गज रूप॥
कवि तो राता घमल कलोधर,
भावठि भंजण लील भुवाल।
लुहवै सरै वसंता लाजै,
माणसरोवर तणा मुगाल॥

(४) दुरसा आढ़ा :

दुरसा आढ़ागोत्र के चारण मेहाजी के पुत्र थे। मेहाजी ने निर्धनता के कारण सन्यास ले लिया था इसलिए बगड़ी के ठाकुर प्रतापसिंह ने इन्हें पाल-पोस कर बड़ा किया तथा शिक्षा-दीक्षा दी।[1] इनके जन्म-संवत् व जन्म-स्थान के बारे में विद्वानों में मतभेद है। डा० मोतीलाल मेनारिया[2] व श्री सीताराम लालस[3] के अनुसार उनका जन्म सं० १५९२ में हुआ था। श्री शंकरदान जेठी भाई देथा उनका जन्म सं० १५९५ तथा स्वर्गवास सं० १७०८ मानते हैं।[4] जन्म-स्थान के बारे में श्री सीताराम लालस[5] का मत है कि वे जोधपुर राज्य के अन्तर्गत धूंधला गांव में

(1) राजस्थानी सबद कोस भूमिका, पृ० १३६
(2) राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ० १७८
(3) राजस्थानी सबद कोस भूमिका, पृ० १३६
(4) राजस्थानी भाषा और साहित्य : डा० हीरालाल माहेश्वरी, पृ० १३९
(5) राजस्थानी सबद कोस भूमिका, पृ० १३६

जन्मे थे। शंकरदान[1] उनका जन्म-स्थान जैतारण मानते हैं क्योंकि उनके कुछ वंशजों का भी यही मत है, परन्तु उनके जन्म-संवत् व स्थान के बारे में निश्चित मत का निर्णय करना पुष्ट प्रमाणों के अभाव में बड़ा कठिन है।

दुरसा आढ़ा ने अपनी काव्य-चातुरी और व्यवहार-कुशलता के कारण अनेक राजाओं से सम्मान प्राप्त किया था। दयालदास की ख्यात[2] में लिखा है कि बीकानेर के राजा रायसिंह ने इन्हें चार गाँव, करोड़-पसाव व एक हाथी प्रदान किया था। बादशाह अकबर तथा सिरोही के राव सुरतान देवड़ा से भी इन्हें करोड़-पसाव मिला था।[3] उदयपुर के राणा अमरसिंह से भी जागीर प्राप्त होने का जिक्र प्राचीन ग्रंथों में मिलता है।[4] ये अपने समय के प्रसिद्ध व्यक्ति थे और इनकी पहुँच अकबर के दरबार तक थी, जिसके सम्बन्ध में राजस्थान में कुछ प्रवाद आज भी प्रचलित हैं।

दुरसा आढ़ा ने कोई महत्वपूर्ण प्रबन्ध रचना नहीं की, परन्तु स्फुट रचनाओं के बल पर ही उन्होंने इतना सम्मान और साहित्य-जगत में बहुत बड़ी ख्याति अर्जित की थी। अपने समसामयिक कवियों में राठौड़ पृथ्वीराज के बाद उन्हीं का स्थान है। उनकी रचनाएं निम्न प्रकार है—

(१) किरतार बावनी[5]
(२) राव श्री सुरतांण रा कवित्त[6]
(३) झूलणा राव मेघा रा[7]
(४) दूहा सोलंकी वीरमदेजी रा[8]
(५) झूलणा राव अमरसिंघ गजसिंघोत रा[9]
(६) झूलणा राजा मानसिंघजी रा[10]
(७) स्फुट गीत व दोहे

---

(1) राजस्थानी भाषा और साहित्य : डा० हीरालाल माहेश्वरी, पृ० १३६
(2) दयालदास की ख्यात : भाग २, पृ० १३७
(3) राजस्थांनी सबद कोस : भूमिका, पृ० १३७
(4) साहित्य संस्थान उदयपुर में डा० ओझा का स्फुट संग्रह।
(5) मरुवाणी, जयपुर में प्रकाशित।
(6) साहित्य संस्थान, उदयपुर का संग्रह।
(7) एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता, ग्रंथांक सी० २३–२२
(8) वही।
(9) सौभाग्यसिंह शेखावत भगवतपुरा का संग्रह।
(10) शोधपत्रिका, उदयपुर, सितम्बर १९६०

(८) श्री अज्जाजी मूचर मोरी नी गजगत[1]
(९) विरुद छिहत्तरी[2]

उपरोक्त रचनाओं में से 'अज्जाजी नी गजगत' नामक लघु रचना को कुछ विद्वान संदिग्ध मानते हैं।[3] 'विरुद छिहत्तरी' इनकी सबसे प्रसिद्ध रचना है। इसकी प्रामाणिकता के बारे में आज तक किसी विद्वान ने कोई शंका प्रस्तुत नहीं की, परन्तु इस कृति के सम्बन्ध में भी कुछ विचारणीय बातें अवश्य हैं। इस कृति में कुल ७६ दोहे हैं। जोधपुर, बीकानेर, उदयपुर एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता आदि संग्रहालयों में ८–१० दोहों (जोकि राठौड़ पृथ्वीराज के दोहों से मिलते जुलते हैं) के अतिरिक्त इस कृति की पूरी प्रतिलिपि कहीं पर भी प्राप्य नहीं है। इस कृति का प्रकाशन पहले-पहल बच्छराज सिंघवी (जोधपुर) ने करवाया था। उन्होंने भी किसी हस्तलिखित प्रति का पुष्ट प्रमाण नहीं दिया। दूसरा संशय इस कृति में प्रयुक्त कुछ शब्दों से भी होता है, क्योंकि उन्होंने जिन राजाओं से सम्मान प्राप्त किया था, उन्हें श्वान व कूकर आदि शब्दों से सम्बोधित[4] कैसे कर सकते थे? अकबर से उन्हें सम्मान मिला था और उसकी प्रशंसा में उन्होंने बड़ा ही अतिशयोक्ति पूर्ण गीत भी कहा था![5] इस कृति में 'अघ-अवतार',[6] तुरकड़ा[7] आदि अत्यन्त हीन शब्दों का प्रयोग उसके लिए किया है, जो युक्ति संगत नहीं लगता। कटु भाषा के प्रयोग के सम्बन्ध में यदि यह भी समझ लिया जाय कि शायद बाद में जाकर किसी कारण से वे अकबर से रुष्ट हो गए हों और इस प्रकार के शब्द भी उसके लिए काम में ले लिए हों, परन्तु अभी तक ऐसी ख्याति-प्राप्त रचना की पूर्ण प्रतिलिपि का न मिलना तथा प्राचीन ग्रंथों में उसका उल्लेख तक न होना, कुछ ऐसी बातें हैं, जो इस कृति की मौलिकता के सम्बन्ध में संदेह करने को विवश करती हैं। हमारा विवेच्य-विषय यहाँ मुख्यतया उनकी गीत-रचनाएं ही हैं, इसलिए इस प्रश्न पर विस्तार के साथ विचार करना यहाँ वांछनीय नहीं है, परन्तु डिंगल के विद्वानों को इस ओर प्रवृत होना चाहिए।

---

(1) साहित्य संस्थान, उदयपुर का संग्रह।
(2) महाराणा-यश-प्रकाश : भूरसिंह शेखावत।
(3) राजस्थानी भाषा और साहित्य : माहेश्वरी पृ० १४५
(4) रोके अकबर राह लै हिन्दू कूकर लखां।
(5) डिंगल गीत : रावत सारस्वत, चंडीदान सांदू, पृ० ७१–७२
(6) अकबर अघ अवतार, पुन अवतार प्रतापसीं।
(7) अरे अकबरियाह, तेज तुहालो तुरकड़ा।
नम नम नीसरियाह, राण बिना सह राजवी॥

दुरसा आढ़ा की दीर्घ आयु को देखते हुए उनकी गीत-रचना पुष्कल परिमाण में होनी चाहिए। जो भी गीत हमें उपलब्ध हो सके हैं, उनकी सूची निम्न प्रकार है—

(१) गीत राजा रायसिंघ कल्याणमलौत रा (४ गीत)[1]
(२) गीत राव सुरतांण देवड़ा रा (५ गीत)[2]
(३) गीत राणा अमरसिंघ प्रतापसिंघौत रा (३ गीत)[3]
(४) गीत राजा सूरसिंघ उदैसिंघौत रा (३ गीत)[4]
(५) गीत गोपाल्दास चांपावत मांडणौत रा (२ गीत)[5]
(६) गीत पातसाह अकबरसाहजी रौ[6]
(७) गीत राव अमरसिंघ राठौड़ रौ[7]
(८) गीत वल्लू चांपावत रौ[8]
(९) गीत पृथ्वीराज राठौड़ रौ[9]
(१०) गीत कल्ला रायमलौत रा (४ गीत)[10]
(११) गीत हरीरांम मारू रौ[11]
(१२) गीत पत्ता उरजनौत रौ[12]
(१३) गीत हाथीसिंघ गोपाल्दासोत रौ[13]
(१४) गीत ईसरदास राठौड़ नींबावत रौ[14]

---

(1) गीत मंजरी : सं० नरोत्तमदास स्वामी, पृ० ३३–३४, ३५–३६
(2) राजस्थानी शोध संस्थान, जोधपुर का संग्रह।
(3) साहित्य संस्थान, उदयपुर संग्रह।
(4) वही।
(5) रा० शो० सं०, जोधपुर का संग्रह।
(6) डिंगल गीत : सं० रावत सारस्वत, चडीदान सांदू, पृ० ७१
(7) रा० शो० सं० जोधपुर का संग्रह।
(8) वही।
(9) द्रष्टव्य–क्रिसन रुकमणी री वेलि : ठाकुर व पारीक, भूमिका।
(10) राठौड़ कल्ला रायमलौत : सं० पं० रामदीन पाराशर, पृ० २४–२८
(11) देवकरण इन्दोकली का संग्रह।
(12) वही।
(13) रा० शो० सं० जोधपुर का संग्रह।
(14) वही।

(१५) गीत नाराइण भूतं रौ[1]
(१६) गीत मांनसिंघ अखैराजोत रौ[2]
(१७) गीत अचलदास जैतमालोत रौ[3]
(१८) गीत गोपालदास रौ[4]
(१९) गीत राव सगतसिंघ रौ[5]
(२०) गीत राव रतन रौ[6]
(२१) गीत राव भोज रौ[7]
(२२) गीत जगरूप जगतसिंघोत रौ[8]
(२३) गीत वैरसल रौ[9]
(२४) गीत वींजै दैवड़े रौ[10]
(२५) गीत वीरमदे सोलंकी रौ[11]
(२६) गीत सांगा सोलंकी रौ[12]
(२७) गीत देवीदास सोलंकी रौ[13]

दुरसा आढ़ा के गीतों का मुख्य विषय दातारों, वीरों और जूझारों की कीर्ति-गाथा है। उनके गीतों में ओज के साथ-साथ विद्वत्ता भी प्रकट होती है। इस दृष्टि से एक गीत की कुछ पंक्तियां दर्शनीय हैं—

सवदी लग कोड़ त्रजाद रायसिंघ, गहवंत रैणायर वड-गात।
ऊपर लहर सवाई अपतै, छिलतै छातरिया अनछात॥
कोध जिको तैं दीध कलावत, अहो मोज लहर अनमंध।

(1) अ० सं० ला०, वीकानेर ग्रंथांक १३७
(2) वही।
(3) वही।
(4) वही।
(5) वही।
(6) वही।
(7) वही।
(8) वही।
(9) वही।
(10) वही।
(11) वही।
(12) वही।
(13) वही।

जस उर धकै आवतां जातां, बूड अनेरा मुकट-बंध ।।
सब लाखां ऊपर नव सहस, लाख पचीसूं दीध हिलोल़ ।
खित पुड़ घणा गडोथल़ खावें, बूडै छातविया जस बोल़ ।।[1]

इनके वीर-रसात्मक गीतों में पात्रों के उदात्त चरित्र को चित्रित करने वाली भव्य और सशक्त शैली देखने को मिलती है । उनका शब्द-चयन भी बड़ा ही उपयुक्त और भाषा पर पूर्ण अधिकार को प्रकट करने वाला है । वैण सगाई के निर्वाह में भी वे बड़े निपुण हैं । कल्ला रायमलौत पर उनका एक गीत प्रस्तुत है—

हैवे सार न सार न सार हिंदुओं, फिरमर साख संसार कहै ।
पिंड पांच मुख अने पखरियो, राव कलौ ने गिरद रहै ।।
साहै साह नकूं समजतियां, जोवै वाट करेवा जंग ।
जूह विडार अनेवय जूसण, गोरंभ अने अभनिमो गंग ।।
चित्रां हरवा हुवो विकोहर, धाय मिल़ै तो मानै धात ।
परठे वल़ै सार में पाखर, भनिमो रायमल दुरंग भरात ।।[2]

स्फुट गीत रचना करने वालों में दुरसा आढ़ा ऐसे कवि हैं, जिन्होंने परम्परा गत विषयों को अपनाते हुए भी काव्य-चमत्कार के द्वारा डिंगल गीत-साहित्य को महिमामय बनाया है ।

(५) चतरा मोतीसर—

मोतीसर जाति के कवियों में चतरा बहुत बड़ा कवि माना गया है । इसका गोत्र बालण था और यह अजमेर–मेरवाड़ा के सावर ठिकाने का निवासी था । वह जोधपुर के महाराजा गजसिंह (सं० १६५२–१६६५) और टोडा के राजा भीमसिंह शीशोदिया के समकालीन माना गया है ।[3] इसकी कुछ रचनाएँ प्रसिद्ध वीर राठौड़ दुर्गादास पर भी मिलती हैं, जिससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि यह जोधपुर के महाराजा जसवंतसिंह की मृत्यु के बाद तक जीवित रहा हो । इस कवि के सम्बन्ध में एक जनश्रुति बहुत प्रसिद्ध है—टोडा के भीमसिंह शीशोदिया और जोधपुर के महाराजा गजसिंह के बीच हाजीपुर पट्टन में युद्ध हुआ था, जिसमें भीमसिंह ने बड़ी बहादुरी से लड़कर वीरगति प्राप्त की और गजसिंह के पैर उखाड़ दिये । चतरा ने अपने एक गीत में राजा भीमसिंह के पराक्रम और गजसिंह व मिर्जा राजा जयसिंह को विचलित कर देने का वर्णन किया है । कहते हैं कि महाराजा गजसिंह के कानों में जब यह बात पहुँची तो वे कवि पर बड़े क्रुद्ध हुए । चतरा उनकी अप्रसन्नता

(1) दयालदास री ख्यात : भाग २, पृ० १२७
(2) राव कल्लाजी रायमलोत : पं० रामदीन पाराशर, पृ० २४
(3) डिंगल गीत : रावत सारस्वत, चंडीदान सांदू, परिशिष्ट, पृ० ७–८

को जानते हुए भी उनके दरबार में उपस्थित हुआ। गजसिंह ने उसे देखते ही अपनी तलवार निकाली, तब उसी समय चतरा ने उनकी तलवार की प्रशंसा में गीत कहा। राजा गजसिंह ने एक के बाद एक करके चौदह शस्त्र निकाले, परन्तु एक भी शस्त्र वे कवि पर नहीं चला सके, क्योंकि उसने उसी समय प्रत्येक शस्त्र से सम्बन्धित गीत राजा को कह सुनाया। गजसिंह उसकी काव्य-प्रतिभा से बड़े प्रसन्न हुए और उसे दण्डित करने की अपेक्षा सम्मान के साथ पुरस्कृत किया। इस घटना को यदि सत्य माना जाय तो चतरा मोतीसर की असाधारण काव्य-प्रतिभा और निर्भीकता का परिचय हमें मिलता है।[1]

कवि ने स्फुट दोहा, गीत, छंद आदि के माध्यम से अच्छे परिमाण में काव्य-रचना की है, परन्तु उसकी प्रतिभा गीतों में ही अधिक मुखर हुई है। प्रसिद्ध गीतों की सूची निम्न प्रकार है—

(१) गीत राजा भीम सीसोदिया रौ[2]
(२) गीत राजा गजसिंघ राठौड़ रा (१४ गीत)[3]
(३) गीत गोरधन कूंपावत रौ[4]
(४) गीत दुरगादास सोनंग राठौड़ रा[5]
(५) गीत राजा जसवंतसिंघ रौ[6]
(६) गीत राजा जैसिंघ कछवाहा रौ[7]
(७) गीत राणा करणसिंघ रौ[8]
(८) गीत महाराज गोकुलदास सांवर रौ[9]
(९) गीत दुरगादास राठौड़ रौ[10]

---

(1) बं० हि० मं०, कलकत्ता का कवि-परिचय संग्रह।
(2) साहित्य संस्थान, उदयपुर का संग्रह।
(3) डिंगल गीत : सं० रावत सारस्वत, चंडीदान सांदू, पृ० ३०—३१ व सीताराम लालस का संग्रह।
(4) बं० हि० मं० कलकत्ता का संग्रह।
(5) सीताराम लालस, जोधपुर का संग्रह।
(6) श्री देवकरण बारहठ इन्दोकली का संग्रह।
(7) श्री सौभाग्यसिंह शेखावत, भगवतपुरा का संग्रह।
(8) साहित्य संस्थान, उदयपुर का संग्रह।
(9) वही।
(10) रा० शो० सं०, जोधपुर का संग्रह।

कवि के युद्ध-वर्णन सम्बन्धी गीतों में अर्थ-गौरव के साथ-साथ चित्रोपमता और शैलीगत चमत्कार अनेक स्थलों पर देखने को मिलता है। उदाहरणार्थ राजा भीम शीशोदिया की प्रशंसा में कहा गया प्रसिद्ध गीत द्रष्टव्य है—

असा रूप सूं भीम खग वाहतो आवियौ,
विखम भारथ तणी वणी वेला।
भांज दल़ सैद जैंसिंघ सूं मेलिया,
भांज जैंसिघ गर्जसिघ भेला।।
खत्रीवट प्रकट अमरेस रौ खेलतो,
ठेलतो घाट रहिया न कूंडाह।
भार तुरकां दिया सार कमधां मही,
भार कूरमां दिया कमधां माह।।
असंख दल़ दिल्ली रा भुजां उद्धाड़तो,
सबल़ भड़ भीम दोठौ सवांहो।
घेज वच वारहो मंडोवर घेंचियो,
मंडोवर घेच आमेर मांही।।
भीम सांगाहरौ विखंड करतो भड़ां,
अवरत सावरत खग ऊझालौं।
पछै असुरे जणै घणौं माथो पटक,
कटक मर मारियौ नीठ कालौ।।

गर्जसिंह के प्रतिपक्षी भीमसिंह की जहाँ उन्होंने उपरोक्त गीत में ऐसी प्रशसा की है, वहाँ वड़ी चतुराई के साथ दूसरे गीत में गर्जसिंह के युद्ध में डटे रहने और अचूक प्रहार आदि का वर्णन कर उनकी वीरोचित मर्यादा का भी पालन कर दिया है। गीत की कुछ पंक्तियाँ दर्शनीय हैं—

हिलौल़ै कल़ह समदर गहर हेकठा,
दरसियौ अहाडौ हल़ाहल़ दाव।
जटाधर जेम गर्जसिंघ राजा जुड़ै,
घूंट कीधौ जिसूं हेक हिज घाव।।
अखाड़ै महोदध डोहता अेकठा,
पेख अन सुपह विमुहा पधारे।
भीम सरखौ कहर मालहर भयंकर।
जहर गाजी संकर तुही जारे।।

(६) महेशदास राव—

संवत् १७१५ वि० में शाहजहां के पुत्रों के बीच उज्जैन के पास धरमत नामक स्थान पर जो युद्ध हुआ था, उस घटना को लेकर जगा खिड़िया, कान्हा कविया, पूरणदास महियारिया आदि ने उच्चकोटि की काव्य-रचना की है। इसी घटना को लेकर महेशदास राव ने 'विन्हे रासो' का सर्जन किया, जिसकी सूचना पहली वार शोध-पत्रिका में श्री सौभाग्यसिंह शेखावत ने दी है।[1] इस ग्रंथ के प्रकाश में आने से कवि की कुछ अन्य रचनाएं और गीतों आदि का भी पता चला है, परन्तु कवि की जीवनी के सम्वन्ध में विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं होती। कवि द्वारा रचित 'गौड़ा री वंशावली' में कवि के निवासस्थान का जिक्र अवश्य किया है, परन्तु प्रति त्रुटित होने से गांव का नाम पढ़ा नहीं जाता। वंशावली की सम्वन्धित पंक्तियां इस प्रकार हैं—

गांव खो..........न कर जे तीरथ राज।
मेडलगढ़ अजमेरि की की क्रम............॥[2]

वंशावली में तीर्थराज तथा पुष्कर शब्द अनेक स्थानों पर आया है, जिससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि कवि पुष्कर के आसपास किसी गौड़ सरदार का आश्रित रहा होगा।

उदयपुर के कविराज मोहनसिंह के संग्रह की एक प्रति में इनकी अनेक रचनाएं लिपिवद्ध हैं। ग्रंथ का लिपिकाल सं० १८७६ है। कवि की रचनाओं के नाम ये हैं—

(१) विन्है रासो
(२) राव अमरसिंघ को साको
(३) राणा राजसिंघ री गुण रूपक
(४) गौड़ां की वंशावली
(५) रामचरित वेलि
(६) राजा जैसिंघ कछवाहा रा कवित्त

कवि ने उपरोक्त दो ग्रंथों—विन्हैं रासो व अमरसिंघ री साको में गीतों का भी प्रयोग किया है। इनके अतिरिक्त कुछ स्वतंत्र गीत भी इसी पोथी में दिए है। गीतों के नाम इस प्रकार हैं—

---

(1) शोध-पत्रिका, उदयपुर, वर्ष १३, अंक १

(2) गौड़ां की वंशावलि, छंद संख्या ६; राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान द्वारा यह कृति श्री शेखावत के सम्पादकत्त्व में अब प्रकाशित हो चुकी है।

वीरता और चारित्रिक विशेषता को कवि ने अद्भुत काव्य चमत्कार के द्वारा एक गीत में प्रकट किया है। यथा—

कांमणियां तणै तांणिये कसणे,
मोहे दूजां तणां मन।
राजड़ रांण रहे रलियामण,
कसियां जरवाळ कसण॥
राजी हुवै अवर राव राजा,
हाव-भाव जोय कांकण हार।
चित उदमाद करै; चीतोड़ौ,
सलहां भड़ां कियां सिणगार॥
नार तणौ काजळ नीलाम्बर,
हरक करै अन राव हियै।
मूंछां वळ घाळै मेवाड़ौ,
काळो घड़ां सिंगार किये॥
ऊभौ दिल्ली सीस ऊपांवे,
जगा तणौ कसियां जरद।
महलां तणां मरद अन महपत,
मेवाड़ौ मरदां मरद॥

(६) रुघा मुहता :

रुघा मुहता जोधपुर के निकट बालरवा गाँव का निवासी था।[1] राठौड़ दुर्गादास पर इसने सुंदर गीत लिखे हैं, जिससे वह दुर्गादास का समकालीन ठहरता है। कवि के वंशज आज भी बालरवा गाँव में हैं। उनका कहना है कि रुघा बालरवा के ठाकुर रामसिंह का कामदार था। उक्त ठाकुर पर लिखा हुआ एक गीत भी उपलब्ध होता है। जिससे उपरोक्त तथ्य की पुष्टि होती है। कवि के सम्बन्ध मे अनेक किंवदंतियां भी प्रचलित हैं। कहते हैं कि उसे मजाक करना बहुत पसंद था, इसलिए वह प्रायः हंसी-मजाक के लिए भी कुछ छंद बना दिया करता था। एक बार उसने शेरगढ़ परगने के किसी राजपूत सरदार से मजाक करली, जिस पर उस सरदार ने क्रुद्ध होकर उसका सिर काट डाला।

रुघा मुहता ने माधोदास के रामरासो के समान रुघरासो नामक ग्रंथ रामकथा को लेकर लिखा है जिसकी हस्तलिखित प्रति श्री अगरचंद नाहटा के संग्रह में है। इस कृति के अतिरिक्त उसके स्फुट गीत और दोहे भी उपलब्ध होते हैं। कवि

(1) डिंगळ गीत : रावत सारस्वत, चंडीदान सांदू, परिशिष्ट, पृ० ६

के अधिकांश गीत लुप्त हो चुके हैं, परन्तु यहाँ के चारण समाज में गीतकार के नाते वह आज भी स्मरण किया जाता है। कवि के कुछ गीत इस प्रकार हैं—

(१) गीत महाराजा जसवंतसिंघ रा (२ गीत)[1]
(२) गीत दुर्गादास आसकरणोत रा (२ गीत)[2]
(३) गीत सोनंग चाँपावत रौ[3]
(४) गीत राव अमरसिंघ रौ[4]
(५) गीत राव रायसिंघ रौ[5]
(६) गीत भाऊ कुंपावत रौ[6]
(७) गीत मुकंददास खीची रौ[7]
(८) गीत मोहकमसिंघ मेड़तिया रौ[8]
(९) गीत महामायाजी रौ[9]
(१०) गीत रामावतार रौ[10]
(११) गीत हणुमानजी रौ[11]
(१२) गीत ठाकर गोरधनसिंघ चंडावल रौ[12]
(१३) गीत रामसिंघ भाटी रौ[13]
(१४) गीत हाडी राणी रौ[14]
(१५) गीत सतियाँ री तारीफ रौ[15]

---

(1) रा० शो० सं०, जोधपुर का संग्रह।
(2) मरु-भारती, पिलानी, वर्ष ४, अंक २
(3) ठा० सा० पोकरण का संग्रह।
(4) बं० हि० मं०, कलकत्ता का संग्रह।
(5) देवकरण बारहठ, इंदोकली का संग्रह।
(6) ठा० सा० भीमसिंह गारासणी रौ संग्रह।
(7) पुस्तक प्रकाश, उम्मेद भवन, जोधपुर।
(8) वही।
(9) रा० शो० सं०, जोधपुर का संग्रह।
(10) वही।
(11) वही।
(12) सीताराम लालस, जोधपुर का संग्रह।
(13) वही।
(14) रा० शो० सं०, जोधपुर का संग्रह।
(15) वही।

कवि ने अपने गीतों को अद्भुत कल्पना और नवीन उक्तियों से सजाकर रखा है, जिससे अभिव्यक्ति में चमत्कार सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है। उदाहरण के लिए बालरवा ठाकुर रामसिंह के आतंक पर कहा हुआ कवि का एक गीत द्रष्टव्य है—

रण भागा साह तणा दल़ रांमां,
जुग राखण अखियात जुई।
असुरे घास मुखे आचरियौं,
हरणी ताय दूबल़ी हुई॥
औरंग तणै सुरंग आहुटियौ,
जादम तें करतां रण जंग।
मुंह में तुल़ झालिया मेछां,
काढ़ै ताय सांकड़ै कुरंग॥
वड़ वाहां देतौ मुकनावत,
× × × ×।
चामरियाल़ घास मुख चीनौ,
मरगण डाल़ न लाधै माल़॥
मुख मुंहगौ करतै भुयंतर,
वनचर ऊसर थया विरंग।
निस दिन अरज करै निसासै,
सस आगल़ ऊभौ सारंग॥

स्वामि-भक्ति और देश-भक्ति इसके गीतों में स्थान-स्थान पर परिलक्षित होती है। दुर्गादास और सोनंग चाँपावत पर कहे हुए एक गीत की कुछ पंक्तियाँ इस दृष्टि से दर्शनीय हैं—

दुरगादास सोनंग वेहूं भींच ग्रहियां दुजड़,
कथन पतासाह सों अेम कहावै।
जसा रा डीकरा विना जोधपुर,
खत्री अन चढ़ै सौ खता खावै॥

(१०) कविराजा करणीदान कविया :

कविया करणीदान डिंगल के उन ख्याति प्राप्त कवियों में हैं जिन्होंने अपनी काव्य-प्रतिभा के बल पर राजस्थान के राजाओं से बहुत बड़ा सम्मान पाया था। इनका जन्म मेवाड़ के सूलवाड़ा ग्राम में कविया विजयराम के यहाँ हुआ था। कवि के जन्म संवत् के सम्बन्ध में अद्यावधि कोई पुष्ट प्रमाण प्राप्त नहीं हुआ है, परन्तु वह उदयपुर के महाराणा संग्रामसिंह द्वितीय और जोधपुर के महाराजा अभयसिंह का

समकालीन था ।[1] इन्होंने अभयसिंह के राज्याश्रय में रहकर ही अपनी काव्य-रचना की थी । यह कवि होने के साथ-साथ कुशल राजनीतिज्ञ, ज्योतिष, संगीत आदि विद्याओं का ज्ञाता तथा संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और डिंगल भाषा का अच्छा जानकार था । कर्नल जेम्स टाड ने अपने इतिहास में उनके प्रसिद्ध ग्रंथ सूरजप्रकास का उल्लेख करते हुए उसकी बड़ी प्रशंसा की है ।[2] महाराजा अभयसिंह ने जब अहमदाबाद के युद्ध में सरबुलंदखां को परास्त किया था, तब उस युद्ध में वीरभाण रतनू तथा बख्ता खिड़िया आदि कवियों के साथ करणीदान भी था ।[3] अन्य कवियों की तरह करणीदान ने भी सूरज प्रकास नामक ग्रंथ में उक्त युद्ध का आंखों देखा वर्णन किया है । इस ग्रंथ का सारांश 'विड़द सिणगार' के रूप में कवि ने महाराजा को सुनाया था, जिससे प्रसन्न होकर उन्होंने उसे बड़ी इज्जत देकर पुरस्कृत किया था तथा कवि को हाथी पर चढ़ाकर स्वयं अश्वारूढ़ हो, उसे सम्मान देने के लिए कुछ दूर तक जलेब में चले थे । इस घटना पर कहा हुआ एक दूहा बड़ा प्रसिद्ध है—

अस चढ़ियो राजा अभो, करि चाढ़ै कविराज ।
पहर हैक जलेब में, मोहर हलै महाराज ।।

कवि की मुख्य रचनाएं निम्न प्रकार हैं—

(१) सूरज प्रकास
(२) विड़द सिणगार
(३) अभय भूषण
(४) जती रासो
(५) महाराणा संग्रामसिंघ रा कवित्त
(६) स्फुट गीत आदि

विभिन्न घटनाओं और प्रसिद्ध पात्रों को लेकर कवि ने अनेक गीत रचे हैं । कुछ गीत निम्न प्रकार हैं—

(१) गीत महाराजा अभयसिंघ रा (३ गीत)[4]
(२) गीत राजाधिराज बखतसिंघ नागौर रा (२ गीत)[5]

---

(1) वीर विनोद : भाग २, पृ० ६६६
(2) राजस्थान—इतिहास : बलदेव प्रसाद मिश्र, भाग २, पृ० १७०
(3) द्रष्टव्य—सूरजप्रकास : (भूमिका) सं० सीताराम लाल़स ।
(4) सीताराम लाल़स, जोधपुर का संग्रह ।
(5) रा० शो० सं०, जोधपुर का संग्रह ।

(१) उजीण भारथ री चढ़ाई री झमाल
(२) भाखड़ी अरजनजी गौड़ री
(३) राव अमरसिंघ री झमाल
(४) गीत अरजनजी गौड़ रा (२ गीत)
(५) गीत दयालदास झाला रौ
(६) गीत राजा रामसिंघ कछवाहा रौ।

कवि के गीतों के अध्ययन से पता चलता है कि वह डिंगल भाषा और काव्य-परम्परा का अच्छा जानकार था। कवि ने अपने गीतों में युद्ध-वर्णन तथा वीर भावनाओं का चित्रण बड़ा ही सुंदर किया है। युद्ध में अर्जुन गौड़ के शौर्य और शत्रु-संहार का चित्र कुछ पंक्तियों में देखिए—

अरजन उरड़ै जी क औरंग आहुड़ै।
वजै न बाहुड़ै जी क घाव त्रिवधि घड़ै॥
वैबाह लाल दुझाल बजियौ वीर तो अजमाल।
पाड़तौ सैदां पठाणां ढ़ाहतौ गज ढाल॥
मुख चढ़ै जैता माथा पड़ै दूठ कूठ दुड़ाल।
घेंधीग माता जेम घसियौ साहिजादां साल॥
जुध वीरभद्र वीर जैहो घसै सांम्हो धार।
जूंझार रिण वाहतौ झटकां संपेखि सरदार॥
असवार असि परिहार आवध मैंगलां सिर भार।
तिणवार अछर अपार राती हींडुलै गलिहार॥

अमरसिंह पर लिखित झमाल में भाषा की सरलता और मुहावरों का सफल प्रयोग भी दर्शनीय है। एक छंद लीजिए—

खान गोसल वलै असपति उस औदक्क।
अमर काल मुख आवतां घावां भड़ां चमक्क॥
चावां भड़ां चमक्क वड़ालां ऊमरां।
तडि हिंदू तुरकांण खलभल खूमरां॥
थाहै कौण अथाह जहर कुण जारवै।
मूढ़ै चढ़ै अमरेस मुणै कुण मारवै॥

कवि की रचनाएं देखने से पता चलता है कि वह अपने समय का प्रसिद्ध कवि रहा होगा। राव जाति के विरले कवियों ने ही इस कोटि की रचना डिंगल भाषा में की है।

(७) धर्मवर्द्धन :

जैन कवियों में धर्मवर्द्धन का प्रमुख स्थान है। उन्होंने चारण-शैली में भी अच्छी कविता की है। श्री अगरचन्द नाहटा ने इनका जन्म सं० १७०० तथा अवसान सं० १७८३ में माना है।[1] इन्होंने १३ वर्ष की अवस्था में जिन-रत्न-सूरि से दीक्षा ग्रहण की थी। इनके जन्म का नाम धरमसी था, दीक्षा लेने पर ये धर्मवर्द्धन कहलाए। जब ये वयोवृद्ध तथा ज्ञानवृद्ध हुए तब इन्हें महामहोपाध्याय पद से भी विभूषित किया गया।

जैन धर्मोपदेश तथा स्तुतिकाव्यों के अतिरिक्त इन्होंने प्रकृति, नीति, वीरता आदि अनेक विषयों पर कविता की है। श्री अगरचन्द नाहटा ने धर्मवर्द्धन ग्रंथावली में इनकी ३०० के लगभग लघु रचनाओं का संकलन किया है। इनके डिंगल गीतों की संख्या बड़ी नहीं है, परन्तु जो भी गीत-रचना मिलती है उसकी अपनी विशेषताएं हैं। उनके कुछ गीत इस प्रकार हैं—

(१) गीत सूर्य स्तुति री
(२) गीत वर्षा वर्णन रा (२ गीत)
(३) गीत शत्रुंजय महिमा रौ
(४) गीत श्री महावीर जन्म री
(५) गीत धरती री महिमा रौ
(६) गीत राष्ट्रवीर शिवाजी री
(७) गीत जिन-दत्त-सूरि रा (४ गीत)
(८) गीत महावीर जन्म रौ
(९) गीत सरस्वतीजी री वंदणा रौ
(१०) गीत परोपकार री
(११) गीत परमेसरजी री
(१२) गीत सीत उष्ण वर्षा काल् रौ
(१३) गीत पुन्न पाप फल् री सुपंखरौ
(१४) गीत सर्व संघ आसीर्वाद रौ
(१५) गीत ढूंढ़ियां री
(१६) गीत महाराजा जसवंतसिंघ जोधपुर रौ, मरसियौ
(१७) गीत गौड़ी पार्श्व री, सुपंखरौ
(१८) गीत श्री जिनचंद सूरि री

(1) धर्मवर्द्धन ग्रंथावली : अगरचंद नाहटा, पृ० २७-३५

गीतों की सूची से ही स्पष्ट है कि उनके गीतों में पर्याप्त विषय-वैविध्य विद्यमान है। उन्होंने अपने गीतों में प्रकृति के विभिन्न रूपों का सुन्दर चित्रण किया है। रूपक के माध्यम से वर्षा का एक चित्रण देखिए—

सबल़ मेंगल़ वादल़ तणा साज करि,
गुहिर असमांण नीसाण गाजै।
जंग जोरै करण काल़ रिपु जीपवा,
आज कटकी करी इंद राजै॥

कवि के गीतों में कहीं कहीं विरोधी भाव भी प्रकट हुए हैं। एक ओर वह शिवाजी मरहठा को दिल्ली जीत लेने का आशीर्वाद देता है,[1] दूसरी ओर धरती के लिए झगड़ने वालों का उपहास भी करता है—

भोगवी किते भूप किता भोगवसी,
मांहरी मांहरी करइ मरै।
एंठी तजी पातल़ां ऊपरि,
कूकर मिलि मिल़ कल़ह करै।

कवि की भाषा सरल, प्रसादगुण-युक्त और प्रवाहमयी है। कहीं कहीं भाषा में ध्वन्यात्मकता का भी सफल प्रयोग हुआ है।

तड़ा तड़ि तोब करि गयण तड़कै तड़ित,
महाझड़ झड़ि करि झूझ मंड्यो।
कड़ा किड़ि कोघ करि काल़ कटका कीयो,
खिण करे बल़ खल़ सबल़ खंड्यो॥

गीत छंद की विशेषताओं ने जैन कवियों को भी अपनी ओर आकृष्ट किया था, धर्मवर्द्धन की ये रचनाएं इसका प्रमाण हैं।

(८) जोगीदास कुंवारिया—

ये देवलिया प्रतापगढ़ नरेश महारावत हरीसिंह के आश्रित कवि थे।[2] इनके पूर्वज मेवाड़ के कुंवारिया ग्राम के निवासी थे, इसलिए ये कुंवारिया चारण कहलाए। कवि ने सं० १७२१ में 'हरि पिंगल प्रबन्ध' सम्पूर्ण किया था।[3] राजसमंद झील

---

(1) हिंदुवो राव आइ दिल्ली लेसी हिवै।

(2) राजस्थांनी सबद कोस, भाग १, भूमिका, पृ० १५३

(3) संवत सत्तर इकवीस में, कातिक सुम पख चंद।
हरि पिंगल हरियंद जस, वणियो खीर समंद॥ (सरस्वती पुस्तक भण्डार, उदयपुर में सुरक्षित प्रति से)

का निर्माण उदयपुर के महाराणा राजसिंह ने संवत् १७३२ में पूर्ण करवाया।[1] इस बांध की प्रशंसा में भी जोगीदास ने गीत-रचना की है। इसलिए कवि का रचना-काल इस समय के बीच सहज ही स्वीकार किया जा सकता है।

इनकी प्रसिद्ध रचना हरि पिंगल प्रबन्ध ही है, जो पिंगल एवं डिंगल के छंदों के लक्षणों को उदाहरण सहित समझाने के लिए लिखी गई है। पूरा ग्रंथ तीन भागों में विभक्त है, जिसके अन्तिम भाग में कवि ने अपने आश्रयदाता हरीसिंह के वंश-गौरव, पराक्रम, उदारता आदि को प्रकट किया है।

गीत-रचना भी साहित्यिक दृष्टि से बड़ी मूल्यवान् है। कुछ गीत इस प्रकार हैं—

(१) गीत महारावत हरीसिंघ प्रतापगढ़ रा (४ गीत)[2]
(२) गीत कंवरजी प्रतापसिंघ रा (२ गीत)[3]
(३) गीत कंवरजी मोहकमसिंघ रौ[4]
(४) गीत महाराणा राजसिंघ रा राजसमंद झील रा भाव रा[5]
(५) गीत राणा राजसिंघ रा कमठाणा रा (२ गीत)[6]
(६) गीत राणा राजसी री मरदानगी रौ[7]
(७) गीत सिवा मरेठा रौ[8]
(८) गीत सलूम्बर रावतजी रौ[9]
(९) गीत वेदला रा चुहाण रौ[10]

उनके गीतों से उनकी विद्वत्ता और डिंगल भाषा पर अधिकार का परिचय तो मिलता ही है, परन्तु उनकी विशिष्ट अलंकार योजना उन्हें उच्चकोटि के गीतकारों की श्रेणी में भी ले जाती है। उदाहरणार्थ उदयपुर के महाराणा राजसिंह की

(1) वीर विनोद : कविराजा श्यामलदास, भाग २, पृ० ४९९
(2) साहित्य संस्थान, उदयपुर का संग्रह।
(3) कविराव मोहनसिंह, उदयपुर का संग्रह।
(4) वही।
(5) सीताराम लालस, जोधपुर का संग्रह।
(6) वही।
(7) रा० शो० सं०, जोधपुर का संग्रह।
(8) श्री सौभाग्यसिंह शेखावत, भगतपुरा का संग्रह।
(9) साहित्य संस्थान, उदयपुर का संग्रह।
(10) कविराव मोहनसिंह, उदयपुर का संग्रह।

(३) गीत अहमदाबाद रै झगड़ै रौ[1]
(४) गीत महाराजा बहादरसिघजी रौ[2]
(५) गीत महाराणा संग्रामसिंघजी रा (३ गीत)[3]
(६) गीत रामचद्रजी रौ, त्रकुट बंध[4]
(७) गीत ठाकुर सेरसिघ मेड़तिया रो[5]
(८) गीत ठाकुर प्रतापसिंघ खैरवा रौ[6]
(९) गीत लखधीर इंदा री तारीफ रौ[7]
(१०) गीत कुसलसिघ आउवा ठाकुर रौ[8]

कवि के गीत सामान्यतया परिपाटीवद्ध वीर गीत है। अलकार, शैली व अभिव्यक्ति आदि में डिगल की काव्य परम्परा का प्रौड ज्ञान परिलक्षित होता है। उसके गीतों से इतिहास की अनेक महत्त्वपूर्ण घटनाओं पर भी प्रकाश पड़ता हे। उदाहरणार्थ एक गीत यहाँ प्रस्तुत करना ही पर्याप्त होगा—

जांणै जगायौ साबूत सोर खिजाये भुजंग जांणै,
सूर धाये वातलायौ गजां गैर सींघ।
रत्रां बोल चढ़ायौ परा रां देतौ खगां रोलै,
सत्रां गोल ऊपरां ऊ आयौ सैर सींघ॥
मारे अणी हरौलां वेहारै गो इला तमासां,
हकारे वकारै भूप धारै जत्रहास।
वाधियौ चाट कै तुरी बगतेस खासावाड़े,
बगतेस खासावाड़े झाटकै वांणांस॥
खाल श्रोण छुटै मतवालां ज्यूं तमाला खावै,
कदमां अंत्राला झलै वरमाला कध।
आजकां डांणाक वाला चाल देख भांण आखै,
वरदालां झोका झोक काला खांगी-वध॥

---

(1) रा० शो० स०, जोधपुर का संग्रह।
(2) वं० हि० मं०, कलकत्ता का सग्रह।
(3) साहित्य संस्थान, उदयपुर का सग्रह।
(4) सूरज प्रकास : भाग १, पृ० १३७
(5) मरू-भारती : पिलानी, वर्ष २, अंक १
(6) सीताराम लालस, जोधपुर का सग्रह।
(7) वही।
(8) रा० शो० स०, जोधपुर का सग्रह।

वीर खेत मेड़तै मछरां फूल धारां वढ़ै,
चढ़ै रथां अछरां अमीरां नेह चाह ।
जमी आभ धू सुमेर पांणी तै पवन जेते,
सदांणी रहाणी कीत जेते सेरसाह ।।

(११) हुकमीचंद खिड़िया -

डिंगल गीत रचयिताओं में हुकमीचंद खिड़िया प्रथम पंक्ति में आसीन होते हे। उनके जीवन वृत्त के सम्बन्ध में विस्तृत जानकारी तो उपलब्ध नहीं होती, परन्तु अन्त.साक्ष्य के आधार पर यह प्रतीत होता है कि वे जयपुर राज्य के बनेड़िया ग्राम के निवासी थे।[1] जोधपुर के महाराजा विजयसिंह, शाहपुरा का राजा उम्मेदसिंह तथा जयपुर के महाराजा माधोसिंह व प्रतापसिंह के समकालीन थे और उनसे इनका अच्छा सम्पर्क भी था। महाराजा माधोसिंह ही ने इन्हें बनेड़िया ग्राम प्रदान किया था। हुकमीचंद के पूर्वजों का मूल स्थान खराड़ी ग्राम मारवाड़ में है, जिससे ये खिड़िया शाखा के चारण कहलाए। राजनैतिक क्षेत्र में इनका अधिक प्रभाव होने के कारण इन्होंने खराड़ी ग्राम में भी आधा हिस्सा लेना चाहा, परन्तु महाराजा विजयसिंह ने उस गाँव में इनको हिस्सा देने में अपनी असमर्थता प्रकट की और उसके बदले में कोई दूसरा गाँव देना अंगीकार किया परन्तु हुकमीचंद ने यह स्वीकार नहीं किया। इनकी रचनाओं के आधार पर इनका रचनाकाल सं० १८१५ से सं० १८६० तक का माना जा सकता है।

इन्होंने अपने अनेक समकालीन वीरों पर गीत लिखे हैं। मुक्तक काव्य-रचना करने वाले डिंगल के प्रसिद्ध कवियों में प्रत्येक का किसी न किसी छंद पर विशेष अधिकार रहा है। हुकमीचंद का गीत पर सर्वाधिक अधिकार माना गया है—

सरूप कवित्त नरहरि छप्पय, सूरजमल के छंद ।
गहरी झमक गणेस री, रूपक हुकमीचंद ।।

इन्होंने गीत रचना अच्छी संख्या में की होगी इसमें कोई संदेह नहीं परन्तु विभिन्न संग्रहालयों में अभी तक ६० के करीब उनके गीत देखने में आए हैं। वृहत् राजस्थानी कोश के कर्त्ता सीतारांम लालस ने जयपुर के महाराजा सवाई प्रतापसिंह पर इनके द्वारा रचित एक बड़े झमाल गीत का उल्लेख किया है,[2] परन्तु वास्तव में वह झमाल न होकर डिंगल का नीसाणी छंद है। इनके कुछ उपलब्ध गीतों की सूची निम्न प्रकार हे—

---

(1) राजस्थानी साहित्य का मध्यकाल : (परम्परा) भाग १५–१६, पृ० ३२८
(2) राजस्थांनी सबद कोस, भाग १, भूमिका, पृ० १६३

(१) गीत तुलजा देवी रौ[1]
(२) गीत गजराज री पुकार रौ[2]
(३) गीत राजा माधवसिंघ कछवाहा रा (३ गीत)[3]
(४) गीत राजा उमेदसिंघ साहपुरा रा (३ गीत)[4]
(५) गीत राजा विजेसिंघ जोधपुर रौ[5]
(६) गीत राजा भोपालसिंघ खेतड़ी रा (२ गीत)[6]
(७) गीत राजा उमेदसिंघ हाडा रा (२ गीत)[7]
(८) गीत राव प्रतापसिंघ नरूका अलवर रौ[8]
(९) गीत राजा राजसिंघ किशनगढ़ रा (२ गीत)[9]
(१०) गीत राजा वहादरसिंघ किशनगढ़ रौ[10]
(११) गीत राजा प्रतापसिंघ कछवाहा जयपुर रा (२ गीत)[11]
(१२) गीत राव देवीसिंघ शेखावत सीकर रौ[12]
(१३) गीत रावल् प्रथीसिंघ वांसवाड़ा रौ[13]
(१४) गीत राजराणा राघोदास झाला देलवाडा रौ[14]
(१५) गीव राव बाघसिंघ राठौड़ मसूदा रौ[15]
(१६) गीत राणा भीमसिंघ रौ[16]

---

(1) वं० हि० मं०, कलकत्ता का संग्रह
(2) साहित्य संस्थान, उदयपुर का संग्रह।
(3) रा० शो० सं०, जोधपुर का संग्रह।
(4) सीताराम लाल्स, जोधपुर का संग्रह।
(5) वही।
(6) श्री सौभाग्यसिंह शेखावत भगतपुरा का सग्रह।
(7) बिरला सेन्ट्रल लाइब्रेरी का हस्तलिखित संग्रह।
(8) साहित्य संस्थान, उदयपुर का संग्रह।
(9) वं० हि० मं०, कलकत्ता का संग्रह।
(10) वही।
(11) श्री सौभाग्यसिंह शेखावत भगतपुरा का संग्रह।
(12) वही।
(13) रा० शो० सं०, जोधपुर का संग्रह
(14) सीताराम लाल्स, जोधपुर का संग्रह।
(15) साहित्य संस्थान, उदयपुर का संग्रह।
(16) रा० शो० सं०, जौधपुर का संग्रह।

(१७) गीत लाछां सती री[1]

(१८) गीत आपा मरेठा री[2]

हुकमीचंद के गीतों के विषय—युद्ध-वर्णन, अस्त्र-शस्त्र-वर्णन, हाथी-घोड़ों का वर्णन, आखेट वर्णन, दुर्ग-वर्णन और दानशीलता का वर्णन आदि है । युद्ध की बड़ी ही सुन्दर अभिव्यक्ति इन्होंने दी है । युद्ध-वर्णन सम्बन्धी गीतों में शाहपुरा के उम्मेदसिंह सीसोदिया और महादाजी पटेल की सेना के बीच होने वाले युद्ध पर लिखा गया सुपंखरा गीत बहुत प्रसिद्ध है । यह गीत २३ छंदों में पूर्ण हुआ है । इस गीत के भाव-सौन्दर्य और भाषा ने परवर्ती कवियों को भी अत्यधिक प्रभावित किया था, जिसके फलस्वरूप उसे कण्ठस्थ करने की परम्परा-सी पड़ गई थी । आधुनिक काल के कुछ वयोवृद्ध कवियों के मुख से भी यह पूरा गीत सुनने को मिल जाता है । उपयुक्त शब्द-चयन और उदात्त शैली की दृष्टि से गीत का एक द्वाला दर्शनीय है—

कोडी डढ़ां फुणी झाट मोड़तो कमट्ठां कंध,
पव्वे राट सिंघ बीछोड़तो भोम पाट ।
थंभ जंगां बोम बांट जोड़तो रातंगा थाट,
तोड़तो मातंगां घाट रोड़तो त्रांबाट ।।[3]

इनके गीतों में ओज गुण के साथ-साथ भाषा में अद्भुत वेग दृष्टिगोचर होता है । शाही सेनापति मुर्तजा अली को राव देवीसिंह शेखावत ने किस प्रकार रण भूमि में दिल्ली की ओर भगा दिया उसका चित्र देखिए—

लोहा खासावाड़े वाढ़ तुरंता दिल्ली नूं लेग्गो,
चौड़े धाड़े मुरतजावली नूं धके चाढ़ ।। [4]

हुकमीचंद की भाषा प्रायः क्लिष्ट और वीर रस के ही उपयुक्त है, परन्तु कहीं कहीं इसमें बड़ा ही सहज प्रवाह दृष्टिगोचर होता है । राजा भोपालसिंह शेखावत खेतड़ी की वदान्यता को प्रकट करने वाली कुछ पँक्तियां देखिए—

सिधां अपारां नागेसहारां पारावारां खीर सिंध,
धरि तेज धारां धाम उधारां धूपाल् ।

---

(1) बं० हि० मं०, कलकत्ता का संग्रह ।

(2) वही ।

(3) राजस्थानी सबद कोस: सीताराम लालस, भूमिका, पृ० 165

(4) कविवर हुकमीचंद खिड़िया: (परम्परा भाग 15-16) सौभाग्यसिंह शेखावत पृ० 33

तारकी आकास चारां मोड़ ज्यूं राकेस तारां,
भूगोल दातारां सारां सेखांणी भूपाल ।। [1]

अपने भावों को प्रकट करने के लिए इन्होंने शब्दालंकारो में वेरण-सगाई के अतिरिक्त यमक, अनुप्रास आदि का खूब प्रयोग किया है तथा अर्थालंकारों में रूपक, उपमार-उत्प्रेक्षा, अत्युवित आदि को अधिक अपनाया है। सादृश्य मूलक अलंकारों का प्रयोग करते समय कहीं-कहीं बड़ी मौलिक सूझ-बूझ का प्रदर्शन भी किया है। महाराजा माधोसिंह (जयपुर) के शिकार खेलने का वर्णन करते समय कवि ने बन्दूक के छूटने का वर्णन उत्प्रेक्षा अलंकार को प्रयोग में लेकर किया है वह यहाँ दृष्टव्य है—

छोह साथे श्री हथां हूं बंदूकां कड़क्के छूटै,
ज्वाला रा पहाड़ां माथै तूटै बीज जांण । [2]

गीत रचने की कला में हुकमीचंद अत्यधिक निपुण थे। उनकी इस प्रतिभा का लोहा सूर्यमल्ल मिश्रण जैसे डिंगल के महा कवि ने भी माना था। उनकी यह उक्ति बड़ी प्रसिद्ध है—

'गीत गीत हुक्मीचंद कह्यो, हमे गीतड़ी गावो।'

उनके गीतों की अनेकानेक विशेषताओं के कारण ही अनेक राजाओं ने उन्हें सम्मान दिया था और उनके गीतों का प्रचार भी उस समय में खूब हुआ था जिसको प्रमाणित करने वाली एक उक्ति आज भी प्रचलित है—

'हुकमीचंद रा हालिया, गुरड़ बचां जिम गीत।

उनके गीतों से परवर्ती कवि बहुत ही प्रभावित रहे हैं। महादान मेहडू जैसे प्रसिद्ध कवि भी हुक्मीचंद की शैली का अनुकरण किए विना नहीं रह सके—

हुक्मीचंद तणां कहिया थका, फेरवां गीत महादान फेंके।

निसंदेह डिंगल गीत रचना को हुकमीचंद की महान् देन है।

(12) **ओपा आढ़ा—**

ओपा आढ़ा के पिता का नाम बखता आढ़ा था। इनका निवास स्थान सिरोही राज्य का पेशवा गांव वताया जाता है। जोधपुर के महाराजा विजयसिंह तथा मानसिंह के दरवार में इनका आना-जाना था। श्री सीतारांम लालस ने इनका रचनाकाल सं० १८४० से १८७५ माना है। [3]

---

(1) श्री सौभाग्यसिंह शेखावत भगतपुरा का संग्रह।
(2) साहित्य संस्थान, उदयपुर का संग्रह।
(3) राजस्थानी सबद-कोस : सीतारांम लालस, भूमिका, पृ० १६३

इनकी गीत-रचना बड़ी संख्या में तो उपलब्ध नहीं होती, पर जो भी गीत उपलब्ध होते हैं, वे बड़े सरल और सहज अभिव्यक्ति से परिपूर्ण हैं। उनकी अधिकांश रचनाएं भक्ति-विषयक हैं। कुछ गीत समसामयिक नायकों पर भी लिखे हैं। प्राप्त गीतों के नाम इस प्रकार हैं—

(१) गीत ठाकर भगवतसिंघ रोहिट रो [1]
(२) गीत गुड़ा राणा रे उपालंभ रो [2]
(३) गीत सिरोही रावजी रौ[3]
(४) गीत मरहठाँ री ताकत रौ[4]
(५) गीत सूंक री बुराई रौ[5]
(६) गीत राजा सिवसिंघ ईडर रौ[6]
(७) गीत महाराज विजैसिंघजी रौ[7]
(८) गीत ठाकुर मावोसिंघजी रौ[8]
(९) गीत भक्ति सम्बन्धी (११ गीत)[9]
(१०) गीत राघवदे चूंडावत रै दान रौ[10]

इनके भक्ति विषयक गीत न केवल साहित्यिक क्षेत्र में अपितु जनता में भी बड़े प्रिय रहे हैं। उनके गीतों की भाषा में सहजता और विचारों की स्पष्टता तथा भावों की सरलता आदि ऐसे गुण हैं, जो अन्य कवियों से इन्हें पृथक स्थान का अधिकारी बनाते हैं। ईश्वर के प्रति अनन्य निष्ठा और आत्म-समर्पण को अत्यन्त सहज रूप में व्यक्त करने वाला एक गीत यहाँ उद्धृत किया जा रहा है, जिससे कवि के कृतित्व का अनुमान लग सकेगा।

---

(1) सीताराम लालस, जोधपुर का संग्रह।
(2) बं० हि० मं०, कलकत्ता का संग्रह।
(3) बिरला सैन्ट्रल लाईब्रेरी, पिलानी का संग्रह।
(4) सीताराम लालस, जोधपुर का संग्रह।
(5) रा० प्रा० प्र०, जोधपुर का संग्रह।
(6) बिरला सैन्ट्रल लाइब्रेरी, पिलानी का संग्रह।
(7) पुस्तक प्रकाश, उम्मेद भवन, जोधपुर का संग्रह।
(8) वही।
(9) रा० शो० सं०, जोधपुर का संग्रह।
(10) डिंगल गीत : रावत सारस्वत चंडीदान सांदू, पृ० ६८–६६

पांतरियां वाट न पीरां पीहर,
आलंबन निरधारां आप ।
तूं तो मात न मायां तीकम,
बापौ तूं ही न न बापां बाप ।।
अलख तूं ही आलसियां उद्दम,
पालग तूं ही न पंखां पांख ।
तूं पग हाथ पांगलां टूंटां,
आंधां तूं परमेसर आंख ।।
परमेसर तूं त्रसियां पांणी,
संत भूखियां साग रसाल ।
गूंगां वच तूं ही गिरधारी,
बड़ै तूं ही है अकल विसाल ।।
व्रजवासी थाकां वीस्रामौ,
जल बूडां री तूं ही जिहाज ।
नी घरियां तू नारायण,
मांदां रौ औखद महाराज ।।[1]

(१३) **कविराजा बांकीदास आसिया :**

वांकीदास का जन्म संवत् १८३६ में मारवाड़ के भाँडियावास ग्राम में हुआ था ।[2] इनको शिक्षा दीक्षा देकर विद्वान बनाने का श्रेय रायपुर ठाकुर अर्जुनसिंह को है, जो स्वयं बड़े विद्या-प्रेमी थे । उनके इस ऋण का आभार कवि ने स्वयं स्वीकार किया है—

माली ग्रीखम मांह, पोख सजल द्रुम पालियौ ।
तिण रौ जस किम जाह, अत घण वूठां ही अजा ।।

महाराजा मानसिंह के गुरु आयसजी देवनाथजी की कृपा से ये महाराज के राज्य-कवि के पद पर पहुँचे और अपनी काव्य प्रतिभा के बल पर बहुत बड़ा सम्मान व धन आदि अर्जित किया । महाराजा मानसिंहजी के ये काव्य-गुरु भी थे । मानसिंहजी इनका बड़ा सम्मान करते थे । परन्तु क्रोध के आवेग में कुछ राजनैतिक कारणों से इन्हें दो बार देश निकाला भी दे दिया था । इस संबन्ध में एक कहावत आज भी प्रचलित है—

लाख पसाव तो एक दियौ ने देस निकाला दोय ।

---

(1) डिंगल गीत : रावत सारस्वत, चंडीदान सांदू, पृ० १२७
(2) राजस्थांनी सवद कोस, भूमिका, पृ० १६६

कहते हैं कि जब महाराजा मानसिंह को गद्दी से च्युत कर उनके लड़के छत्रसिंह को गद्दी पर बैठाया गया था तो उसमें बांकीदास का भी हाथ था। छत्रसिंह की मृत्यु के उपरान्त जब महाराजा मानसिंह पुनः गद्दी पर आसीन हुए तो षड्यंत्र में भाग लेने वाले सभी विरोधियों की उन्होंने खबर ली। ऐसी स्थिति में बांकीदास की हालत बड़ी नाजुक हो गयी थी। जब भाद्राजून ठाकुर ने बांकीदास को उपस्थित किया तो पहले तो महाराजा ने उन्हें अवसरवादी कह कर नाराजगी व्यक्त की, परन्तु चारण कवि होने के नाते उनका अपराध क्षमा कर दिया था। बांकीदास की मृत्यु पर महाराजा मानसिंह का कहा हुआ यह दोहा चारण-समाज में बहुत प्रचलित है।

विद्या कुल विख्यात, राज-काज हर रहस री।
बांका तो विन वात, किण आगल मन री कहां॥

श्री सीताराम लालस ने उनका[1] रचना-काल संवत् १८६० से सं० १८६० माना है। उन्होंने उनके ४१ ग्रंथ बताए हैं। इन रचनाओं के अतिरिक्त कवि ने अनेक स्फुट गीत दोहे आदि रचे हैं, जिनमें गीतों का सर्वाधिक महत्त्व है। उपलब्ध गीतों की सूची निम्न प्रकार है—

(१) गीत करनीजी रा (२ गीत)[2]
(२) गीत माताजी रा (२ गीत)[3]
(३) गीत देवनाथजी री[4]
(४) गीत महाराजा मानसिंघजी रा (६ गीत)[5]
(५) गीत खेजड़ले ठाकरां रा (३ गीत)[6]
(६) गीत भरतपुर रे राजा री[7]
(७) गीत चैनावणी री[8]

---

(1) राजस्थांनी सबद कोस, भूमिका, पृ० १६७
(2) रा० शो० सं०, जोधपुर का संग्रह।
(3) बांकीदास ग्रंथावली : भाग ३, पृ० १३५—१३६
(4) वही, पृ० ११४—११५
(5) रा० शो० सं०, जोधपुर का संग्रह।
(6) श्री खेजड़ले ठाकुर भैरोंसिंह के संग्रह की कापी।
(7) परम्परा (गोरा हटजा), जोधपुर, भाग २, पृ० ५८—५६
(8) वही, पृ० ५४—५६

(८) गीत भरतपुर रौ [1]
(९) गीत नींबावतां रै महंत रौ [2]
(१०) गीत पाबूजी धांधलौत रौ [3]
(११) गीत राव अमरसिंघ नागौर रौ [4]
(१२) गीत बलूजी चांपावत रौ [5]
(१३) गीत मूंजी रौ [6]
(१४) गीत किसनगढ़ रै राजा रौ [7]
(१५) गीत रावराजा लिछमणसिंघ सीकर रौ [8]
(१६) गीत खुमांणसिंघ चांपावत रौ [9]
(१७) गीत रायांनेर री चढ़ाई रौ [10]
(१८) गीत दुरगादास राठौड़ रौ [11]
(१९) गीत गोपालजी मेड़तिया रौ [12]
(२०) गीत नखसिख झमाल [13]
(२१) गीत राधा–किसणजी रा (५ गीत) [14]
(२२) गीत कजिया री बुराई रौ [15]
(२३) गीत वाणी रै संयम रौ [16]

---

(1) गोरा हटजा (परम्परा भाग २), पृ० १०७
(2) वही, पृ० ६३
(3) बं० हि० मं०, कलकत्ता का संग्रह।
(4) वही।
(5) वही।
(6) डिंगल गीत : सं० रावत सारस्वत, चंडीदान सांदू, पृ० ८५
(7) बं० हि० मं०, कलकत्ता का संग्रह।
(8) श्री सौभाग्यसिंह शेखावत भगतपुरा का संग्रह।
(9) रा० शो० सं०, जोधपुर का संग्रह।
(10) बांकीदास ग्रंथावली : सं० कविया और खारेड़, भाग ३
(11) वही, पृ० १४०
(12) वही, पृ० १४५
(13) वही, पृ० ३०–४२
(14) वही, पृ० ११६–१२६
(15) बांकीदास ग्रंथावली : सं० कविया और खारेड़, भाग ३, पृ० १०९–११०
(16) वही, पृ० १०३

(२४) गीत लाधा सोलंकी री[1]

(२५) गीत रस अलंकार दोसां री[2]

(२६) गीत ठा० सिवनाथसिंघजी कुचामन रा (२ गीत)[3]

उपरोक्त गीतों को उनकी विषय-वस्तु के अनुसार निम्नलिखित पांच भागों मे विभाजित किया जा सकता है—

(१) भक्ति सम्बन्धी गीत

(२) प्रशंसात्मक गीत

(३) उपालम्भ विषयक गीत

(४) उपदेशात्मक गीत और

(५) विविध

भक्ति विषयक गीतों में कवि ने अपनी इष्ट देवी की स्तुति की है तथा उसकी कृपा का गुणगान किया है। चारण लोग देवी के अनन्य भक्त और उपासक रहे है, यह पहले ही कहा जा चुका है। बांकीदास ने देवी की अतुलनीय शक्ति और सामर्थ्य का बखान बड़े ही सुंदर ढंग से किया है। उन्होंने बताया है कि बड़े-बड़े योद्धा गढ़ों की शरण लेते हे और गढ़ तेरी शरण में ही सुरक्षित रह पाते है—

गढ़वाला गढ़ ओले गाजै, मढ़ रै ओले गढां मजाद।

राधा और कृष्ण के प्रति उन्होने भक्ति-भावना, उनके रूप और अलौकिक प्रेम क्रीड़ाओं का सरस चित्रण करके प्रकट की है। इस प्रकार के गीतों में कृष्ण की लीलाओं और वैष्णव धर्म के प्रति कवि की आस्था प्रकट होती है। उदाहरणार्थ कुछ पंक्तियां दर्शनीय हे—

पथिक जाय मथुरा कहे जादवां पती नूं,
आपरा मिलण कुं वात उरली।
आय गोकुल मही लेर सुर अनोखां,
मयाकर सुणावो फेर मुरली॥
सुरभियां चरावौ संग लावो सखा,
चेल आवे कदम तणी चांही।
पोख हित वेल गावो चरित पेम रा,
मुरलिका सुणावो घोस मांहि॥

---

(1) बंकीदास ग्रंथावली भा० ३ भूमिका।

(2) वही, पृ० १४६-१५२

(3) रा. शो. सं. जोधपुर का संग्रह।

महाराजा मानसिंह की नाथों में अनन्य आस्था थी। अतः बांकीदासजी ने भी नाथजी का अभिवादन अपने गीतों में स्थान-स्थान पर किया है।

उनके प्रशंसात्मक गीत कुछ प्रसिद्ध वीरों और आदर्श पात्रों को लेकर लिखे गए हैं। आदर्श चरित्र की प्रशंसा उन्होंने मुक्त कंठ से की है। एक ओर पाबूजी राठौड़ जैसे प्रसिद्ध लोक देवता की कर्त्तव्यपरायणता उनके गीत का विषय बनी है तो दूसरी ओर लाधा सौलंकी जैसे साधारण राजपूत की उदारता तथा दानवीरता की श्लाघा उनके गीत में व्यक्त हुई है। अपने आश्रयदाता महाराजा मानसिंह की प्रशंसा में जहां उन्होंने अनेक गीत कहे हैं, वहां भरतपुर के शासक रणजीतसिंह के शौर्य और स्वतन्त्रता-प्रेम को व्यक्त करने में भी किसी प्रकार का संकोच नहीं किया है। उनके गीतों के उदाहरण अन्यत्र कई स्थलों पर दिये जा चुके हैं, इसलिए यहां यह बताना ही पर्याप्त होगा कि उनके गीत न केवल साहित्यिक दृष्टि से ही अपितु इतिहास की दृष्टि से भी बड़े महत्त्व के हैं, क्योंकि उनमें कई ऐतिहासिक तथ्य समाहित हैं।

उपालम्भ देना चारण कवियों का विशिष्ट गुण माना गया है। डिंगल काव्य इस प्रकार की विशुद्ध व्यंगपूर्ण कविताओं से अवश्य गौरवान्वित हुआ है। क्योंकि कवि-समाज तथा उसके आश्रयदाता वर्ग दोनों के ही आपसी घनिष्ट सबन्धों से उद्भूत सामाजिक सत्य की स्थापना उनके माध्यम से संभव हो सकी है। बांकीदास ने विशिष्ट घटना को लेकर कुछ उत्तम कोटि के गीत रचे हैं। अंग्रेजों के सामने समर्पण कर देने वाले शासकों की कर्तव्य-हीनता और कायरता पर बड़े ही तीखे शब्दों में व्यंग्य किया है। नींबावतों के महन्त द्वारा भरतपुर के शासकों को धोखा दिया जाना भी इनकी दृष्टि में देश-द्रोह से कम नहीं था।

वीर, शृंगार तथा भक्ति विषयक गीत-रचना तो डिंगल की प्राचीन परम्परा रही है, परन्तु बांकीदास ने कुछ उपदेशात्मक गीत कहकर गीत-काव्य की परम्परा को एक नया मोड़ दिया है। उन्होंने आपसी झगड़े, वाणी के असंयम तथा कायरता आदि को बहुत बुरा बताया है। इस प्रकार के गीतों में उनकी व्यावहारिक सूझ-बूझ और समाजसु-धार की अभिलाषा भी प्रकट होती है। आपसी झगड़ों की बुराई को व्यक्त करने वाली कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

नह पंचां जाय लाकड़ी नांखे, घणा जोर सज विया घरां।
चाडी करै कचैड़ी चढ़िया, नीर ऊतरै तुरत नरां॥

विणज विभौ हल हांसल विगड़ै,
कुवद कमाई जगत कहै।
झगड़ौ लागै जिकां झूपड़ां,

रगड़ो तलवां तणो रहे ।।
महलो कुसल विराणे मूंडे,
सूझ हमेस वांटणो सेस ।
कजिया रो कीजे मुंह कालो ।
कजिया में नित नवो कलेस ।।
राखै संप जिका धन राखै,
वांको दाखै सांच विध ।
न्याय नीमड़ै जितै नीमड़ै,
राज चढ़ै ज्यां तणो रिध ।।

इन प्रमुख विषयों के अतिरिक्त उन्होंने छोटे-बड़े अनेक विषयों पर रचनाए की हैं। उन्होंने गीत के माध्यम से रस तथा अलंकार जैसे गहन विषय पर भी अपने विचार प्रकट किए हैं।[1]

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि कवि के गीत केवल संख्या की दृष्टि से ही नहीं अपितु वर्णन-वैविध्य की दृष्टि से भी बड़े महत्त्वपूर्ण हैं। जहां तक उनके अभिव्यक्ति के पक्ष का प्रश्न है, वैणसगाई अलंकार के अतिरिक्त अनेक अलंकारों का सफल प्रयोग गीतों में हुआ है तथा कई गीतों में जथाओं का निर्वाह बड़ी निपुणता के साथ किया गया है। राधिका की नख-शिख झमाल में राधा का रूप-वर्णन करते समय कवि ने उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक आदि अनेक सादृश्य-मूलक अलंकारों के प्रयोग में अपनी मौलिक सूझ-बूझ से भी काम लिया है। झमाल का एक छंद दर्शनीय है—

जिण विध कवि मुख सूं जिलै, वधती व्है वरणांह ।
जुवती तन हूंता जिलह, इण विध आभरणांह ।।
इण विध आभरणांह, मनूं मुकता मिली ।
छक तरुणाई छोल, पयोनिधी ज्यूं छिली ।।
सो थिर राखण काज, क भूषण साजिया ।
जड़िया रच्छया जंत्र, मनोज मुनी दिया ।।

कवि अनेक भाषाओं का ज्ञाता और काव्य-शास्त्र का विद्वान् था, जिससे गीतों में अनेक स्थलों पर पाण्डित्य-पूर्ण अभिव्यक्ति होने पर भी उसे सर्वथा दुरूह और प्रयत्न-साध्य नहीं कहा जा सकता। इनकी भाषा में सर्वत्र प्रवाह और विषयानुकूल शब्द-चयन पाया जाता है। वीर-रसात्मक गीतों में जहां ओज पूर्ण शैली अपनाई गई है, वहां भक्ति और शृंगारिक गीतों में सर्वथा माधुर्य दृष्टिगोचर होता है। उपदेश-विषयक गीतों में व्यावहारिक शब्दों और मुहावरों का सफल प्रयोग तथा सरल

(1) द्रष्टव्य—बांकीदास ग्रंथावली, भाग ३, पृ० १४६–१५२

शब्दावली कवि की बहुत बड़ी विशेषता है। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि बांकीदास न केवल डिंगल के श्रेष्ठ कवि और विद्वान ही थे अपितु अपने समय के गीतकारों में उनके गीतों का स्वर, सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है।

(१४) महाराजा मानसिंह जोधपुर :

मानसिंह का जन्म वि० सं० १८३९ में हुआ था।[1] बचपन से ही उन्हें राजनैतिक षड्यंत्रों का सामना करना पड़ा था, क्योंकि उनके भाई भीमसिंह ने जोधपुर की गद्दी को प्राप्त करने के लिए अपने कुटुम्बियों को मरवा डाला था। कुछ जागीरदारों की सहायता से मानसिंहजी जालौर के दुर्ग में सुरक्षित रह सके। करीब ग्यारह वर्ष तक जालौर के घेरे में रहकर मानसिंह ने अपने अनिश्चित भविष्य का समय बड़े साहस के साथ निकाला था। उनके साथ अनेक चारण कवि भी थे,[2] जिससे डिंगल में उच्चकोटि की काव्य-रचना करने का अभ्यास इन्हें हो गया था। सं० १८६० में जोधपुर के महाराजा भीमसिंह की अकस्मात मृत्यु हो जाने से इन्हें राजगद्दी मिली।[3]

राजसिंहासन प्राप्त करने के पश्चात् भी उनका जीवन संघर्षमय ही रहा। क्योंकि तात्कालिक राजनैतिक परिस्थितियां राजस्थान के शासकों के अनुकूल नहीं थीं। एक ओर मरहठों के आतंक से राजस्थान के शासक भय-त्रस्त और आतंकित थे तो दूसरी ओर आपसी मनो-मालिन्य के कारण उद्विग्नता छाई हुई थी। अंग्रेजों की बढ़ती हुई शक्ति ने इन्हें और भी आशंकित कर दिया। महाराजा मानसिंह इन सभी परिस्थितियों में एक सफल राजनीतिज्ञ का अभिनय करते हुए चालीस वर्ष तक जोधपुर का राज्य करते रहे। उनके जीवन की अनेक घटनाएं उनके व्यक्तित्व के विभिन्न पक्षों को विरोधी रंगों से चित्रित कर हमारे सामने प्रस्तुत करती हैं। विस्तार-भय से उनकी जीवनी पर अधिक प्रकाश डालना यहाँ संभव नहीं है, अतः यह कहना ही पर्याप्त होगा कि मानसिंह असाधारण प्रतिभा के धनी थे। उनमें कवि का हृदय, साधक की साधना, राजनीतिज्ञ की चतुराई और शासक की सतर्कता तथा विद्वान् की दूरदर्शिता हमें दृष्टिगोचर होती है। कर्नल टाड ने इनसे मिलने के उपरान्त इनके व्यक्तित्व पर जो टिप्पणी की है, उसका उल्लेख यहां करना अप्रासंगिक न होगा—"The biography of Maun Singh would afford a remarkable picture of human patience, fortitude, and con-

---

(1) मारवाड़ का इतिहास : विश्वेश्वर नाथ रेउ, पृ० ४०१

(2) 'वाल्ही लाज तजे के वहियां सतरह.तद रहिया सुकव।'

(3) वीर विनोद : श्यामलदास, दूसरा भाग, पृ० ८६०

stancy, never surpassed in any age or country .... From a protracted conversation of several hours, at which only a single confidential personal attendant of the Prince was present, I received the most convincing proofs of his intelligence, and minute knowledge of the past history, not of his own country but of India in general. He was remarkably well read; and at this and other visits he afforded me much instruction...... . We discoursed freely on past history in which he was well read as also in Persian, and his own native dialects. He presented me with no less than six metrical chronicles of his house; of two, each containing seven thousand stanzas, I made a rough translation."[1]

मानसिंह कवि और काव्य-मर्मज्ञ होने के साथ-साथ संगीत, चित्रकला, कामशास्त्र आदि अनेक कलाओं के जानकार थे। नाथ सम्प्रदाय में अनन्य श्रद्धा होने के कारण उनकी काव्य-कृतियों में उच्चकोटि की दार्शनिकता भी पूरी लक्षित होती है। इन्होंने डिंगल व पिंगल दोनों भाषाओं में साहित्यिक रचनाएं की हैं। अधुनातन खोज के अनुसार उनकी कृतियों की सूची इस प्रकार है –

(१) श्री जालंधरनाथजी री चरित ग्रंथ (२) जलंधर चन्द्रोदय, (३) प्रस्ताविक कवित्त इगर्नीसा, (४) रामविलास, (५) सिद्ध सम्प्रदाय, (६) सिद्ध मुक्ताफल ग्रंथ, (७) तेज मंजरी, (८) प्रश्नोत्तर, (९) पंचावली, (१०) सिद्ध गंगा, (११) उद्यान वर्णन, (१२) दूहा प्रस्ताविक, (१३) आराम रोशनी ग्रंथ, (१४) शृंगार सिरोमणी नाम वार्तामय ग्रंथ. (१५) कवित्त परमारथरा, कवित्त छप्पय, (१६) कवित्त इकतीसो, (१७) कवित्त शृंगार इकतीसो, (१८) शृंगार बरवै, (१९) श्री सरूपां रा दूहा, (२०) कवित्त श्री सरूपां रा, (२१) दूहा परमारथ, (२२) दूहा बृजभाषा में, (२३) दूहा संजोग शृंगार–देस भाषा में, (२४) दूहा भाषा हिन्दुस्तानी पंजाबी में, (२५) षड् ऋतुवर्णन, (२६) नाथ चरित, (२७) शृंगार के पद, (२८) वियोग शृंगार रा दूहा–देश भाषा में, (२९) चौरासी पदार्थ नामावली, (३०) मानपण्डित संवाद, (३१) मानदसा कथन, (३२) अनुभवमंजरी, (३३) नाथ वर्णन, (३४) नाथ कीर्तन (नाथ पद संग्रह), (३५) सेवा सार, (३६) नाथजी री आरती, (३७) नाथ स्तोत्र, (३८) नाथजी रा दूहा, (३९) राग रत्नाकर, (४०) श्री मानसिंह के ख्याल टप्पे, (४१) रास चन्द्रिका, (४२) जलंधरनाथजी री निसांणी. (४३) जलंधरनाथजी री अष्टक, (४४) रतना हमीर री

(1) Annals of Marwar : James Tod.

वारता, (४५) भक्ति और अध्यात्म के पद, (४६) नाथ चरित्र प्रबन्ध छन्द संस्कृत, (४७) मण्डूकोपनिषद् की विद्वद् मनोरंजनी टीका, (४८) एकार्थी नाम माला, (४९) होरी हिलोर (५०) वाटिका विहार ।[1]

गीत-रचना करने में महाराजा मानसिंह बड़े निपुण थे। उन्हें चौरासी प्रकार के गीतों का पूर्ण ज्ञान था, जैसा कि उनके समसामयिक कवि के एक गीत के पद्यांश से प्रकट होता है—

चंदन ललत-मुगट चौरासी,
सह कमंध झर गीत सराह।
धरम नेम विजपाल दिया धन,
समझण गुण दूजा गजसाह ।।[2]

उन्होंने अनेक विषयों को लेकर सुन्दर गीत-रचना की है। कुछ गीतों के नाम नीचे दिए जा रहे हैं—

(१) गीत खेजड़ले ठाकुर सगतसिंघजी रौ[3]
(२) गीत सादूल सिंघजी साथीण रौ[4]
(३) गीत मोहकमसिंघ चांपावत रौ[5]
(४) गीत सवल़सिंघ जैतावत रौ[6]
(५) गीत चारणां री तारीफ रौ[7]
(६) गीत भैंरजी वणसूर रौ[8]
(७) गीत माधोसिंह चाँपावत रौ[9]
(८) गीत देवनाथजी रौ[10]
(९) गीत लाडूनाथजी रौ[11]

---

(1) रसीले राज रा गीत : (परम्परा भाग १८-१९), पृ० २५५-५६
(2) सीताराम लाल़स, जोधपुर का संग्रह ।
(3) ठाकुर भैरोसिंहजी खेजड़ला का संग्रह ।
(4) वही ।
(5) वही ।
(6) पुस्तक प्रकाश : उम्मेद भवन, जोधपुर ।
(7) देवकरण वारहठ, इन्दोकली, का सग्रह ।
(8) मरु-भारती, पिलानी, वर्ष ६, अंक ४
(9) वही ।
(10) पुस्तक प्रकाश : उम्मेद भवन, जोधपुर का संग्रह ।
(11) वही ।

(१०) गीत जलंधरनाथजी री[1]
(११) गीत महाराणा भीमसिंघजी री[2]
(१२) गीत सिणगार रस री[3]
(१३) गीत सूरवीर री[4]
(१४) गीत कायर री[5]
(१५) गीत भाटियां री तारीफ री[6]

महाराजा मानसिंह के गीतों का कलात्मक पक्ष तो सबल है ही, उनके गीतों में जीवन के प्रति दृष्टिकोण और व्यक्तिगत विशेपताए आदि भी सुन्दर रूप से व्यक्त हुई है। जीवन की विकट परिस्थितियों में से गुजरने पर भी परम्परागत मान्यताओं और राजस्थान की कुछ सांस्कृतिक विशेपताओं से उनका गहरा लगाव रहा हैं। आउवा ठाकुर माधोसिंह ने जालोर के घेरे के समय इनकी बड़ी मदद की थी, उनका आभार कवि ने बड़े ही मुक्त भाव से व्यवत किया है। गीत की कुछ पंक्तियां द्रष्टव्य हैं—

अही निज हाथ मो वांह जाणी जगत,
प्रकट कीरत चली समंद पाजा,
कहै आगोलगां येह आलम कथन,
रिड़मलां थापिया जिकै राजा ।।
ज्यां करां लखण रा अंटवै जोस रा,
प्रगट के वार ज्यां विरद पायो ।
जांणियो मूझ दिल जगत हव जांणसी,
आधियां पत्र जोवांण आयो ।।

उदयपुर के महाराणा भीमसिंह की पुत्री कृष्णाकुमारी के विवाह को लेकर जो वहुत वड़ा राजनैतिक वखेड़ा हुआ, वह इतिहास में प्रसिद्ध है। महाराजा मानसिंह उस पड्यंत्र के शिकार वने थे, अतः महाराणा भीमसिंह के साथ उनके सम्बन्ध अच्छे न होते हुए भी भीमसिंह की मृत्यु पर उनके वास्तविक गुणों की प्रशंसा करते हुए उन्होंने वड़ी भाव-विव्हल शैली में महाराणा को गीत के माध्यम से श्रद्धांजलि अर्पित

---

(1) पुस्तक प्रकाश : उम्मेद भवन, जोधपुर।
(2) वही।
(3) खेजड़ला ठाकुर भैरोंसिह का संग्रह।
(4) मरु भारती, पिलानी, वर्ष ६, अंक ४
(5) वही।
(6) ठाकुर भैरोंसिह खेजड़ला का संग्रह।

की थी। इससे मानसिंह की गुण-ग्राहकता, स्पष्ट-वादिता और शत्रु की सच्चा प्रशंसा करने की सांस्कृतिक मान्यता में अनन्य निष्ठा का हमें पता लगता है। गीत की कुछ पंक्तियां इस प्रकार हैं—

गुण में जण जण कंठ गवीजै,
निरमल ज्यूं निरभर में नीर।
जग मांभल् विसतार घणौ जस,
हुवौ अमावड़ दुवा हमीर।।
अरसी-सुत कीरत दिन ऊगै,
परसण घण जोजन पारंभ।
अेक खंड की हुवै अमावड़,
अन खंडां भावणौ असंभ।

महाराजा मानसिंह नाथजी के अनन्य भक्त थे। अतः गद्य और पद्य में अनेक रचनाएं नाथजी की स्तुति और दार्शनिक विचारों को व्यक्त करने के लिए इन्होंने लिखी थी। गीत के माध्यम से भी उनकी अनन्य भक्ति और श्रद्धा व्यक्त हुई है—

मांन कहै अप प्रभु म्हारां,
नाथ जलंधर नांमी।
जीवन भगत मुगत पद जांचू,
जोग कलपतर जांमी।।

कवि के अधिकांश गीतों का सम्बन्ध निजी जीवन की घटनाओं और विशिष्ट प्रकार की परिस्थितियों से है, जिससे उनके गीतों में स्वाभाविकता, तल-स्पर्शिता और एक प्रकार की अभिव्यक्तिगत उन्मुक्तता दृष्टिगोचर होती है, जो उनकी कृतियों के साहित्यिक गौरव को और भी बढ़ा देती है।

कवियों के आश्रयदाता के रूप में महाराजा मानसिंह का महत्व सर्व विदित है, परन्तु डिंगल-काव्य को उनकी निजी देन भी अपने समसामयिक किसी भी कवि से कम नहीं कही जा सकती।

(१५) महादान मेहडू :

महादान मेहडू का जन्म सं० १८३८ बताया गया है।[1] ये उदयपुर के महाराणा भीमसिंह और जोधपुर के महाराजा मानसिंह के समकालीन थे। इन दोनों ही राजाओं के ये कृपापात्र थे। इनकी काव्य-रचनाएं निम्न प्रकार हैं—

---

(1) डिंगल गीत : रावत सारस्वत, चंडीदान सांदू, टिप्पणी, पृ० ३

(१) भीम प्रकास
(२) मान प्रकाश
(३) महाराणा भीमसिंघ री झमाल ।
(४) स्फुट गीत, कवित्त, दोहे आदि ।

इन्होंने अनेक विषयों को लेकर गीत रचना की है। यथा—शिकार, हाथियों की लड़ाई, राजा की सवारी, हाथी व घोड़ों की प्रशंसा, वीरता आदि। उपलब्ध गीतों के नाम ये हैं—

(१) गीत महाराजा मानसिंघ जोधपुर रा (१५ गीत)[1]
(२) गीत दुरजणसिंघ भाटी रौ[2]
(३) गीत राघोदेव चूंडावत रौ[3]
(४) गीत जगरांमसिंघ प्रतापसिंघोत रौ[4]
(५) गीत केसरीसिंघ चूंडावत रौ[5]
(६) गीत मारवाड़ रा सरदारां रौ[6]
(७) गीत महाराणा भीमसिंघ रा (१० गीत)[7]
(८) गीत घोड़ी री तारीफ रौ[8]

प्रसाद गुण कवि के गीतों की प्रमुख विशेषता है। विषय-वैविध्य के कारण कवि के गीत लोकप्रिय भी रहे हैं। हुकमीचंद खिड़िया की तरह सुपंखरा गीत इनका भी प्रिय छंद है। घोड़ी की प्रशंसा में कहे गये गीत के दो छंद देखिए—

दिनां थोड़ी चौड़ी उरां घोड़ी वेग ववै दोड़ी,
तोड़ी फेट लागां गढ़ां कोड़ी मोल तेण।
मोटोड़ी चसम्मा सालग्राम जोड़ी गजां मोड़ी,
माणवां आछौड़ी घोड़ी वरीसो भीमेण ॥

---

(1) रा० शो० सं०, जोधपुर व रा० प्रा० प्र०, जोधपुर का संग्रह ।
(2) वही ।
(3) वही ।
(4) रा० शो० सं०, जोधपुर का संग्रह ।
(5) सा० सं०, उदयपुर का संग्रह ।
(6) रा० शो० सं०, जोधपुर का संग्रह ।
(7) सा० सं०, उदयपुर, रा० शो० सं०, जोधपुर का संग्रह ।
(8) डिंगल गीत : रावत सारस्वत, चंडीदान सांदू, पृ० ९५

ठेलणी अरिंदां छंदां प्रलंबा हालणी ठेका,
पोहां जाय न लेणी छलेणी पूर पाण।
कछैरी मलेणी म्रिगां तुजीहां घलेणी कंधा,
दीधी झांप लेणी पातां बलेणी दीवांण ॥

(१६) कविराजा सूर्यमल्ल मिश्रण—

सूर्यमल्ल मिश्रण डिंगल कवियों की परम्परा में अन्तिम प्रतिभासम्पन्न और विद्वान कवि हुये हैं। उनका जन्म वि० सं० १८७२ में हुआ था।[1] वे अनेक भाषाओं और विविध शास्त्रों के जानकार थे। बूंदी के महाराव रामसिंह ने उन्हें बहुत बड़ा सम्मान दिया था और आजीविका के लिए कई गांव जागीर में दिये थे। उन्हीं के राज्याश्रय में रहकर उन्होंने अधिकांश काव्य-सृजन भी किया था। सूर्यमल्ल विद्वान् होने के साथ-साथ मद्यप्रेमी, तुनक मिजाजी, ऐश्वर्य-प्रिय और स्वाभिमानी व्यक्ति थे। बूंदी नरेश के अतिरिक्त भिनाय के राजा बलवंतसिंह के साथ भी उनकी बड़ी घनिष्टता थी। उनके व्यक्तित्व की अनेक विचित्रताओं को प्रकट करने वाली कई जनश्रुतियां प्रचलित रही हैं।[2]

सूर्यमल्ल की प्रतिभा ने उनके समसामयिक काव्य-क्षेत्र को वहुत प्रभावित किया। उनकी विद्वत्ता से लाभान्वित होने के लिए कुछ लोग उनके शिष्य भी बने थे, जो परवर्ती काल में अच्छे कवि सिद्ध हुए।[3] सूर्यमल्ल का सबसे बड़ा ग्रंथ वंशभास्कर उनके नाना विषयों के ज्ञान और काव्य-चमत्कार का प्रतीक है, यद्यपि उसमें इतिहास सम्बन्धी अनेक त्रुटियां रह गई हैं। उनके द्वारा रचित वीर सतसई डिंगल के वीर रसात्मक काव्य की परम्परा में अन्तिम महत्त्वपूर्ण कड़ी है, जो काव्य-वैभव के साथ-साथ राजस्थान की सांस्कृतिक परम्पराओं और जीवन-आदर्श को व्यक्त करने में अपना साम्य नहीं रखती। इस कृति के अतिरिक्त डिंगल भाषा के माध्यम से उनकी काव्य-प्रतिभा गीतों में सर्वाधिक मुखर हुई है। उनके अधिकांश गीत वीर-रसात्मक हैं। कवि ने गीत-रचना अच्छी संख्या में की होगी, परन्तु उनके कुछ ही गीत उपलब्ध होते हैं। उपलब्ध गीतों की सूची निम्न प्रकार है—

(१) गीत उदयपुर महाराणाजी रौ[4]
(२) गीत पृथ्वीसिंघ राणावत रौ[5]

---

(1) राजस्थांनी सबद कोस, पृ० १७५
(2) द्रष्टव्य—वीर सतसई : सं० डा० कन्हैयालाल सहल आदि : भूमिका।
(3) वीर सतसई द्वितीय आवृत्ति, पृ० २४
(4) सा० सं०, उदयपुर का संग्रह।
(5) वही।

(३) गीत महाराजा मानसिंघ रौ[1]
(४) गीत ठाकर परतापसिंघ मेड़तिया रौ[2]
(५) गीत महाराजा रतनसिंघ बीकानेर रौ[3]
(६) गीत महाराव रामसिंघ बूंदी रा (५ गीत)[4]
(७) गीत महाराज बलवंतसिंघ गोठड़ा रा (२ गीत)[5]
(८) गीत ठाकुर खुसालसिंघ आउवा रौ[6]
(९) गीत आउवा रौ[7]
(१०) गीत चैनसिंघ नरसिंघगढ़ रौ[8]

उनके गीतों में युद्ध वर्णन, अस्त्र-शस्त्र वर्णन तथा योद्धा के शौर्य आदि का वर्णन बहुत ही सुंदर बन पड़ा है। वीर-रसात्मक गीतों में योद्धा का वर्णन करते समय प्रायः उसे क्रुद्ध सिंह, सर्प, मदोन्मत्त गजेन्द्र, विकराल ज्वाला तथा महाकाल आदि बताकर वीर भावनाओं को मूर्त्त रूप प्रदान करने का सफल प्रयास किया है। उदाहरणार्थ एक गीत प्रस्तुत है जिसमें योद्धा की तुलना सर्प से की गई है—

लपट ज्वाल़ जिम नल़ अजराल़ देसी लहर,
चवल़ डसतौ अहर जोह चालै।
जाणवे उगल़ फूंकार आयौ जहर,
कियौ फुण कहर महाराव कालै ।।
न मार्ण रसण उतवंग नकूं नेवड़ै,
अेवड़ै डसण माने न आखौ।
खोजकर जेंवड़ै नर गुलम खूनियां,
तेवड़ै जुल़म रामेण ताखौ ।।
देखियां मौह गरणाट तासा दियण,
ओह सरणाट नासा अद्यांड़ै ।

(1) पुस्तक प्रकाश, जोधपुर का संग्रह।
(2) रा० शो० सं०, जोधपुर का संग्रह।
(3) बं० हि० मं०, कलकत्ता का संग्रह।
(4) वही।
(5) वही।
(6) गोरा हटजा : (परम्परा भाग २), पृ० ७१
(7) वही, पृ० ११०
(8) वही, पृ० ८५

घड़ा चकराग झरणाट साम्हल घणी,
मथाहर नाग भरणाट मांडे ।।
ग्रकस घरहरां भीजिता ऊथालसी,
उर किता सालसी साल ग्राडो ।
घड़ी पलकां महीं घणा घर घालसी,
हालसी ग्रापरै मतै हाडो ।।[1]

कवि ग्रपनी समसामयिक राजनैतिक परिस्थितियों के प्रति पूर्णरूप से जागरूक था । इसलिए वीर सतसई में जहाँ उसने ग्रंग्रेजों की सत्ता को उखाड़ फेंकने के लिए सच्चे वीरों का ग्राव्हान किया था, वहाँ जिन वीरों ने सं० १९१४ की क्रान्ति में भाग लेकर मातृभूमि के गौरव के लिए संघर्ष किया उनकी प्रशंसा भी मुक्त-कंठ से की है । इस दृष्टि से ग्राउवा ठाकुर खुसालसिंह पर लिखे गए एक गीत की कुछ पंक्तिया द्रष्टव्य हैं—

लोहां करंतो झाटका फणां कंवारी घड़ा री लाडो,
ग्राडो जोधांण सूं खैंचियो वहे ग्रंट ।
जंगी साल हिंदवाण री ग्रावगो जीनै,
ग्राउवो खायगो फिरंगाण री ग्रजंट ।।
रीठ तोपां वंदूकां जुज्रवां नालां पैंड रोपै,
वकै चडी जय-जय रुद्र पिया रा वाखांण ।
मारवा काज सौ व्रज्र हिया रा भूरियां माथै,
खुसलेस ग्रायो हाथां लियां रै केवांण ।।

उपरोक्त पंक्तियों में कवि का शब्द-चयन ग्रौर भाषा की चित्रोपमता ग्रादि विशिष्ट गुण भी दर्शनीय हैं । इसमें कोई संदेह नहीं कि सूर्यमल्ल मिश्रण ने ग्रपने गीत के माध्यम से न केवल सामाजिक एवं राजनैतिक चेतना का ही शंखनाद किया है, ग्रपितु उन्होंने ग्रपनी बहुज्ञता ग्रौर प्रखर प्रतिभा के वल से शिथिल प्राय: होने वाली डिंगल काव्य-धारा में पुन: एक ग्रावेग उत्पन्न कर दिया है ।

(१७) गिरवरदान कविया :

ये मारवाड़ के जैतारण परगने के वासनी नामक गांव के निवासी थे ।[2] इनका जन्म सं० १८७८ में गंगादासोत गोत्र के कविया चारण दयालदास के यहां हुग्रा था ।[3] इन्होंने शिक्षा-दीक्षा ग्रपने चाचा पन्नालाल से ली थी, जो बड़े ही उद्भट

(1) गीत महाराव रामसिंघ बूंदी धणी रो ।
(2) गोरा हटजा (परम्परा भाग २), परिशिष्ट पृ० १३६
(3) वं० हि० मं०, कलकत्ता का कवि परिचय संग्रह ।

विद्वान् थे। ये रतलाम नरेश वलवन्तसिंह तथा जोधपुर के महाराजा तख्तसिंह के कृपा पात्र थे।[1] कंटालिया के ठाकुर गोरधनसिंह से इनकी अच्छी मित्रता थी। वे इनके गीतों से अत्यधिक प्रभावित थे। इनके गीतों की प्रशंसा उन्होंने निम्नलिखित दोहे में की है—

गीतां गिरवरियौह, पीतां दारू हद पड़ै।
प्रथी परवरियौह, सारा कव लोगां सिरै॥

संवत् १९१४ में होने वाले स्वातंत्र्य-संग्राम में मारवाड़ के आउवा ठाकुर खुसालसिंघ ने विद्रोहियों का साहस-पूर्वक नेतृत्व किया था, उसकी प्रशंसा में इनके द्वारा रचित छप्पय उपलब्ध होते हैं।[2] जिससे इस समय तक इनका रचना-काल माना जा सकता है। स्वतंत्र गीत-रचना के अतिरिक्त समस्या पूर्ति करने में भी ये वड़े निपुण थे। इन्होंने महाराजा तख्तसिंह के दरवार में होने वाली गोष्ठियों में अनेक गीत समस्या पूर्ति के लिए लिखे हैं। कवि के उपलब्ध गीत ये हैं—

(१) गीत सेखावत डूंगरसिंघ रौ[3]
(२) गीत डूंगजी जंवारजी रौ भेलो[4]
(३) गीत महाराजा वलवंतसिंघ रतलाम रौ[5]
(४) गीत दासी रौ[6]
(५) गीत जैचंद कन्नौजा री तारीफ रौ[7]
(६) गीत महाराजा तखतसिंघजी रौ[8]
(७) गीत धनजी कायथ रौ[9]
(८) गीत गीत-वर्णावरण री सचाई रौ[10]
(९) गीत जालजी आसिया रौ भूंडो[11]

(1' वं० हि० म०, कलकत्ता का कवि परिचय संग्रह।
(2) गोरा हटजा : (परम्परा भाग २), पृ० ९९
(3) वही, पृ० ९७
(4) वही, पृ० १२०
(5) रा० शो० सं०, जोधपुर का संग्रह।
(6) वही।
( ) वं० हि० मं०, कलकत्ता का संग्रह।
(8) वं० हि० मं०, कलकत्ता का कवि परिचय संग्रह।
(9) वही।
(10) वं० हि० मं० कलकत्ता का कवि परिचय संग्रह।
(11) वही।

(१०) गीत रायपुर ठाकराँ रौ[1]
(११) गीत रावत जोर्वासिघ रौ[2]
(१२) गीत देवीजी री स्तुति रौ[3]
(१३) गीत गूलर ठाकराँ रौ[4]
(१४) गीत महाराज कंवर जसवंतसिंघ रौ[5]
(१५) गीत शिवपुर रा किला रौ[6]

गिरवरदान विद्वान होने के साथ-साथ प्रतिभा-सम्पन्न कवि थे। गीतों में थाओं और उक्तों के सुंदर निर्वाह के अतिरिक्त डिंगल भाषा पर बहुत अच्छा धिकार इनके गीतों में प्रकट होता है। उदाहरण के लिए जोधपुर के पट्टा नवीस नजी कायस्थ की ईमानदारी की प्रशंसा में रचित गीत देखिए—

निपट अनंतर रोग घाड़ीत अन्याइयां,
क्रोध डर बनंतर वास करियौ।
मनंतर नाम जठां लग राखण मही,
धना थें धनंतर रूप धरियौ ॥
राव रंक तणी रूख रूप राखै नही,
पख उभै सही मुख भूप परखौ।
दादौ जगत दुक्ख रूप काटण दरद,
सुनत गुमनेस सुख रूप सरखौ ॥
बियांणी सूंक हिमायती बराबर,
प्रथम जग धियांणी चहुं पासै।
पिये सुज हेक अजा-सुत सिंहाणी,
बियांणी इलमी अमर मासे ॥
तरै खट दरस हर याद कर गज तरै,
करै कुण आय फरियाद कूड़ो।
हजारां तारिया वेद अवतार हुय,
राम अवतार कवतार रूड़ो ॥

---

(1) रा० शो० सं०, जोधपुर का संग्रह।
(2) सा० सं०, उदयपुर का संग्रह।
(3) देवकरण वारहठ, इंदोकली का संग्रह।
(4) वही।
(5) पुस्तक प्रकाश : उम्मेद भवन, जोधपुर।
(6) सौभाग्यसिंह शेखावत भगतपुरा का संग्रह।

(१८) हिंगलाजदान कविया :

जयपुर के निकट सेवापुरा ग्राम के निवासी हिंगलाजदान डिंगल के आधुनिक युग में बहुत बड़े कवि हुए हैं। इनका जन्म संवत् १६२४ में हुआ था।[1] इनके पूर्वज सागरजी कविया डिंगल के माने हुए कवियों में गिने जाते थे। इनके पिता का नाम रामप्रताप था, जो स्वयं विद्वान और कवि थे। हिंगलाजदान प्रखर प्रतिभा और असाधारण स्मृति के धनी थे। इन्होंने बाल्यकाल में ही काव्य-रचना प्रारंभ करदी थी। इनकी स्मृति का चमत्कार विस्मय-जनक था। वे किसी भी छंद को दो बार सुन लेने पर याद कर लेते थे और उनकी सभी निजी रचनाएं भी प्रायः कण्ठस्थ थी। वे जयपुर के प्रसिद्ध विद्वान् हरिनारायण पुरोहित के घनिष्ठ मित्रों में से थे। महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर को उन्होंने डिंगल के कुछ छंद ओजस्वी वाणी में सुनाए थे, जिससे रवीन्द्रनाथ अत्यधिक प्रभावित हुए थे और डिंगल काव्य के बारे में उन्होंने अपनी उच्च धारणा बनाई थी। ८१ वर्ष की अवस्था (सं० २००५) में उनका देहान्त खुड़द नामक स्थान पर हुआ।[2] वे देवी के अनन्य भक्त, मृदु भाषी, मिलनसार और संयमित जीवन व्यतीत करने वाले थे। राजपूत व चारण समाज में उनका बड़ा सम्मान था।

उनकी कई रचनाएं जो लिपिबद्ध नहीं की गई, वे उनके साथ ही लुप्त हो गई। उपलब्ध रचनाएं इस प्रकार हैं।

(१) मृगया मृगेन्द्र
(२) मेहाई महिमा
(३) दुर्गा बहोत्तरी
(४) प्रत्यय पयोधर
(५) सालगिरह शतक
(६) आखेट अपजस
(७) रूपसिंह कुरूपक
(८) वाणिया रासो
(९) करणी स्तुति
(१०) जाखल री लड़ाई रा छप्पय
(११) बख्तसिंघ भूरसिंघ री बिरुदावली
(१२) स्फुट गीत, दोहे, कवित्त, छंद आदि।

---

1. मेहाई महिमा: जोगीदान कविया, भूमिका, पृ० १
2. मरु वाणी मासिक, जयपुर, वर्ष १, अंक १

कवि ने स्फुट गीत-रचना वहुत वड़ी संख्या में की थी, परन्तु खेद है कि अधिकांश रचनाएं उपलब्ध नहीं होतीं। उनके कुछ प्रसिद्ध गीत इस प्रकार हैं—

(१) गीत हिंगलाज देवी रा (५ गीत)[1]
(२) गीत करणी देवी रौ[2]
(३) गीत इन्द्रवाई खुड़द रा (२ गीत)[3]
(४) गीत सपूत रौ[4]
(५) गीत कपूत रौ[5]
(६) गीत ठाकर प्रेमसिंघ दांता रौ[6]
(७) गीत ठाकर देवीसिंघ चोमू रो[7]
(८) गीत ठाकर भूरसिंघ मलसीसर रौ[8]
(९) गीत हरिनारायण पुरोहित रौ मरसियो[9]
(१०) गीत देवीजी रौ[10]
(११) गीत वलसिंघ भूरसिंघ सेखावत पाटोदा रौ[11]
(१२) गीत ठाकर शेरसिंघ कुचामण रौ[12]
(१३) गीत हाकिमां री वुराई रौ[13]
(१४) गीत महाराजा सवाई मानसिंघ रौ[14]
(१५) गीत जनरल भैरोंसिंघ तंवर रौ[15]

---

(1) स्वर्गीय बलदेवदान कविया, सेवापुरा का संग्रह।
(2) वही।
(3) मेहाई महिमा: सं० जोगीदान कविया, पृ० ४२, ५०
(4) डिंगल गीत: सं० रावत सारस्वत, चंडीदान सांदू, पृ० ११७
(5) वही, पृ० ११९
(6) ठाकुर सिवनाथसिंह मलसीसर का संग्रह।
(7) वही।
(8) वही।
(9) वही।
(10) सा० सं०, उदयपुर का संग्रह।
(11) वही।
(12) वही।
(13) वही।
(14) वही।
(15) वही।

कवि के गीतों की भाषा सरल और व्यावहारिक है। स्थान-स्थान पर शैली में व्यंग्यात्मकता भी दृष्टिगोचर होती है। उदाहरणार्थ कपूत पर कहा हुआ एक गीत पढ़िये—

कहियो फरजंद न मानै काई,
छक तरुणाई मछर छिलै ।
महलो नूं तो मिलै कमाई,
माईतां नूं भूंड मिलै ।।
पढ़ पढ़ ठीक सीख पड़वा मां,
कड़वा वचनां दगध करै ।
जीमैं घी गोहूं जोड़ायत,
मां तोड़ायत भूख मरै ।।
वरतै सोड़ सोड़िया वेटो।
पेमंद हेटो वाप पड़ै ।
मूंडा हूंत न वोले मीठौ,
लालो वूढां हूंत लड़ै ।।
सरवण न हुवे हियो सिलावण,
हियो जलावण कंस हुवै ।
थेथे काम कुटीजे थाली,
कलजुग राली भांग कुवै ।।

(इ) छंद–शास्त्रों का निर्माण करने वाले कवि

(१) कुंवर हरराज :

हरराज जैसलमेर के रावल मालदेव के पुत्र थे। मालदेव की मृत्यु के उपरांत संवत्‌में १६१८ वि० में यह जैसलमेर की राजगद्दी पर वैठे।[1] संवत् १६३४ तक इन्होंने राज्य किया।[2] वीकानेर के राठौड़ पृथ्वीराज की विदूषी पत्नी चंपादे इन्हीं की पुत्री थी।[3] ये विद्याप्रेमी और कुशल शासक थे। प्रसिद्ध कवि कुशललाभ इनका काव्य–गुरु था और उसने इन्हीं के आश्रय में रहकर उनकी आज्ञा से कई महत्त्वपूर्ण ग्रंथों का निर्माण किया था।

पिंगल सिरोमणी[4] छंद-शास्त्र के अतिरिक्त हरराज की कोई महत्त्वपूर्ण रचना उपलव्ध नहीं होती। कुछ स्फुट गीत आदि अवश्य मिलते हैं। अद्यावधि

1. वीर विनोद : कविराजा श्यामलदास, भाग २, पृ० १७६२
2. जैसलमेर का इतिहास : पं० हरिदत्त गोविंद, पृ० ८६
3. राजस्थान भारती, वीकानेर, भाग, ७ अंक ३, पृ० ५३
4. पिंगल सिरोमणी : (परम्परा भाग १३), सं. नारायणसिंह भाटी

उपलब्ध डिंगल के छंद-शास्त्रों में यह ग्रंथ सबसे प्राचीन है। इस ग्रंथ में स्थान स्थान पर कवि का नाम कुंवर हरराज मिलता है। अतः सं० १६१८ अर्थात् हरराज की गद्दी नशीनी के पहले ही इस कृति की रचना हो जानी चाहिए।

इस ग्रंथ मे कवि ने कुछ प्रसिद्ध संस्कृत छंदों के अतिरिक्त २३ प्रकार के दोहे, २८ प्रकार की गाथा और ७१ प्रकार के छप्पय लक्षण तथा उदाहरण सहित दिए हे। ७५ प्रकार के अलकारों का भी इसमें वर्णन किया है। कामधेनका, कपाट बंध, कमल् बंध, चक्रबध, अकुसबंध, पट् कमल् बंध आदि चित्र-काव्यों को भी सोदाहरण समझाया हे। डिगल् नाम-माला प्रकरण मे कुछ शब्दों के पर्यायवाची शब्दों का छदोवद्ध सकलन किया गया है। गीत प्रकरण इस ग्रंथ का अन्तिम प्रकरण है, जिसमे कोई ४० गीतो के लक्षण और उदाहरण प्रस्तुत किए गए हे। ये गीत कवि की निजी रचना न होकर प्रायः संकलन ही हे। दुरसा आढ़ा, बारहठ ईसरदास, वेणीदास आदि के गीत भी उदाहरण के लिए प्रस्तुत किए गए हे। गीतों के लक्षण कही गद्य व कहीं पद्य में समझाए गए है। इसमें दिए गए गीतों के नाम इस प्रकार हे—

(१) अड़ियल, (२) अरहटियो, (३) एक अखरी, (४) एकल वयणो, (५) कड़खो, (६) काछौ, (७) गजगति, (८) गोख, (९) घण कंठ, (१०) चित इलोल्, (११) चोटीबंध, (१२) चोसर, (१३) जघखोड़ो, (१४) झमाल्, (१५) ताटको, (१६) तीजडो, (१७) दुमेलो, (१८) दूणो, (१९) दोढो, (२०) पखालो, (२१) पाढगति, (२२) पालवणी, (२३) भाखडी, (२४) भावन (२५) भ्रमर गुंजार, (२६) मध्य साणोर, (२७) विकुट, (२८) विश्रानीक, (२९) व्याहलो, (३०) व्रहत साणोर, (३१) संगीत, (३२) सतखणो, (३३) सुपंखरो, (३४) साणोर, (३५) सावझडो, (३६) सैलार, (३७) सोरठियो, (३८) सिहचलो, (३९) हंसावलो, (४०) त्रंबंक।

इस ग्रंथ के अतिरिक्त कवि की स्फुट गीत-रचना मे पर्याप्त काव्य-सौन्दर्य परिलक्षित होता हे। उदाहरणार्थ एक गीत प्रस्तुत हे, जिसमे चारण कवियो के प्रति उनकी आस्था और काव्य-कला के प्रति गहरा लगाव प्रकट होता है।

जावै गढ़ राज भल भल जावै, राज गयां नहिं सोक रती।
गजब ढहे कविराज गयां सूं, पलटै मत वण छत्रपती॥
हालण सुभग सुभाग हलाणा, रहणी कहणी एक रहे,
तारण तरण छत्रियां ताकव, कुल चारण हरराज कहे॥
घू धारण केवट छत्रो ध्रम, कलयण छत्रवट भाल् कमो।

व्रछ छत्रवाट प्राजलण वेला, इहग सींचणहार अमी ।।
वायक अगम निगम रौ वेता, हद विसावणी अकथ हदे,
उपजैला दुर्भाव इणां सूं, जाणी निकट विणास जदे ।।
आद छत्रियां रतन अमोलौं, कुल चारण अपणास कियो,
चोकी दांमण समंध चारणां, जिणवल हल अल रूप जियौ ।।[1]

(२) हमीरदान रतनू :

हमीरदान मारवाड़ के घड़ोई ग्राम के निवासी थे । वचपन से ही कच्छभुज में रहकर इन्होंने विद्याध्ययन किया था । वहाँ के महाराव श्री देशलजी (प्रथम) के राजकुमार लखपतजी के ये कृपा-पात्र थे ।[2]

कवि डिंगल भाषा का असाधारण विद्वान् और ज्योतिष, नीति, छंदशास्त्र आदि का अच्छा ज्ञाता था । श्री सीतारांम लालस के अनुसार इन्होंने कोई छोटे-वड़े १७५ ग्रंथ रचे थे ।[3] इनके प्रसिद्ध ग्रंथ इस प्रकार हैं—

(१) लखपत पिंगल, (२) पिंगल प्रकास, (३) हमीर नांगमाला (४) जदुवंस वंशावली, (५) व्रह्मांड पुराण, (६) देसलजी री वचनिका, (७) ज्योतिष जड़ाव, (८) भागवत दर्पण, (९) भर्तृहरि सतक तथा (१०) महाभारत का अनुवाद । इनमें से प्रथम दो ग्रंथ छंदशास्त्र के हैं ।

(१) लखपत पिंगल—इस ग्रंथ का निर्माण कवि ने सं० १७९६ में किया था—

संवत सत्तर छिन्नवौ, पखन्तस वरस पटंतर ।
लिथि उत्तिम सातिम, वार उत्तिम गुरवासर ।।[4]

इस ग्रंथ में कवि ने कई प्रकार के छंदों, २६ प्रकार की गाहा, अष्ट प्रत्यय और २३ प्रकार के गीतों पर प्रकाश डाला है । अपने आश्रयदाता लखपत की प्रशंसा इन छंदों में की है । उनके द्वारा प्रयुक्त गीतों के नाम इस प्रकार हैं—

(१) चितविलास, (२) सींहचलो, (३) झड़मुगट, (४) चित इलोल, (५) गौख, (६) सांणौर-सामुलो, (७) अठतालौ मुडेल, (८) झमाल, (९) घोड़ादमौ, (१०) हरिण झंप, (११) त्रिकुटवंव, (१२) लहचाल (१३) सोरठियो, (१४) भमरगुंजार; (१५) सावझड़ो, (१६) भाखड़ी,

---

(1) पिंगल सिरोमणी (परम्परा भाग १३), भूमिका, पृ० १४ का फुटनोट ।
(2) राजस्थांनी सवद कोस, भूमिका, पृ० १५८
(3) वही ।
(4) रा० शो० सं०, जोधपुर का संग्रह ।

(१७) पालवरणी, (१८) पाड़गति, (१९) वेलियो सांणौर, (२०) जांगड़ो प्रहास, (२१) रसखरो, (२२) केवार, (२३) सपंखरो।

(२) गुण पिंगल प्रकास—कवि ने इस ग्रंथ का निर्माण सं० १७६८ में किया था। ग्रंथ के अंत में निर्माण-काल का उल्लेख इस प्रकार किया गया है।

संवत सतरह अड़सटे, माह सीत रित मास।
जैहड़ो जोड़े जांणियो, इहड़ो कियो अभ्यास ॥
सुणतां पुणतां सीखतां, अधक होइ आणंद।
कहियो ग्रंथ हमीर कवि, गुण ग्राहक गोविंद ॥[1]

पूरे ग्रंथ को मात्रा-परिच्छेद तथा वर्ण-परिच्छेद इन दो भागों में विभक्त किया है। इस ग्रंथ में ७१ प्रकार के छप्पय, २३ प्रकार के दोहे तथा ३६ प्रकार की गाथाओं का निरूपण संक्षेप में किया गया है। खंधाण गाथा पर सविस्तार विचार करते हुए इसके २८ भेद बताए हैं। छंदों में ईश्वर का गुणगान किया गया है।

गीतों की दृष्टि से यह ग्रंथ इसलिए महत्त्वपूर्ण है कि इसमें वेलियो सांणोर के ३० भेद मात्रा-प्रस्तार के आधार पर किए गए हैं। मात्रा-प्रस्तार का नियम गीतों के सम्बन्ध में अन्य छंद-शास्त्रियों ने नहीं अपनाया। वेलियो सांणोर के ३० भेदों के नाम इस प्रकार हैं।

(१) महण, (२) रतन, (३) मनमोह, (४) मेर, (५) गंगाजल, (६) मंगल, (७) अग, (८) लीलंग, (९) मयूर, (१०) कलम, (११) कूहल, (१२) कमल, (१३) गिगन, (१४) वाजगड, (१५) राज, (१६) चंद, (१७) ऊलहर, (१८) चंदण, (१९) अमर अगर, (२०) आणंद, (२१) कनक, (२२) आभूसण, (२३) कंकण, (२४) मकरंद, (२५) सुंदर, (२६) मदण, (२७) पतंग, (२८) छत्र दीपक्क, (२९) अयण, (३०) अहराउ।

हमीरदान डिंगल के उन इने-गिने कवियों में से हैं जिन्होंने विपुल काव्य-सृजन के अतिरिक्त उसके शास्त्रीय पक्ष पर भी गहराई और मौलिक-सूझ-बूझ के साथ विचार किया है।

(३) उदयराम :

डिंगल छंदशास्त्र के रचयिताओं में उदयराम का विशिष्ट स्थान है। मारवाड़ का थबूकड़ा ग्राम इनका निवास स्थान था।[2] राजस्थानी शोध-संस्थान, जोधपुर में महाराजा मानसिंह के समकालीन कवियों का एक चित्र संगृहीत है, जिसमें प्रत्येक कवि का नाम दिया हुआ है, उसमें इस कवि का भी चित्र है, जिससे वे महाराजा

1. रा० शो० सं०, जोधपुर का संग्रह।
2. राजस्थांनी सबद कोस, भूमिका, पृ० १६८

मानसिंह के समकालीन और उनके कृपा पात्र कवियों में से थे। कवि का नाम कहीं-कहीं उमेदराम भी लिखा मिलता है।

कवि का अधिकांश जीवन-काल कच्छभुज के महाराजा देशल (द्वितीय) के राज्याश्रय में व्यतीत हुआ था।[1] उन्होंने अनेक ग्रंथों का प्रणयन किया है। ये अनेक कलाओं के ज्ञाता और काव्य शास्त्र के धुरंधर विद्वान् थे। उनके द्वारा रचित छंद शास्त्र 'कवि-कुल-बोध' के गीतों संबन्धी प्रकरणों की प्रतिलिपि राजस्थानी शोध-संस्थान जोधपुर में सुरक्षित है। इसके विषय १० तरंगों में विभक्त किए गए हैं—

(१) गीतों का वर्णन, (२) गीतों के भेद व जथाएं आदि, (३) अस्त्र-शस्त्र वर्णन, (४) डिंगल-पिंगल प्रश्नोत्तर, (५) उकत वर्णन, (६) रस वर्णन, (७-८) अवधान माला, (९) एकाक्षरी नांम माला, (१०) अनेकार्थी नांम-माला।

इस ग्रंथ में चौरासी प्रकार के गीतों के लक्षण व उदाहरण दिए गए हैं तथा जथाओं और उक्तों पर भी सविस्तार प्रकाश डाला गया है। ग्रंथ के प्रारंभ में एक गीत लिखकर उसमें चौरासी गीतों के नाम निम्न प्रकार गिनाए गए हैं—

मंदार१ मनमद२ खुड़द३ मधकर४।
सोख५ गोख६ त्रंबंक७ संकर८।
सोहणो९ अगझप त्रावक१० भाखड़ी११ अध भाख १२॥
गजल१३ मुड़ियल१४ अरट१५ गजगत१६।
प्रौढ़१७ डोढ़ो१८ सवा१९ स्त्रीपत२०।
पाटंत झड़मुगट२१ दीपक२२ सुध भाख२३ रस२४ साख२५॥
चंद२६ चितयलोल२७ चंदण२८।
वीर कंठ२९ विवांण३० वंदण३१।
कमल३२ घमल३३ प्रहास३४ काछौ३५ सपंखरो३६ सारंग३७॥
सतखणो३८ सालूर३९ सायक ४०।
अेक अछर४१ मधुर भायक४२।
पालवण४३ ताटंक४४ लुपता सोख४५ अधरस४६ सरग॥
झड़ूयल४७ घड़ूयल४८ मदभर४९।
विकट५० वंधर त्रिकुट५१ केवर५२।
मधुर५३ चित विलास५४ मंगल५५ गंधसार५६ गयद५७॥
वेलियो५८ मुगतावली५९ वर६०।
जांगड़ो६१ गुंजार भमर६२।
हांसलो६३ लहचाल६४ हेला६५ माल गीत६६ मयंद६७॥

---

1. पिंगल सिरोमणी (परंपरा भाग १३) पृ० १९२

त्रंवकड़ो६८ त्रंबाल़६९ वुसर ७० ।
सोरठौ७१ सेलार७२ सुंदर ७३ ।
अडल़७४ मनसुख७५ अठतालौ७६ चंग७७ चोटियाल़७८।।
ललत मुगट७९ झमाल़८० लंगर८१ ।
सींहचलौ८२ दुरमेल़८३ संगर ।
मन उमंग८४ प्रकास मनसुख भेल अंक झमाल़ ।।

यह ग्रंथ छंदों की वनावट तथा रस आदि के विवेचन की दृष्टि से लिखा गया है, परन्तु इसमें कवि के आश्रयदाता देशल की कीर्ति-गाथा आदि से अन्त तक गाई गई है। गीतों मे स्थल-स्थल पर कवि की विद्वत्ता और वहुज्ञता, शैलीगत विलक्षणता के साथ व्यक्त हुई है, उदाहरणार्थ एक गीत प्रस्तुत है, जिसमें समुद्र के चौदह रत्नों के साथ अपने काव्य की चौदह विशेषताओं का रूपक कवि ने वांधा है—

गीतां रा जठे गड़ीरव, लाट छंद ऊठे लहर।
वांकी कविता घाट भमर विध, ज्वाल़ झाट मुगवतां जहर ।।
अम्रत ससंक संख मिण उकती, धनुख धनंतर जथा धर।
मद रस छाक गुणां महिपतियां, छेक जमक रूपी अच्छर ।।
वांणी पढ़ै वाज गज वेलां, धनुख चड़ै सर क्रीत धज।
सुजस धाव सपतास प्रिथीसिर, गुण कमल़ा सारै गरज ।।
वार प्रभाव चतुरदस विद्या, राव गुणां भरियौ रतन।
धरम नाव 'देसल' छत्रधारी, मौज सभाव समंद मन ।।

(४) मंछाराम सेवग :

कवि मंछाराम का प्रादुर्भाव उस समय में हुआ था जव मारवाड़ में एक साथ अनेक प्रतिभा-सम्पन्न कवि अपनी काव्य-प्रतिभा के द्वारा डिंगल के काव्य भंडार की श्री वृद्धि कर रहे थे। इनका जन्म वि० स० १८२७ में वख्शीराम सेवग के यहाँ हुआ था।[1] डिंगल काव्य-रचना करने का शौक इन्हें वचपन से ही था। उन दिनों जोधपुर के महाराजा मानसिंह कवियों का सम्मान करने के लिए बड़े विख्यात थे। मंछाराम ने मानसिंहजी के गुरु नाथजी की प्रशंसा में काव्य-रचना कर मानसिंहजी को सुनाई जिससे महाराजा ने प्रसन्न होकर ७२० रुपये की वार्षिक पेन्शन पीढ़ी दर पीढ़ी के लिए वांध दी थी।[2] उनके वंशजों को यह पेन्शन महाराजा सुमेरसिंह के शासन काल तक मिलती रही।

---

(1) रघुनाथ रूपक : सं० महताव चंद खारैड़, भूमिका पृ० १०

(2) वही।

कवि का छंद-ग्रंथ 'रघुनाथ-रूपक' डिंगल का प्रसिद्ध ग्रंथ है ।[3] इसमें राम कथा को लेकर अनेक छंदों, गीतों, वैण सगाई, जथाओं व दोषों पर सहज ढंग से सरल भाषा में प्रकाश डाला गया है। पूरा ग्रंथ ९ विलासों में सम्पूर्ण हुआ है । कवि ने इसमें ७२ गीतों के लक्षण व उदाहरण दिए हैं ।[4] गीतों के नाम इस प्रकार हैं–

(१) वडा सांणोर, (२) सुद्ध सांणोर, (३) प्रहास, (४) दुमेल, (५) अरट (६) अरटियो, (७) दोढ़ो, (८) भाखरी, (९) पंखालो, (१०) गोखो, (११) दूसरी गोखो, (१२) गोख, (१३) अर्ध भाखड़ी, (१४) प्रौढ़, (१५) दूजो प्रौढ़, (१६) सींहचलो, (१७) सालूर, (१८) झमाल, (१९) छोटो सांणोर, (२०) वेलियो, (२१) सोहणो, (२२) मुकताग्रह, (२३) इक्खरो, (२४) दीपक, (२५) मावक अडल, (२६) सावक अडल दूसरो, (२७) गाहा चौसर, (२८) त्रवंकड़ो, (२९) हेलो, (३०) एकल वयणो, (३१) भाख, (३२) अर्ध भाख, (३३) गजगत, (३४) धमाल, (३५) चोटियाल, (३६) उमंग (३७) सेलार, ३८) अर्ध गोखो, (३९) सतखणो, (४०) झड़मुकट, (४१) अमेल, (४२) काछो, (४३) हंसावलो, (४४) भंवर गुंजार, (४५) दूसरो भंवर गुंजार, (४६) चोटियो, (४७) चितविलास, (४८) मंदार, (४९) कंवार, (५०) चितइलोल, (५१) पालवणी, (५२) कवि इलोल (५३) त्रिपंखो, (५४) मनमोद, (५५) झड़लुपत, (५६) सावझड़ो, (५७) अर्ध सावझड़ो, (५८) जांगड़ो, (५९) वीरकंठ, (६०) सवैयो, (६१) सखरो, (६२) सुवग, (६३) अठतालो, (६४) ताटको, (६५) लहचाल, (६६) पाड़गत, (६७) त्रकुट बंध, (६८ दूसरो त्रकुट बंध, (६९) लघु चित विलास, (७०) खुड़द सांणोर, (७१) ललत मुकट, (७२) एकल वयणो दूसरो ।

रामकथा के सुन्दर क्रम, सरस वर्णन, सहजता और संक्षिप्तता के कारण यह ग्रंथ चारणेतर कवि की कृति होने पर भी चारण कवियों में बहुत लोकप्रिय रही है । छंदशास्त्र की शिक्षा के लिए यह ग्रंथ प्रायः कण्ठस्थ कर लिया जाता था । काव्यशैली के उदाहरण के लिए कुछ पंक्तियां देखिए—

अछरंग अत विध वेद उत्तम, रचै मंडप रीत
सुत चार दसरथ तणा साथे, परणिया कर प्रीत ।।

---

(3) इस ग्रंथ की एक मूल प्रति ग्रंथकार की लिपिबद्ध की हुई रा० शो० सं० जोधपुर के संग्रह में है । इसमें सम्पादित प्रति से कई स्थलों पर भिन्नता है ।

(4) कहै बहोत्तर मंछ कवि गीत प्रबंध गिनाय ।

बड़ कंवारि सीत विदेह रौ, रघुनाथ वर राजेस।
अरु अनुज कंवरि उरमिला, सो सकज व्याहो सेस ।।
नृप भ्रात कुसधुज तणै नागर, देख तुत्रो दोय।
इक मांडवी वर भरत अरिधिन, सुतत कीरत सोय ।।
परणाया सुत उजवाल पाखां, दान लाखां दीध।
गिरवाण हरख्या गगन-मारग, कुसम वरखा कीध ।।

इस ग्रथ की लोकप्रियता डा० ग्रीयर्सन ने भी स्वीकार की है।[1] डिंगल गीतों के छंदशास्त्रीय पक्ष का अध्ययन करने वालों के लिए यह ग्रथ अत्यधिक उपयोगी है।

(५) किसना आढ़ा (द्वितीय)—

डिंगल के प्रसिद्ध कवि दुरसा आढ़ा की ८वीं पीढ़ी में यह कवि हुआ है।[1] कवि अनेक भापाओं का जानकार तथा इतिहास एवं छंदशास्त्र का ज्ञाता था। उदयपुर के महाराणा भीमसिंह पर इन्होंने 'भीम विलास' ग्रंथ की रचना की है।[2] महाराणा की इन पर पूर्ण कृपा थी, इसलिए सीसोदा ग्राम इन्हें जागीर में मिला।[3]

उक्त ग्रंथ 'भीम विलास' के अतिरिक्त कवि की स्फुट काव्य-रचना और छंद-शास्त्र का महत्त्वपूर्ण ग्रंथ 'रघुवर जस प्रकास' उपलब्ध होता है। रघुवर जस प्रकास डिंगल छंद शास्त्र का वृहत ग्रंथ है। प्रथम प्रकरण में कवि ने गणागण, दग्वाक्षर, गुरुलघु तथा छंद्र-शास्त्र के आठ प्रत्ययों का वर्णन किया है। द्वितीय प्रकरण में २२४ मात्रिक छंदों के लक्षण व उदाहरण दिये हैं तथा डिंगल की कुछ गद्यशैलियां—दवावेत, वचनिका और वार्ता आदि पर भी प्रकाश डाला है। कुछ चित्र काव्य में के उदाहरण भी इसमें हैं। तृतीय प्रकरण में ११७ वर्ण वृत्तों के लक्षण व उदाहरण दिये गये हैं। छप्पय छंद के विविध रूपों पर विस्तार के साथ प्रकाश डाला गया है। चौथे प्रकरण में ९१ प्रकार के गीतों के लक्षण व उदाहरण दिये हैं तथा गीतों के कुछ आवश्यक उपकरण वैण-सगाई, अखरोट, जथा, उक्ति, दोप आदि पर भी विस्तार के साथ प्रकाश डाला गया है।

कवि ने गीत प्रकरण के प्रारंभ में ९१ प्रकार के गीतों के नाम एक छंद में गिनाए हैं। वह छंद इस प्रकार है—

---

(1) द्रष्टव्य—राजस्थांनी सवद कोस, भूमिका पृ०१६६
(2) रघुवर जस प्रकास: रा० प्रा० प्र० जोधपुर, पृ० ३४०
(3) राजस्थांनी सवद कोस, भूमिका पृ० १६६
(4) सीसोदा सांसण सीसोदा, यारां हायां मौज थियो।

विधांनीक१ पाडगती२ त्रेवड३ ।
वंको४ त्रवंकड़ो५ सुकवी घड़ ॥
चोटी-वंध६ मुगट७ दोढ़ो८ चव ।
सावझड़ो९ हंसावल१० सूत्रव११ ॥
गजगत१२ त्रिकुटवंध१३ मुड़ियल१४ गण ।
तिरभंगौ१५ एक अखर१६ मांण१७ तण ॥
भण अड़ीयल १८ झमाल १९ भुजंगी २० ।
चौसर २१ त्रिसर २२ रेणखर २३ रंगी २४ ॥
अट्ठ २५ दुअट्ठ २६ वंधअहि २७ अक्खव ।
सुपंखरो २८ सेलार २९ प्रौढ ३० तव ॥
विडकंठ ३१ सीहलौर ३२ सालूरह ३३ ।
भमर-गुंज ३४ पालवणी ३५ भूरह ३६ ॥
घण कंठ ३७ सीह ३८ वगा उमंगह ३९ ।
दूणोगोख ४० गोख ४१ परसंगह ॥
प्रगट दुमेल ४२ गाहणी ४३ दीपक ४४ ।
सांणोरह ४५ संगीत ४६ कहै सक ४७ ॥
सीहचलो ४८ अर अहरनखेड़ी ४९ ।
मणियां नाग गरुड़ सांभेड़ी ॥
ढोलचालो ५० घड़उथल ५१ रसखर ५२ ।
चितविलास ५३ केवार ५४ सहुचर ॥
हिरणझंप ५५ घोड़ा दम ५६ मुड़ियल ५७ ।
पढ लहचाल ५८ भाखड़ी ५९ अणपल ॥
वले हेकरिण ६० धमल ६१ वखांणां ।
पढ काछो ६२ गजगत ६३ परमांणां ॥
भाख ६४ गीत फिर अरभाख ६५ भण ।
मांगण जालीवंध ६६ रूपक मुण ॥
कहै सवायो ६७ सालूरह ६८ किव ।
त्रीवंको ६९ धमाल ७० फेर तव ॥
सातखणो ७१ ऊमंग ७२ इकअखर ७३ ।
यक अमेल ७४ वे गूंजस ७५ भमर ७६ ॥
कवि चोटियो ७७ मंदार ७८ लुपतझड़ ७९ ।
त्रीपंखो ८० व्रध ८१ लघू ८२ सावझड़ ८३ ॥

दुतिय झड़मुकट ८४ दुतिय सेमारह ८५ ।
त्राटकौ ८६ मनमोह ८७ विचारह ।।
ललितमुकट ८८ मुकताग्रह ८६ लेखौ ।
पंखालो ६० अ गीत परेखौ ।।
वसंतरमण ६१ आद कवि बतावै ।
गीत निनाण नांम गिणावै ।।[1]

अद्यावधि उपलब्ध छंद शास्त्रों में संख्या की दृष्टि से सबसे अधिक गीत इसी ग्रंथ में सोदाहरण प्रस्तुत किये गये हैं । कवि ने गीत के लक्षण को गद्य के माध्यम से भी स्पष्ट किया है, जिससे गीतों के लक्षण समझने में बड़ी सुविधा हो जाती है । ग्रंथकार ने स्पष्ट लिखा है कि 'लोग ६६ प्रकार के गीतों का जिक्र करते हैं, पर मैंने जितनी प्रकार के गीत सुने और पढ़े हैं, उन्हीं का विवेचन मैं यहाँ कर रहा हूं ।"[2] इससे यह प्रमाणित होता है कि कवि ने गीतों की संख्या मनमाने ढंग से न बढ़ाकर डिंगल में प्रयुक्त विभिन्न गीतों के आधार पर ही उनके लक्षण यहाँ दिये हैं ।

पूरा ग्रंथ राम-कथा पर आधारित हैं । इसलिए उसका नाम 'रघुवर जस प्रकास' रखा गया है । ग्रंथ की भाषा प्रायः विशुद्ध डिंगल है । ग्रंथ में अनेक स्थलों पर काव्य-चमत्कार भी दृष्टिगोचर होता है । इस ग्रंथ में प्रस्तुत गीतों के अतिरिक्त कवि ने स्वतन्त्र गीत-रचना भी की है, कुछ गीत इस प्रकार हैं—

(१) गीत महाराणा भीमसिंघ रा (१३ गीत)[3]
(२) गीत महाराणा भीमसिंघ कवि रै गांव पधारिया तिण री[4]
(३) गीत भीमसिंघ कवि नै गांव दियो तिण री[5]
(४) गीत महाराजा मानसिंघ रा (७ गीत)[6]
(५) गीत महाराजा बलवंतसिंघ रतलाम री[7]

---

(1) रघुवर जस प्रकासः रा० प्रा० प्र०, जोधपुर, पृ० १८६-१८७
(2) गीत निनाण नाम गिणावै,
सुणिया दीठा जकै लखीजै,
विण दीठा किण भांत वदीजै। (पृ० १८७)
(3) सा० सं० उदयपुर का संग्रह ।
(4) सीताराम लालस, जोधपुर का संग्रह ।
(5) रघुवर जस प्रकास : भूमिका, पृ० ५
(6) रा० शो० सं०, जोधपुर का संग्रह ।
(7) कविराव मोहनसिंह, उदयपुर का संग्रह ।

(६) गीत महाराणा भीमसिंघ री सतियां रौ[1]
(७) गीत महाराणा भीमसिंघ रौ मरसियो[2]
(८) गीत महाराजकुमार जवानसिंघ रा (४ गीत)[3]
(९) गीत ठाकर सुल्तानसिंघ रौ[4]
(१०) गीत ठाकर वख्तावरसिंघ रौ[5]
(११) गीत कंवरजी अमरसिंघ रौ मरसियो[6]
(१२) गीत गूढ़ा अरथ रौ[7]

राणा भीमसिंह की तलवार की प्रशंसा में कहा हुआ कवि का एक गीत उदाहरणार्थ प्रस्तुत है—

करां भीमेण पावणी फतै चावणी अरिंदां कटा,
सामंग स्रोयणां छटा अचवणी साव।
नंगी अध्रियामणी गयंदां घटां सीस नाचै,
बीजला सामणी घटा दामणी वणाव॥
सोहै राण पाणां सत्रां डोहे काल वाली सुता,
आजै दीपमाल वाली गै तमां भनेव।
अ‍ुंदंतां मंगलां झलां तरेसां प्रजालवाली,
जोपै वरस्सालवाली चंचला जनेव॥
अड़स्साणी सुजस्सां प्रकास री करग्गां ओपै,
सिवा पूर आस री विहंडी गजां साथ।
जंगां चातुरंगां गव्वे विनास री प्रयोजणा,
तेग वेग संपा चत्रमास री तराज॥
रतां मैंमटां री पोण कटारी हैजमां रिमां,
लटा री अलट्टा जाग जमीं धक्कां लाग।

---

(1) सा० सं०, उदयपुर का संग्रह।
(2) सीताराम लालस, जोधपुर का संग्रह।
(3) सा० सं०, उदयपुर का संग्रह।
(4) वही।
(5) वही।
(6) वही।
(7) श्री सौभाग्यसिंह शेखावत भगतपुरा का संग्रह।

भाराथां थटां री गजां विभाग कराक भीम,
जैत हथां थारी खाग घटा री बज्राग ।। [1]

(६) मुरारिदान—

मुरारिदान का जन्म संवत् १८६५ और देहान्त सं० १९६४ में हुआ था । [2] ये प्रसिद्ध कवि सूर्यमल्ल मिश्रण (बूंदी) के दत्तक पुत्र थे । उन्होंने इन्हें भी षट् भाषा-प्रवीण बना दिया था ।[3] सूर्यमल्ल ने 'वंश भास्कर' का जितना अंश अधूरा छोड़ दिया था, उसे पूरा करने का श्रेय इन्हीं को है । ये डिंगल और पिंगल दोनों भाषाओं में रचना करते थे । इनके दो ग्रंथ प्रसिद्ध हैं— (१) वंश समुच्चय और (२) डिंगल कोश ।

डिंगल कोश मूलतः डिंगल के पर्यायवाची शब्दों का पद्य-बद्ध संकलन है । इसमें डिंगल के लगभग ७ हजार शब्द संग्रहीत हैं । पर्यायवाची शब्दों को पद्य-बद्ध करने के उद्देश्य से इन्होंने कुछ गीतों के प्रयोग भी किए हैं और प्रत्येक गीत के प्रारम्भ में उसका लक्षण भी दोहा छंद के माध्यम से समझाया है । कुल १६ गीतों के लक्षण इस ग्रंथ में हैं । [4] गीतों के नाम इस प्रकार हैं—

(१) छोटा सांणोर, (२) वेलियो, (३) सोहणो, (४) आगला साणोर, (५) वडौ सांणोर, (६) खुड़द सांणोर, (७) प्रहास, (८) जांगड़ो, (९) वडो साणोर सावझड़ो, (१०) सावझड़ो, (११) पंखाळो, (१२) अर्धं साव-झड़ो, (१३) झड़लुपत, (१४) त्रंबकड़ो, (१५) सीहचलो, (१६) सालूर ।

डिंगल के छंद-शास्त्रियों में मुरारिदान ही एक ऐसे विद्वान हैं, जिन्होंने छंद-शास्त्र और शब्द-कोश का समावेश एक ग्रंथ में कर दिया है । यद्यपि कुछ ही गीतों को कवि ने अपनाया है, तथापि डिंगल छंद-शास्त्र की परम्परा में उनका यह एक नवीन प्रयास होने के कारण महत्त्वपूर्ण है ।

---

(1) डिंगल गीत : सं० रावत सारस्वत, चंडीदान सांदू, पृ० ५५
(2) कवि रत्नमाला : मुंशी देवी प्रसाद, पृ० ११९
(3) राजस्थान का पिंगल साहित्य : डा० मोतीलाल मेनारिया, पृ० २२८
(4) डिंगल कोश : सं० नारायणसिंह भाटी, पृ० १७१-१८०

अष्टम अध्याय

●

उपसंहार

उपसंहार | ८

डिंगल गीत-साहित्य की प्राचीनता, विशालता, विविधता और काव्य-सौन्दर्य आदि पर पिछले अध्यायों में हम विस्तार के साथ विचार कर आए हैं। राजस्थान की ऐतिहासिक एवं सामाजिक परम्पराओं का सुदीर्घकालीन इतिहास इस साहित्य में प्रतिबिम्बित हुआ है। यहां के इतिहास के अनेक तिमिराच्छन्न पृष्ठों को इन गीतों की सहायता से आलोकित किया जा सकता है। विभिन्न स्थानों पर बिखरी हुई इस अमूल्य काव्य-निधि की सुरक्षा और उसके समुचित प्रकाशन की समस्या एक विचारणीय प्रश्न अवश्य है।

अधिकांश गीत-साहित्य मौखिक परम्परा के सहारे ही जीवित रहा है। अंग्रेजी सत्ता की स्थापना के पश्चात् यह मौखिक परम्परा समाप्त प्रायः हो गई, जिससे हजारों गीत उन पीढ़ियों के साथ ही लुप्त हो गए। अतः मौखिक परम्परा का यह स्रोत आज के शोध-कर्ता को विशेष सहायता प्रदान नहीं करता। जो कुछ गीत समय-समय पर लिपिबद्ध कर लिए गये, वे कुछ हस्तलिखित ग्रंथों में अवश्य सुरक्षित रह गये हैं। पिछले सौ-डेढ़-सौ वर्षों में यहां की जनता और शासक-वर्ग ने डिंगल भाषा और साहित्य के प्रति बड़ी उपेक्षा बरती जिससे कितने ही हस्तलिखित ग्रंथ कूड़ा बनाकर नष्ट कर दिये गये, कितने ही दीमक के आहार बन गये और कितने ही समुचित देखभाल न होने के कारण खण्डित व त्रुटित हो गये। जो ग्रंथ विभिन्न संस्थाओं में संगृहीत कर लिए गए हैं उनकी तो अलग बात है, परन्तु जो अब भी व्यक्तिगत संग्रहों में तथा अज्ञात स्थानों पर पड़े हैं, उनकी भी वही दुर्गति हो रही है। यहां यह उल्लेख करना अप्रासंगिक नहीं होगा कि राजस्थान प्राच्य-विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर, राजस्थानी शोध संस्थान जोधपुर, बंगाल हिन्दी मण्डल कलकत्ता, साहित्य संस्थान उदयपुर, एशियाटिक सोसाइटी कलकत्ता आदि कुछ संस्थाओं ने

पिछले वर्षों में हस्तलिखित ग्रंथों व प्राचीन साहित्य का संग्रह तथा संरक्षण कर इस दिशा में बड़ा ही महत्त्वपूर्ण व अनुकरणीय कार्य किया है।

यहां के कुछ विद्या-प्रेमी शासकों ने समय-समय पर अपने राजकीय संग्रहालयों में कई ग्रंथों का संग्रह करवाया था, जिनमें महाराजा मानसिंह द्वारा स्थापित–पुस्तक प्रकाश जोधपुर, महाराजा अनूपसिंह द्वारा स्थापित अनूप संस्कृत पुस्तकालय बीकानेर, सरस्वती पुस्तक भण्डार उदयपुर तथा जयपुर, कोटा, बूंदी, किशनगढ़, अलवर, जैसलमेर आदि के संग्रह महत्वपूर्ण हैं। उनमें डिंगल, पिंगल व संस्कृत की बहुत सी बहुमूल्य सामग्री सुरक्षित है तथा अनेक पोथियों में गीतों का भी संकलन है। इन संग्रहों में संगृहीत साहित्यिक कृतियों का पूर्ण उपयोग करना शोध के विद्यार्थी के लिये तब तक बड़ा कठिन एवं अत्यधिक श्रम-साध्य हो जाता है, जब तक वैज्ञानिक ढंग से सारी सामग्री की विस्तृत सूचियां (केटैलाग) तैयार होकर प्रकाशित नहीं हो जातीं।

जहां तक गीतों के प्रकाशन का प्रश्न है, अद्यावधि बहुत ही अल्पसंख्यक गीत प्रकाश में आए हैं। साहित्य-संस्थान, उदयपुर ने अपने संग्रह में से कुछ गीतों का प्रकाशन 'प्राचीन राजस्थानी गीत' नामक ग्रंथ-माला में करवाया है। कुछ गीत राजस्थान की पत्र-पत्रिकाओं में भी समय-समय पर प्रकाशित होते रहे हैं तथा कुछ पुस्तक-रूप में भी जोधपुर और बीकानेर की संस्थाओं ने प्रकाशित किये हैं। उपलब्ध गीत साहित्य की सामग्री को प्रकाश में लाना आवश्यक होते हुए भी उसके बारे में अनेक प्रकार की सतर्कता बरतना अनिवार्य है, क्योंकि गीतों को विशुद्ध रूप में प्रकाशित करने और उनकी ऐतिहासिकता को असंदिग्ध रखने की बड़ी आवश्यकता है। इस सम्बन्ध में ध्यान देने योग्य कुछ बातें इस प्रकार हैं—

(१) गीतों को लिपिबद्ध करने वाले कई व्यक्ति भाषा के अच्छे जानकार और विद्वान नहीं थे, इसलिए अनेक गीतों की भाषा में मात्राओं आदि की दृष्टि से बहुत सी त्रुटियां पाई जाती हैं। एक ही गीत की विभिन्न प्रतिलिपियों से उनका मिलान करके तथा छंद, वैणसगाई, जथा, उक्ति आदि की कसौटी पर कस कर उन्हें शुद्ध रूप में प्रकाशित किया जाना आवश्यक है, अन्यथा पाठक को कई भ्रान्तियां हो सकती हैं।

(२) लिपिबद्ध गीतों में कहीं कहीं पर ही गीतकार का नाम मिलता है, अतः केवल अनुमान से ही रचयिता का नाम निर्धारित करना भी उचित नहीं होगा।

(३) गीतों के शीर्षक-रूप में प्रायः गीत-नायक अथवा घटना आदि का उल्लेख मिलता है, परन्तु एक ही नाम के एक ही समय में इतिहास में अनेक महत्त्वपूर्ण व्यक्ति हो गये हैं, इसलिए भ्रम का निवारण करने के उद्देश्य से गीत का

बारीकी से अध्ययन करने के पश्चात् तथा ऐतिहासिक दृष्टि से उसे परखने के बाद ही उस नायक पर धारणा बनाई जानी चाहिये ।

(४) अधिकांश गीत ऐतिहासिक पुरुषों व घटनाओं से सम्बन्धित हैं, इसलिए जब तक उन पर यथोचित ढंग से ऐतिहासिक टिप्पणी न की जाय, तब तक उन गीतों का वास्तविक उपयोग होना संभव नहीं है । राजस्थान के सम्बन्ध मे अभी तक जो भी इतिहास प्रकाशित हुए हैं वे इस कार्य के लिये पर्याप्त नहीं हैं इसलिए प्राचीन ख्यातों और ऐतिहासिक महत्त्व के अन्य साहित्यिक ग्रंथों की सहायता भी इस कार्य के लिए ली जानी चाहिए ।

(५) इन गीतों में डिंगल भाषा के ठेट शब्द और राजस्थान की संस्कृति को व्यक्त करने वाली अनेक कहावतें तथा मुहावरे आदि प्रयुक्त हुए हैं । उनकी समुचित जानकारी डिंगल कोशों के आधार पर प्रत्येक गीत के साथ दी जानी आवश्यक है, तथा शब्दों को अपने विशुद्ध रूप में प्रकाशित करने के लिए बड़े विवेक के साथ हस्तलिखित पंक्तियों का शब्द-विच्छेद करना भी बड़ा ही आवश्यक है ।

(६) एक ही गीत अनेक प्राचीन प्रतियों में लिपिबद्ध मिल जाता है । यथासंभव ऐसी प्रतियों के आधार पर गीतों के पाठ का मिलान करना भी आवश्यक है । इसके बिना गीत का सही पाठ निर्धारण दुस्साध्य है ।

यह प्रथम अध्याय में ही स्पष्ट किया जा चुका है कि इन गीतों का वास्तविक सौन्दर्य अधिकारी पात्र के मुख से शैली विशेष में सुनने पर ही हृदयंगम किया जा सकता है । वर्तमान काल में विधिवत् ढंग से इनका पाठ करने वाले इने-गिने व्यक्ति ही रह गए हैं, भविष्य में यह परम्परा सर्वथा लुप्त हो जायगी । अतः इनके पठन-पाठन की शैली को सुरक्षित रखने के लिए कुछ गीतों का ऐसे व्यक्तियों से टेप-रेकार्ड करवाकर यदि पाठ को सुरक्षित कर लिया जाय तो वह आगे आने वाली पीढ़ियों के लिये बड़ा उपयोगी सिद्ध होगा ।

जिन गीतकारों के नाम उनकी रचनाओं के साथ लिपिबद्ध मिलते हैं, उनमें से कुछ ही कवि प्रख्यात हैं । अन्य कवियों के जीवन-वृत्त को खोजना एक-दो व्यक्तियों के वश की बात नहीं है । जिस कवि ने अपने आश्रयदाता अथवा वीर पर रचना की है, वह उसका समकालीन होने से यदि काव्य-नायक सम्बन्धी ऐतिहासिक जानकारी प्राप्त हो जाती है, तो उसके सहारे कवि के सम्बन्ध में भी विचार किया जा सकता है, परन्तु कवि की पूरी जानकारी के लिए अन्य काव्य-ग्रंथों और ख्यातों तथा चारणों की पीढ़ियों व उन्हें मिलने वाले सांसण के गांवों आदि का विस्तृत अध्ययन करना आवश्यक है । ख्यातों में प्रायः जिन राजाओं व ठाकुरों ने चारण कवियों को

जागीर, पुरस्कार आदि दिये हैं, उनकी विगत मिल जाती है। इस दृष्टि से मुह
नैणसी की ख्यात, मारवाड़ रा परगना री विगत, दयालदास की ख्यात, बांक
की ख्यात तथा राजस्थान के विभिन्न राजवंशों और ठिकानों की ख्यातें उ
हैं। राजस्थानी शोध संस्थान, जोधपुर के संग्रह को प्रसिद्ध इतिहासकार मु
नैणसी की एक अन्य ख्यात प्राप्त हुई है, जिसमें मारवाड़ के सात परगनों का f
विवरण लिखा हुआ है और उसमें प्रत्येक गांव की विधिवत् विगत देने के सा
नैणसी ने उस समय के कुछ प्रसिद्ध चारण कवियों के निवास-स्थान तथ
कितने ही कवियों की जागीर (सांसण) आदि की विगत भी यथास्थान
राजस्थान की अन्य रियासतों से सम्बन्धित इस प्रकार के ग्रंथ इस कार्य में
सहायक हो सकते है।

इन ख्यातों में जिन कवियों की जागीर आदि का उल्लेख मिलता है
मे अधिकांश के वंशज उन गांवों में मिल जाते हैं, क्योंकि जागीर पुनर्ग्रहण तक
आजीविका का प्रमुख साधन ये जागीरें रही हैं और उनके पास अपने पूर्व
पट्टे, परवाने, ताम्र-पत्र आदि भी मिल सकते है। इस प्रकार इन कवियों के
से उनकी कुछ जानकारी प्राचीन कागजातों तथा वहां प्रचलित कुछ जन-प्र
भी मिल सकती है।

राजनैतिक और सामाजिक परिस्थितियों में बहुत बड़ा परिवर्तन हो
कवियों की जीवनी के ये स्रोत भी अधिक दिनों तक सुरक्षित न रह सकेंगे।
समय रहते ही इनका उपयोग होना आवश्यक है।

जिस प्रकार दोहे के माध्यम से आधुनिक काल में भी काव्य-रचना हो
है, उसी प्रकार गीत छंद को अपनाकर कन्हीराम बारहठ, कविराव मो
मानदान कविया, पतराम गौड़, मनोहर शर्मा, उदयराज उज्ज्वल, देवकरण
चण्डीदान सांदू, जोगीदान कविया, सांवलदान आशिया, रेवतसिंह भाटी, मु
आदि ने भी काव्य-रचना की है। वीर-भावनाओं को व्यक्त करने की अस
क्षमता गीतों में है, इसलिए उत्साह-वर्द्धक घटनाओं पर आज भी कुछ कवि
भावाभिव्यक्ति के लिए गीत छंद को चुनते हैं। हाल ही में होने वाले भा
संघर्ष पर कवियों ने अनेक गीत रचे हैं।

यह प्रश्न उठाना भी स्वाभाविक है कि डिंगल की इतनी सबल और
काव्य-विधा ने डिंगल के छंद-शास्त्र को जो महत्त्वपूर्ण देन दी है क्या उसका
भविष्य में भी किया जा सकता है? आधुनिक काल की नवीन सामाजिक परि
से उत्पन्न नवीन विचारों और भावों को वहन करने की क्षमता इन प्राचीन
कहां तक है, यह तो इनके प्रयोग पर ही निर्भर करता है, परन्तु इसमें

नहीं कि इन गीतों में से नवीन प्रयोगों की निकष पर कुछ गीत खरे उतर सकते है और अनेक गीतों के आधार पर नवीन छंदों का निर्माण भी किया जा सकता है।

सैकड़ों कवियों की विलक्षण प्रतिभा ने इन गीतों का सृजन किया है। अतः इसमें कोई संदेह नहीं कि इनके अध्ययन और पठन-पाठन से भावाभिव्यक्ति के कितने ही विलक्षण रूप और शैलीगत कितनी ही मौलिक विशेषताएं ग्रहण की जा सकती हैं, जिनका महत्त्व डिंगल की प्राचीन काव्य-परम्पराओं और समाज को समझने तक ही सीमित नहीं है, अपितु आज का जागरूक कवि और लेखक भी हमारे समाज और राष्ट्र की नवीन समस्याओं के संदर्भ में इनसे पर्याप्त प्रेरणा ग्रहण कर सकता है।
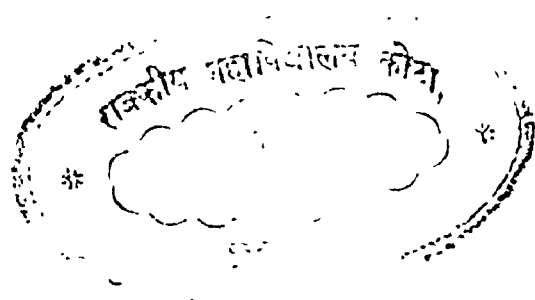
सहायक ग्रंथ सूची

(अप्रकाशित ग्रंथों का निर्देश यथा-स्थान कर दिया गया है, यहां केवल प्रकाशित संदर्भ ग्रंथों की ही सूची दी जा रही है।)

१. अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के तेतीसवें अधिवेशन का विवरण : क० मा० मुंशी

२. अचलदास खीची री वचनिका : सा० रा० रि० इ० बीकानेर

३. आसोप का इतिहास : पं० रामकर्ण आसोपा

४. उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग १ डा० गौरीशंकर हीराचंद ओझा

५. उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग २ डा० गौरीशंकर हीराचंद ओझा

६. ऊमर काव्य : सं० जगदीशसिंह गहलोत

७. ऐतिहासिक बातां : (परम्परा भाग ११) जोधपुर

८. कछवाहों का संक्षिप्त इतिहास : वीरसिंह तंवर

९. कवि रत्नमाला : मुंशी देवीप्रसाद

१०. कान्हड़दे प्रबन्ध : रा० प्रा० वि० प्र० जोधपुर

११. काव्य-दर्पण : प० रामदहिन मिश्र

१२. कुमारपाल चरित् : हेमचंद्राचार्य

१३. कोटा राज्य का इतिहास, भाग १ डा० मथुरालाल शर्मा

१४. कोटा राज्य का इतिहास, भाग २ डा० मथुरालाल शर्मा

१५. गज उद्धार ग्रन्थ : (परम्परा भाग १७) जोधपुर

१६. गीत मंजरी : बीकानेर

१७. गोरा हट जा : (परम्परा भाग २) जोधपुर

१८. चंद्रसेन चरित्र : रेवतसिंह भाटी

१९. चारणो अने चारणी साहित्य : — झवेरचंद मेघाणी

२०. जसवंत जसो भूषण : — कविराजा मुरारिदान, जोधपुर

२१. जिनहर्ष ग्रंथावली : — सं० अगरचंद नाहटा, सा० रा० रि० इ० बीकानेर

२२. जेठवे रा सोरठा : — (परम्परा भाग ५), जोधपुर

२३. जैसलमेर का इतिहास : — पं हरदत्त गोविंद

२४. जोधपुर राज्य का इतिहास, जि० २ — डा० गौरीशंकर हीराचंद ओझा

२५. जोधपुर राज्य का इतिहास, भाग १ — डा० गौरीशंकर हीराचंद ओझा

२६. डिंगल कोश : — सं० नारायणसिंह भाटी, रा० शो० स०, जोधपुर

२७. डिंगल गीत : — सं० रावत सारस्वत, चंडीदान सादू, सा० रा० रि० इ०, बीकानेर

२८. डिंगल साहित्य : — डा० जगदीशप्रसाद श्रीवास्तव, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद

२९. ढोला मारूरा दूहा : — सं० रामसिंह, सूर्यकरण और नरोत्तमदास

३०. दयालदास की ख्यात : — सं० डा० दशरथ शर्मा

३१. दलपत विलास : — सं० रावत सारस्वत, सा० रा० रि० इ० बीकानेर

३२. धरती नूं धावण : — झवेरचंद मेघाणी

३३. धर्म-वर्द्धन ग्रंथावली : — सं० अगरचंद नाहटा, सा० रा० रि० इ०, बीकानेर

३४. निवाज का इतिहास : — रामकर्ण आसोपा, जोधपुर

३५. नीति प्रकास : — (परम्परा भाग ९), जोधपुर

३६. पाबू-प्रकास : — मोड़जी आशिया

३७. पिंगल सिरोमणी : — (परम्परा भाग १३), जोधपुर

३८. पीरदान ग्रंथावली : — सं० अगरचंद नाहटा, बीकानेर

३९. पुरातन-प्रबन्ध-संग्रह : — मुनिजिनविजय

४०. पुरानी राजस्थानी : (डा. तेस्सितोरी) अनु० नामवरसिंह
४१. पूर्व आधुनिक राजस्थान : डा० रघुवीरसिंह
४२. पृथ्वीराज रासो : ना० प्र० स०, काशी
४३. प्राचीन राजस्थानी गीत भाग १ सा० सं०, उदयपुर
४४. प्राचीन राजस्थानी गीत भाग ३ सा० सं०, उदयपुर
४५. प्राचीन राजस्थानी गीत भाग ४ सा० सं०, उदयपुर
४६. प्राचीन राजस्थानी गीत भाग ६ सा० सं०, उदयपुर
४७. प्राचीन राजस्थानी गीत भाग १२ सा० सं०, उदयपुर
४८. बांकीदास ग्रंथावली, भाग १ सं० रामकर्ण आसोपा
४९. बांकीदास ग्रंथावली, भाग ३ ना० प्र० स० काशी
५०. बांकीदास री ख्यात : सं० नरोत्तम स्वामी
रा० प्रा० वि० प्र० जोधपुर
५१. बृहत् पिंगल : रामनारायण विश्वनाथ पाठक
५२. मत्स्य प्रदेश की हिन्दी साहित्य को देन : डा० मोतीलाल गुप्ता
५३. महादेव पारवती री वेलि : सं० रावत सारस्वत, बीकानेर
५४. महाराणा यश प्रकाश : सं० भूरसिंह शेखावत
५५. मारवाड़ का इतिहास, भाग १ विश्वेश्वरनाथ रेऊ
५६. मारवाड़ रा परगनां री विगत सं० नारायणसिंह भाटी
५७. मुगलकालीन भारत : डा० आशीर्वादीलाल
५८. मुहणोत नैणसी री ख्यात :, भाग १ ना० प्रा० स०, काशी
५९. मुहणोत नैणसी री ख्यात, भाग २ ना० प्रा० स०, काशी
६०. मेहाई महिमा : हिंगलाज दान कविया जयपुर
६१. रघुनाथ रूपक गीतां रौ : स० महताबचंद खारैड़,
ना० प्र० स०, काशी
६२. रघुवर जस प्रकास : सं० सीताराम लालस
रा० प्रा० वि० प्र०, जोधपुर
६३. रपोर्ट मरदमसुमारी राज मारवाड़, भाग३ मुंशी देवीप्रसाद
६४. रसराज : (परम्परा भाग ८), जोधपुर

६५. रसीले राज रा गीत : (परम्परा भाग १८–१९), जोधपुर
६६. राजपूताने का इतिहास जि० १, गौरीशंकर हीराचंद ओझा
६७. राजपूताने का इतिहास, प्रथम भाग : जगदीशसिंह गहलोत
६८. राजस्थान का इतिहास : बलदेव प्रसाद मिश्र
६९. राजस्थान का पिंगल-साहित्य : डा० मोतीलाल मेनारिया
७०. राजस्थान के ऐतिहासिक प्रवाद : डा० कन्हैयालाल सहल
७१. राजस्थान रा दूहा : सं० नरोत्तमदास स्वामी
७२. राजस्थानी कहावतें : डा० कन्हैयालाल सहल
बं० हि० मं०, कलकत्ता
७३. राजस्थांनी वात संग्रह : सं० नारायणसिंह भाटी
७४. राजस्थानी भाषा और साहित्य : डा० हीरालाल माहेश्वरी
७५. राजस्थानी भाषा और साहित्य : डा० मोतीलाल मेनारिया
७६. राजस्थानी वीर गीत : अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर
७७. राजस्थांनी सबद-कोस : सं० सीतारांम लालस,
रा० शो० सं०, जोधपुर
७८. राजस्थानी साहित्य एक परिचय : नरोत्तमदास स्वामी
७९. राजस्थानी साहित्य का आदिकाल : (परम्परा भाग १३), जोधपुर
८०. राजस्थानी साहित्य का मध्यकाल : (परम्परा भाग १५–१६), जोधपुर
८१. राजस्थानी साहित्य संग्रह, भाग २ पुरुषोत्तमलाल मेनारिया
८२. राजस्थानी साहित्य संग्रह, भाग ३ सं० लक्ष्मीनारायण गोस्वामी
८३. राठौड कल्ला रायमलोत : सं० पं० रामदीन पाराशर
८४. राठौड़ रतनसिंघ री वेलि : (परम्परा भाग १४), जोधपुर
८५. लोकगीत : (परम्परा भाग १), जोधपुर
८६. वंश भास्कर : सूर्यमल्ल मिश्रण बूंदी
८७. वचनिका राठौड़ रतनसिंघजी री
महेसदासोत री खिड़िया जगा री कही : सं० काशीराम शर्मा, डा० रघुबीरसिंह
८८. वीरमायण : रा० प्रा० वि० प्र०, जोधपुर
८९. वीर विनोद, भाग १ कविराजा श्यामलदास

९०. वीर विनोद (कर्ण पर्व) : स्वामी गणेशपुरी
९१. वीर सतसई: सूर्यमल्ल मिश्रण
९२. वेलि क्रिसन रुकमणी री : सं० आनन्द प्रकाश दीक्षित
९३. वेलि क्रिसन रुकमणी री : सं० रामसिंह, सूर्यकरण
हिन्दुस्तानी अकेडेमी, प्रयाग
९४. वैताल-पच्चीसी : सं० अचलसिंह
राजस्थानी प्रकाशन, जोधपुर
९५. सिद्ध हेम : श्री बूच और जे. का. पटेल
९६. सीकर का इतिहास : पं० झाबरमल्ल शर्मा
९७. सूरज-प्रकास : करणीदान कविया, रा. प्रा. विं. प्र. जोधपुर
९८. सैतान-सुयश : सं० सवाईसिंह धमोरा, जयपुर
९९. हमारा राजस्थान : पृथ्वीसिंह मेहता
१००. हरिरस : सं० बद्रीप्रसाद साकरिया
१०१ हालां-झालां रा कुंडलिया : सं० डा० मोतीलाल मेनारिया
१०२. हिन्दी साहित्य का आदिकाल : डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी
१०३. हिन्दी साहित्य का इतिहास : डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी
१०४, हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास भाग १ ना. प्र. स., काशी
१०५. A descriptive catalogue of Bardic & Historical Mss. Part 1, by Dr. L. P. Tessitori.
१०६. *A Descriptive catalogue of Bardic & Historical Mss Part 2,* by Dr. L P. Tessitori.
१०७. Mewar and Mugal emperors : by Dr. G. N. Sharma.
१०८. Annals and Antiquities of Rajasthan by Col. Tcd.
१०९. Rajasthani language and literature : Rajasthani Akedemi, Bikaner.
११०. The Student's Sanskrit-English Dictionary : by V. S. Apte.
१११. Veli Krishna Rukamani ri : by Dr. L.P. Tessitori.

पत्र-पत्रिकाएँ

नागरी प्रचारिणी पत्रिका, काशी

मरु भारती, पिलानी

मरुवाणी, जयपुर

राजस्थान, कलकत्ता

राजस्थान भारती, बीकानेर

राजस्थानी, कलकत्ता

वरदा, बिसाऊ,

वाग्वर, डूंगरपुर

शोध पत्रिका, उदयपुर

संघ शक्ति, जयपुर